उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

MAHY-107 (N) Part- II

आधुनिक विश्व (1870 ई० से 2000 ई०)

खण्ड– प्रथम : संक्रमण कालीन विश्व 03–96

इकाई 1 – लेनिन एवं सोवियत संघ का नवीन संविधान 05-24
इकाई 2 – महान अन्तर्राष्ट्रीय मन्दी 25-36
इकाई 3 – अफ्रीका का संकट और अबीसीनिया का मुद्दा 37-56
इकाई 4 – सुदूर पूर्व के संकट, मंचूरियन संकट 57-82
इकाई 5 – स्पेन का गृहयुद्ध 83-96

खण्ड–द्वितीय : द्वितीय विश्व युद्ध एवं उसके पश्चात् की परिस्थितियाँ 97–152

इकाई 1 – द्वितीय विश्व युद्ध कारण एवं पृष्ठभूमि 99-110
इकाई 2 – मुसोलिनी तथा हिटलर 111-124
इकाई 3 – संयुक्त राष्ट्र संघ 125-134
इकाई 4 – शीतयुद्ध की उत्पत्ति एवं प्रभाव 135-146
इकाई 5 – विश्व राजनीति और भारत 147-152

खण्ड –तृतीय : उपनिवेशवाद का अंत 153–208

इकाई 1 – औपनिवेशिक साम्राज्य का क्षरण 155-162
इकाई 2 – युद्धोत्तर संस्थाएँ 163-176
इकाई 3 – सोवियत साम्यवाद 177-186
इकाई 4 – अमेरिकन प्रभुत्ववाद 187-196
इकाई 5 – गुटनिरपेक्ष आन्दोलन 197-208

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

MAHY-107 (N) Part- II

आधुनिक विश्व (1870 ई० से 2000 ई०)

खण्ड– प्रथम : संक्रमण कालीन विश्व **03–96**

इकाई 1 – लेनिन एवं सोवियत संघ का नवीन संविधान 05-24

इकाई 2 – महान अन्तर्राष्ट्रीय मन्दी 25-36

इकाई 3 – अफ्रीका का संकट और अबीसीनिया का मुद्दा 37-56

इकाई 4 – सुदूर पूर्व के संकट, मंचूरियन संकट 57-82

इकाई 5 – स्पेन का गृहयुद्ध 83-96

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश प्रयागराज

MAHY-107 (N)

परामर्श समिति

प्रो० सीमा सिंह	मा० कुलपति, उ०प्र० राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ०प्र० राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो० संतोषा कुमार	निदेशक एवं आचार्य इतिहास समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो० हेरम्ब चतुर्वेदी	पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो० संजय श्रीवास्तव	आचार्य, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ० सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो. संतोष कुमार चतुर्वेदी	आचार्य, इतिहास महमति प्राणनाथ राजकीय महाविद्यालय, मऊ, चित्रकूट प्रथम खंड (1–5 इकाई)
डॉ. अर्चना सिंह	सह आचार्य, इतिहास काशी नरेश राजकीय महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही द्वितीय खंड (1–5 इकाई)
प्रो. अनुभा श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास बीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी तृतीय खंड (1–5 इकाई)

सम्पादक

प्रो० पी० एल० विश्वकर्मा	पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ० सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज वर्ष–2022

ISBN :978-93-94487-89-5

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित–२०२४

मुद्रक: सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड,अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

इकाई–1 लेनिन एवं सोवियत संघ का नवीन संविधान

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 लेनिन का जीवन

1.3 बोल्शेविक क्रान्ति और लेनिन

1.4 अक्टूबर क्रान्ति

1.5 लेनिन की सफलता के कारण

1.6 लेनिन के उद्देश्य

1.7 लेनिन की नयी आर्थिक नीति (नेप)

1.8 1918 ई. का सोवियत संविधानरू सर्वहारा का अधिनायक तन्त्र

1.9 सारांश

1.10 बोध प्रश्न

1.11 कठिन शब्दावली

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.13 उपयोगी कुछ पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे कि

- ❖ लेनिन का जीवन कैसा था?
- ❖ लेनिन ने रूस में बोल्शेविक क्रान्ति के लिए क्या प्रयत्न किए?
- ❖ लेनिन की नयी आर्थिक नीति अर्थात नेप क्या है?
- ❖ लेनिन की सफलता के क्या कारण थे?
- ❖ रूस के नए संविधान के द्वारा किस तरह सर्वहारा के अधिनायकतंत्र की स्थापना की गयी?
- ❖ कामिंटर्न की स्थापना किस उद्देश्य से की गयी?

1.1 प्रस्तावना

बीसवीं सदी अपने जिन विभूतियों पर गर्व करती है उसमें लेनिन का नाम सर्वप्रमुख है। रूस की निरंकुश जारशाही के समापन में इस महान नेता की महत्वपूर्ण भूमिका रही। जारशाही के अन्त के लिए लेनिन ने जनमत के निर्माण में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभायी वह विश्व इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है। क्रान्ति के दौरान लेनिन ने बोल्शेविकों का न केवल कुशल नेतृत्व किया अपितु क्रान्ति को सफलता की दहलीज तक पहुंचा कर विश्व के पहले कम्युनिस्ट सरकार की स्थापना का वह श्रेय प्राप्त किया जो इतिहास के पृष्ठों में हमेशा–हमेशा के लिए एक युगांतकारी घटना के रूप में दर्ज हो गया। लेनिन ही वह पहले व्यक्ति थे जिसने खुले तौर पर यह स्वीकार किया कि 'बिना आतंक तथा हिंसा के श्रमिक वर्ग के अधिनायकवाद पर विचार नहीं किया जा सकता। हम पूंजीवादी वर्ग के विरूद्ध लाल आतंक के पक्ष में मजबूती से खड़े हैं।' आगे चल कर अगर रूस ने एक महाशक्ति राष्ट्र की हैसियत प्राप्त की और आज उसकी गणना एक बेहतर एवं विकसित देश के रूप में की जाती है तो इसके पीछे लेनिन की महती भूमिका रही है जिसने अपने समय में रूस के मजदूर और किसान वर्ग को देश के निर्माण से जोड़ कर देश की पूरी तस्वीर ही बदल डाली। इस प्रकार लेनिन को हम सच्चे अर्थों में आधुनिक रूस का निर्माता कह सकते हैं।

1.2 लेनिन का जीवन

लेनिन का पूरा नाम ब्लादीमीर इलियच यूलियानोव था। लेकिन इतिहास में वह निकोलाई लेनिन के नाम से विख्यात हुआ। लेनिन का जन्म 10 अप्रैल 1870 को वोल्गा नदी के किनारे स्थित सिमब्रिस्क नामक नगर में एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। लेनिन के पिता एक स्कूल इन्स्पेक्टर थे जबकि माँ एक चिकित्सक की पुत्री थीं जो सुशिक्षित थीं। सन् 1886 में पिता की मृत्यु हो जाने पर कई पुत्र पुत्रियों वाले बड़े परिवार का सारा बोझ लेनिन की माता पर पड़ा जिसका निर्वहन उन्होंने बखूबी किया। ये सभी भाई बहन प्रारंभ से ही क्रांतिवाद के अनुयायी बनते गए। लेनिन की रुचि बचपन से ही मार्क्सवादी विचारों में थी। लेनिन के जीवन में तब एक बड़ा मोड़ आया जब उनके बड़े भाई, जो पीटर्सबर्ग में अपनी पढाई कर रहे थे, पर अलेक्जेंडर तृतीय की हत्या का आरोप लगाया गया और रूस के तत्कालीन शासक जार द्वारा उन्हें मृत्युदण्ड की सजा दे दी गयी। अब लेनिन के पूरे परिवार को सन्देह की नजर से देखा जाने लगा।

इन विकट परिस्थितियों में भी लेनिन ने अपना हौसला बनाए रखा और अध्ययन का क्रम जारी रखा। उच्च योग्यता के साथ स्नातक बनने पर लेनिन ने 1887 में कजान विश्वविद्यालय के विधि विभाग में प्रवेश किया लेकिन शीघ्र ही विद्यार्थियों के एक क्रांतिकारी प्रदर्शन में हिस्सा लेने के कारण इन्हें विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गया। सन् 1889 में वह समारा चले गये जहाँ लेनिन ने स्थानीय मार्क्सवादियों के एक दल का संगठन किया। 1891 में सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय से विधि परीक्षा में उपाधि प्राप्त कर लेनिन ने समारा में ही अपनी वकालत आरम्भ कर दी। 1893 में लेनिन ने सेंट पीटर्सबर्ग में ही अपना निवास स्थान बना लिया। कुछ ही दिनों में लेनिन वहाँ के मार्क्सवादियों के बहुमान्य नेता बन गये। यहीं उनकी मुलाकात सुश्री क्रुप्सकाया से हुई, जो श्रमिकों में क्रांति का प्रचार करने में संलग्न थी। दोनों के बीच मित्रता की जो शुरुआत हुई वह आगे

चल कर वैवाहिक सम्बन्ध में बदल गयी। लेनिन को क्रांतिकारी संघर्ष में जीवनपर्यंत क्रुप्सकाया का घनिष्ठ सहयोग प्राप्त होता रहा।

अब लेनिन साम्यवादी क्रांतिकारियों के साथ जुड़ गये और 1888 ई. में क्रांतिकारी साम्यवादियों के साथ मिल कर उन्होंने 'सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी' की स्थापना की। अपने उग्र साम्यवादी विचारों के कारण लेनिन को तत्कालीन सरकार द्वारा 1895 ई. में गिरफ्तार कर लिया गया। और 1997 ई. में पूर्वी साईबेरिया निर्वासित कर दिया गया। साईबेरिया के निर्वासन काल में ही लेनिन ने अपनी पूर्व मित्र नदेज्दा कान्स्तैन्तीनोवा क्रुप्सकाया से शादी कर लिया। नदेज्दा ने आजीवन अपने पति लेनिन का साथ दिया। लेनिन की मृत्यु के पश्चात भी नदेज्दा ने दृढ़तापूर्वक लेनिन के विचारों का प्रतिनिधित्व एवं प्रचार–प्रसार करती रही।

साईबेरिया का अपना निर्वासन समाप्त होने के पश्चात लेनिन रूस आये लेकिन यहाँ पर अभी भी विपरीत हालात को देखते हुए उन्होंने स्विट्जरलैंड जाने का निश्चय किया। स्विट्जरलैण्ड में लेनिन ने पुस्तकालयों में मार्क्सवाद का गहन अध्ययन किया। साथ ही वे इसका प्रचार–प्रसार भी करते रहे। अपने विचारों के प्रचार–प्रसार के लिए उन्होंने 'द स्पार्क' नामक पत्रिका का सम्पादन आरम्भ किया। इसमें उसके साथ श्रमिकों की मुक्ति के लिए प्रयत्न करने वाले वे रूसी मार्क्सवादी भी जुड़े जिन्हें जारशाही के अत्याचारों से उत्पीड़ित होकर निर्वासन का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था। लेनिन की पत्रिका 'स्पार्क' की प्रतियां गोपनीय ढंग से लगातार रूस पहुंचती रहीं। स्विटजरलैण्ड प्रवास के दौरान ही लेनिन ने आस्ट्रिया, हंगरी, जर्मनी, फ्रांस और ब्रिटेन जैसे यूरोपीय देशों की यात्राएं भी कीं। लेनिन का इस बात का पक्का यकीन था कि रूस की तत्कालीन स्थितियाँ क्रान्ति के लिए उपयुक्त हैं और ऐसे अवसर पर वह अपने देश में प्रभावशाली ढंग से शासन कायम कर जनता के हित के लिए कार्य कर सकता है। इसी उद्देश्य से लेनिन लगातार अपनी पार्टी के सिद्धांतों का प्रचार–प्रसार करते रहे और उसे मजबूत बनाने के लिए हरसंभव प्रयत्न करते रहे।

1902 में लेनिन ने हमें क्या करना है नामक एक पुस्तक लिखी जिसमें इस बात पर जोर दिया कि क्रांति का नेतृत्व ऐसे अनुशासित दल के हाथ में होना चाहिए जिसका मुख्य कामकाज ही क्रांति के लिए प्रयास करना है। सन् 1903 में रूसी श्रमिकों के समाजवादी लोकतन्त्र दल का दूसरा सम्मेलन आयोजित हुआ। इसमें लेनिन तथा उसके समर्थकों को अवसरवादी तत्वों से कड़ा लोहा लेना पड़ा। लेनिन दल के साथ प्रतिबद्ध क्रांतिकारी लोगों को रखने के समर्थक थे जबकि एक अन्य प्रभावी नेता मार्टोव ज्यादा व्यापक सरोकारों को अपनाते हुए लोगों को पार्टी से जोड़ने के पक्ष में थे। अंत में क्रांतिकारी योजना का प्रस्ताव बहुमत से मंजूर कर लिया गया और 'रूसी समाजवादी लोकतंत्र दल' दो शाखाओं में विभक्त हो गया – क्रांति का वास्तविक समर्थक 'बोलशेविक समूह' और अवसरवादी 'मेंशेविकों का समूह। 1903 ई. में लेनिन ने 'बोल्शेविक दल' की कमान पूरी तरह से संभाल ली। 'बोल्शेविक' शब्द की व्युत्पत्ति रूसी शब्द 'बोल्शिन्स्त्वो' से हुई जिसका अर्थ होता है बहुसंख्यक जबकि 'मेन्शेविक' की व्युत्पत्ति 'मेनशिंटवो' शब्द से हुई है जिसका अर्थ अल्पसंख्यक होता है। लेकिन जिस समय लेनिन ने बोल्शेविक दल की कमान संभाली उस समय इसके सदस्यों की संख्या गिनी–चुनी ही थी। लेकिन जो भी लोग दल से जुड़े थे वे दृढ़ निश्चय वाले और अपने लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्ध लोग थे। इसलिए आगे चल कर इन्हीं का दल क्रांतिकारियों का वास्तविक दल बन गया।

इसी समय 1905 ई. में रूस में एक क्रान्ति हुई। लेनिन तत्काल नवम्बर 1905 में रूस आये और आम जन को क्रान्ति से जोड़ने और बोल्शेविको के निर्देशन का कार्य करने लगे। सशस्त्र विद्रोह की तैयारी कराने तथा केंद्रीय समिति की गतिविधि का संचालन करने में लेनिन ने पूरी शक्ति से हाथ बँटाया और कारखानों तथा मिलों में काम करनेवाले श्रमिकों की सभाओं में अनेक बार भाषण किया। लेकिन दुर्भाग्यवश क्रान्ति के असफल होने पर इन्हें फिर स्विटजरलैण्ड वापस लौटना पडा।

1912 ई. में जब प्राग में सम्पूर्ण सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी का सम्मलेन हुआ तब लेनिन ने अवसरवादी मेन्शेविक गुट को पार्टी से पूरी तरह अलग कर दिया। इसके बाद लेनिन क्रैको नामक स्थान पर रहने लगे। यहीं रहते हुए लेनिन ने दल के पत्र ष्प्रावदा' का संचालन किया, उसके लिए लगातार लेख लिखे और चौथे राज्य ड्यूमा के बोलशेविक दल का निर्देशन करने में अपने आपको लगाया। लेनिन ने अपने खाली समय का उपयोग मार्क्सवाद के अध्ययन, चिन्तन–मनन में लगाया और इस दरान कई महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की। सन् 1913–14 में लेनिन ने दो पुस्तकें लिखीं – ष्राष्ट्रीयता के प्रश्न पर समीक्षात्मक षविचार' तथा (राष्ट्रो के) 'आत्मनिर्णय का अधिकार।' पहली पुस्तक में लेनिन ने बूर्ज्वा लोगों के राष्ट्रवाद की तीव्र आलोचना की और श्रमिकों की अंतरराष्ट्रीयता के सिद्धांतों का समर्थन किया। दूसरी पुस्तक में लेनिन ने यह विचार व्यक्त किया कि अपने भविष्य का निर्णय करने का राष्ट्रों का अधिकार स्वीकार कर लिया जाए। उसने इस बात पर भी बल दिया कि सभी राष्ट्रों को स्वतन्त्रता पाने का अधिकार है। अतः गुलामी से छुटकारा पाने का प्रयत्न करने वाले देशों को हर संभव सहायता प्रदान की जाए।

पहले विश्व युद्ध के समय लेनिन के नेतृत्व में रूसी साम्यवादियों ने सर्वहारा वर्ग की अंतरराष्ट्रीयता के साथ–साथ ष्साम्राज्यवादी' युद्ध का भी प्रबल विरोध किया। इस पूरे युद्धकाल में लेनिन ने मार्क्सवाद की दार्शनिक विचारधारा को और आगे बढ़ाने का सतत प्रयत्न किया। लेनिन ने इसी दौरान लिखी गयी अपनी पुस्तक ष्साम्राज्यवाद' (1916) में साम्राज्यवाद का विश्लेषण करते हुए बतलाया कि यह पूँजीवाद के विकास की चरम और आखिरी मंजिल है। उन्होंने उन परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला जो साम्राज्यवाद के विनाश को एक समय अनिवार्य बना देती हैं। उसने यह स्पष्ट कर दिया कि साम्राज्यवाद के युग में पूँजीवाद के आर्थिक एवं राजनीतिक विकास की गति सब देशों में एक सी नहीं होती। इसी आधार पर उसने यह निष्पत्ति निकाली कि शुरू शुरू में समाजवाद की विजय पृथक् रूप से केवल दो–तीन, या मात्र एक ही, पूँजीवादी देश में संभव है। अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन लेनिन ने अपनी दो पुस्तकों षदि यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ यूरोप स्लोगन' (1915) तथा षदि वार प्रोग्राम ऑफ दि पोलिटिकल रिवाल्यूशन' (1916) में बेहतर तरीके से किया है।

1.3 बोल्शेविक क्रान्ति और लेनिन

1917 ई. की कुछ छोटी–छोटी घटनाओं ने क्रान्ति का आरम्भ कर दिया। रोटी खरीदने के लिए प्रयास कर रही मजदूर औरतों के एक प्रदर्शन से इस क्रान्ति की शुरुआत हुई। आगे चलकर मजदूरों की एक आम हड़ताल से यह क्रान्ति और आगे बढी जिसमें बाद में सैनिक और अन्य वर्ग भी शामिल हो गए। 12 मार्च 1917 को राजधानी सेंट पीटर्सवर्ग क्रांतिकारियों के हाथों में आ गयी। राजधानी का नाम बदल कर पेत्रोग्राद कर दिया गया। क्रांतिकारियों ने शीघ्र ही रूस के एक बड़े

शहर मास्को पर अधिकार कर लिया। पूरे रूस में क्रान्ति की लहर दौड़ पड़ी। जार को न केवल शासन छोड़ना पडा अपितु उसे भागना भी पड़ा। जार के पतन की यह घटना इतिहास में 'फरवरी क्रान्ति' के नाम से जानी जाती है क्योंकि इस समय प्रचलित रूस के पुराने कैलेण्डर के अनुसार यह घटना २७ फरवरी 1917 को घटित हुई थी। इस समय के एक महत्वपूर्ण रुसी कवि मायकोवस्की ने रुसी जनता के जार के प्रति आक्रोश को व्यक्त करते हुए लिखा ृ

'दांतों से दबाये हुए चुरट के सिरे की तरह हमने उनके राज वंश को थूक कर फेंक दिया।'

15 मार्च 1917 को रूस में एक अस्थायी सरकार का गठन किया गया जिसका नेतृत्व केरेन्सकी ने सम्भाला। शान्ति, जमीन का मालिकाना किसानों को सौंपे जाने, कारखानों पर मजदूरों का नियन्त्रण और गैर रूसी जातियों को समानता के दर्जे की जिस मांग को लेकर यह क्रान्ति की गयी थी, उसे केरेंसकी भी पूरा नहीं कर सका। अब जनता फिर से विद्रोह पर उतारू हो गयी। इस बार बोल्शेविक दल ने केरेंसकी सरकार के सामने युद्ध समाप्त करने, किसानों को जमीन देने और सारे अधिकार सोवियतों को देने की मांग रखी। लेनिन को जब जनता के इस क्रांतिकारी रुख के बारे में पता चला उस समय वे ज्यूरिख में थे। वे तत्काल रूस पहुँचने के लिए व्यग्र हो उठे। जर्मनों की सहायता से लेनिन अपने 29 साथियों के साथ बर्लिन, कोपेनहेगेन के रास्ते से स्वीडन और फिनलैंड होते हुए पेत्रोग्राद पहुँचे। इस तरह लेनिन रूस पहुँच गए और क्रान्ति को बढ़ावा देने के लिए इससे सीधे तौर पर जुड़ गए तथा व्यापक कारवाई आरम्भ कर दी।

लेनिन के रूस पहुँचने से वोल्शेविक दल को बहुत बल मिला। अपने स्वागत के लिए एकत्रित लोगों को संबोधित करते हुए लेनिन ने कहा ृ 'आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, यूरोपीय साम्राज्यवाद की इमारत ढहने वाली है। आपने जिस रुसी क्रान्ति की शुरुआत की है उससे एक नए युग का आरम्भ हुआ है। इससे साम्राज्यवाद के समापन की भूमिका तैयार हुई है। सारी दुनिया को इस समाजवादी क्रांति का स्वागत करना चाहिए।' लेनिन ने इस बात की तरफ इशारा किया कि अब तक रूस में जो भी क्रान्ति हुई है वह बुर्जुआ क्रान्ति है इसी की नींव पर अब दूसरी क्रान्ति होनी चाहिए। इसी के द्वारा रूस की सत्ता श्रमिकों और किसानों के हाथों में आएगी। लेनिन ने खुले तौर पर यह घोषणा की कि लोग भूख और युद्ध नहीं बल्कि रोटी और शान्ति और जमीन चाहते हैं। जबकि रूस की तत्कालीन सरकार शांति की जगह लड़ाई, रोटी की जगह भूख और किसानों की जगह जमीदारों को जमीन दे रही है। लेनिन के इस नारे का जनता पर व्यापक असर पड़ा। लेनिन ने अब किसानों, मजदूरों, और सिपाहियों को अपने पक्ष में करने के उद्देश्य से सोवियतों में काम करना शुरू कर दिया। यद्यपि इन सोवियतों की इस समय के शासन में कोई अहमियत नहीं थी लेकिन दूरदर्शी लेनिन जानता था कि इन सोवियतों के द्वारा ही आम जनता का विश्वास अर्जित किया जा सकता है और इस माध्यम से सत्ता पर अधिकार और इन सोवियतों के के द्वारा ही रूस में साम्यवादी शासन व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है। इन सोवियतों के माध्यम से लेनिन ने तत्कालीन सरकार के समक्ष निम्नलिखित मांगे रखीं।

(1) रूस में जो भी बड़ी जमींदारियाँ है उनको तत्काल जब्त कर लिया जाय।

(2) राज्य के समस्त व्यवसायों पर राज्य का सीधा नियंत्रण स्थापित किया जाय।

(3) रूस के राष्ट्रीय ऋण को गैर कानूनी घोषित कर दिया जाय। वर्तमान सरकार इस ऋण की अदायगी से सख्ती से इनकार कर दे।

(4) देश के सभी कारखानों का संचालन मजदूर सभाओं द्वारा किया जाय।

(5) रोमानोव वंश के शासक जारों ने अतीत में विदेशों से जो भी समझौते और संधियाँ किये थे उन सबको तुरन्त रद्द किया जाय।

(6) युद्ध को तुरंत बन्द कर के शांति स्थापित की जाय।

(7) आम जनता को मत देने का अधिकार प्रदान किया जाय। पूँजीपतियों और अन्य लोगों को मत देने के अधिकार से वंचित कर दिया जाय।

लेनिन रूस पहुँचने के बाद पूरे मनोयोग से काम कर रहे थे। अप्रैल 1917 में उन्होंने एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें बोल्शेविक पार्टी के मंतव्यों और कार्यक्रम को विशद रूप से प्रकाशित किया। इस पुस्तिका को 'अप्रैल थीसिस' के नाम से भी जाना जाता है। अपनी इस पुस्तिका में लेनिन ने नारा दिया दृ 'सारी शक्ति सोवियतों को।' लेनिन ने अपनी धारणा को स्पष्ट करते हुए अपनी इस पुस्तिका में लिखा– 'हमें पूँजीवाद को धराशायी करना है और युद्ध को रोकना है। बुर्जुआ वर्ग और मेन्शेविक दल सर्वहारा को भ्रमित करने का प्रयास कर रहे हैं। क्रान्ति अब समाजवादी दौर में प्रवेश कर चुकी है। भूमि और बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय और पुलिस एवं सेना को खत्म कर दिया जाय।' लेनिन के इस क्रान्तिकारी विचार से लोग चकित थे। और पहले तो इसके यथार्थ रूप में परिणत हो पाने पर भी सन्देह व्यक्त किया गया लेकिन धीरे–धीरे लोगों ने लेनिन के विचारों के प्रति अपना समर्थन व्यक्त करना शुरू कर दिया। बहरहाल इस समय तक बोल्शेविक दल के सदस्यों की संख्या अस्सी हजार की संख्या पार कर गयी थी। लेनिन ने तत्कालीन हालात को देखते हुए बोल्शेविक पार्टी की एक कान्फ्रेन्स का आयोजन किया। खुले तौर पर पार्टी की यह पहली कान्फ्रेन्स थी क्योंकि अब तक पार्टी की जो भी कांफ्रेंस आयोजित की गयी थी वे या तो विदेशों या फिर गोपनीय रूप से आयोजित हुईं थीं। अब बोल्शेविक दल ने खुले तौर पर अपनी कारवाईयाँ शुरू कर दीं।

लेनिन जानता था कि बोल्शेविक क्रान्ति के लिए उपयुक्त समय आ गया है। अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने सन्नद्ध हो कर काम करना आरम्भ कर दिया। लेनिन ने यह उदघोषणा की कि हमें रूस के लिए न पार्लियामेंटरी रिपब्लिक की जरूरत है, न मध्य वर्ग के लोकतन्त्रात्मक शासन की बल्कि हमें ऐसी सरकार की जरूरत है जो किसानों, मजदूरों और सिपाहियों के प्रतिनिधियों की सरकार हो। रूस की राज्य क्रान्ति तभी पूर्ण होगी जब सत्ता मध्यवर्ग के हाथों से लेकर किसानों, मजदूरों और सर्वसाधारण जनता को सौंप दी जाएगी। इस क्रम में देश में आर्थिक एवं सामाजिक क्रान्ति की सख्त जरूरत है। साथ ही इस बात की भी जरूरत है कि पूंजीपतियों एवं जमींदारों का अनिवार्य तौर पर विनाश हो। दूरदर्शी लेनिन यह जानता था कि इस समय रूस में श्रमिकों की संख्या इतनी नहीं है कि केवल उनके बलबूते सत्ता पर काबिज हुआ जा सके। इसके लिए बोल्शेविकों को देहातों में रहने वाली उस जनता की तरफ रूख करना होगा जो किसान तो है पर उसके पास अपनी जमीन नहीं है। इसीलिये किसानों का समर्थन प्राप्त करने के लिए लेनिन ने खेतों पर किसानों के अधिकार की मांग की। यही नहीं उसने व्यापक जनसमुदाय को अपने से जोड़ने के लिए रोटी का आह्वान किया। उसके नारे 'युद्ध का अन्त हो, किसानों को खेत मिले और गरीबों को रोटी

प्राप्त हो' का जनता पर जादू जैसा असर पड़ा। कहना न होगा कि लेनिन की उपर्युक्त मांगों से मजदूर, सिपाही और किसान उससे सीधे तौर पर जुड़ गए और लेनिन को देश की व्यापक जनता का समर्थन प्राप्त हो गया। स्थिति को अनुकूल बनाने के लिए बोल्शेविक कार्यकर्ता अब लोगों के बीच में जा कर सरकार के जनविरोधी कार्यों को उजागर कर उसकी आलोचना करने लगे साथ ही ये लोगों को इस बात का विश्वास दिलाने लगे कि सत्ता में आने पर बोल्शेविक सरकार रूसी जनता की हर समस्या का निराकरण करेगी साथ ही हर व्यक्ति के लिए रोटी और कपड़ा प्राथमिकता के तौर पर मुहैया कराएगी।

यद्यपि लेनिन अभी प्रत्यक्ष कारवाई के पक्ष में नहीं था फिर भी जुलाई 1917 ई. में बोल्शेविकों ने क्रान्ति का बिगुल बजा दिया। बोल्शेविक कार्यकर्ता हथियार ले कर सडकों पर उतर गए। लेकिन बोल्शेविकों की संख्या अभी भी बहुत कम थी। केरेंसकी की तत्कालीन सरकार ने बोल्शेविकों के विद्रोह को आसानी से दबा दिया। बोल्शेविक विद्रोह की नाकामयाबी से तत्कालीन सरकार के हौसले और शक्ति में काफी इजाफा हुआ। बोल्शेविक पार्टी को गैरकानूनी करार दिया गया और इस दल के नेताओं और कार्यकर्ताओं को पकड़ कर जेल में डाल दिया गया। इसी क्रम में प्रमुख बोल्शेविक नेता ट्राटस्की भी गिरफ्तार कर लिया गया। लेनिन वेश बदल कर रूस से बाहर निकलने में कामयाब रहे और वे फिनलैंड चले गए। बोल्शेविकों के लिए यह सुकून की बात थी।

बोल्शेविकों की इस असफलता का लाभ उठाते हुए देश के प्रधान सेनापति जनरल कार्निलाव ने सितम्बर 1917 के आरम्भ में सत्ता पर अधिकार जमाने की नाकाम कोशिश की। जनता में इसका खराब सन्देश गया। जनता को यह लगा कि कुछ प्रतिक्रियावादी तत्व क्रान्ति का खात्मा कर अपने प्रतिक्रियावादी शासन की स्थापना करना चाहते हैं। जनता का झुकाव अब साम्यवादियों की तरफ होने लगा। अपने खिलाफ होते माहौल को देखते हुए केरेन्सकी की सरकार ने साम्यवादी नेताओं की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास किया और इस क्रम में ट्राटस्की को रिहा कर दिया। ट्राटस्की एक बार फिर क्रांति के प्रचार–प्रसार में जोरो–शोर से जुट गया। लेनिन भी अनुकूल परिस्थिति को देखते हुए रूस वापस आ गया। तत्कालीन सरकार जनता में बड़ी तेजी से अलोकप्रिय होती जा रही थी और सोवियतों में बोल्शेविकों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी।

इसी बीच अक्टूबर 1917 में जब रूस युद्ध में लगातार पराजय का सामना कर रहा था, केरेन्सकी की सरकार ने राजधानी को पेत्रोग्राद से मास्को ले जाने का विचार किया। सरकार के इस निर्णय से जनता में खराब सन्देश गया और लोगों ने इसे सरकार द्वारा किया गया विश्वासघात माना। बोल्शेविकों ने इस अवसर का फायदा उठाने के लिए सोवियतों के साथ मिलकर पेत्रोग्राद को राजधानी के रूप में बचाए रखने के लिए मोर्चेबंदी की। आशानुरूप बोल्शेविकों को लगभग सभी दलों का साथ मिला और सरकार को अपना निर्णय स्थगित करना पडा। तात्कालिक रूप से बोल्शेविकों की यह एक बड़ी विजय थी। अब लेनिन ने महसूस किया कि यह स्थिति बोल्शेविक क्रान्ति के अनुकूल है और सत्ता पर अधिकार जमाने का प्रयास शुरू कर देना चाहिए। इसी समय अपने लिखे गए लेख 'समय आ गया है' में लेनिन ने लिखा– 'हम सर्वहारा क्रान्ति के मुहाने पर खड़े हैं जो दुनिया भर में होने जा रही है। हमें यह अवसर नहीं गंवाना चाहिए।' हालांकि लेनिन के कुछ साथियों जैसे जिनोफिक और कामोनेफ जैसे बड़े नेताओं को यह भय था कि कहीं यह प्रयास भी पहले की तरह ही विफल न हो जाय। लेकिन ट्राटस्की, स्टालिन और पार्टी कार्यसमिति के अधिकाँश सदस्यों का समर्थन मिलने

से लेनिन का मनोबल बढ़ा। लेनिन का प्रस्ताव दो के बदले दस सदस्यों के बहुमत से कार्यसमिति ने स्वीकार कर लिया। लेनिन के यह विश्वास दिलाने पर कि किसानों को जमीन देते ही बोल्शेविकों को व्यापक समर्थन प्राप्त हो जाएगा, दूसरे क्रान्ति की तैयारी जोरो–शोर से होने लगी। सात सदस्यों की 'पोलित ब्यूरो' को सशस्त्र विद्रोह की जिम्मेदारी सौंपी गयी। इसी बीच पेत्रोग्राद की सोवियत, जो राजधानी को पेत्रोग्राद में ही बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध थी, ने भी अपनी 'सैन्य क्रांतिकारी समिति' का गठन कर लिया ताकि उपयुक्त अवसर आने पर वह भी अपना योगदान दे सके। क्रान्ति के लिए 25 अक्टूबर की तारीख (ग्रेगेरियन कैलेण्डर के अनुसार 7 नवम्बर) निश्चित की गयी। और इसको कार्य रूप देने के लिए तैयारियाँ शुरू कर दी गयीं।

1.4 अक्टूबर क्रान्ति

यद्यपि बोल्शेविकों की क्रान्ति के लिए कोई खास सैन्य तैयारी नहीं थी लेकिन पेत्रोग्राड के 'सैन्य क्रांतिकारी समिति' के सैनिकों ने सोवियतों का साथ देने का निश्चय किया। ध्यातव्य है कि ये सोवियतें बोल्शेविकों के पक्ष में थीं। उत्साहित लेनिन ने यह घोषणा की कि 'अब हमारा समय आ गया है। बोल्शेविकों को यह चाहिए कि वे अब राज्य की सारी शक्ति अपने हाथों में ले लें।' 7 नवम्बर 1917 की भोर में दो बजे बोल्शेविक स्वयंसेवकों की छोटी–छोटी टुकड़ियों ने बड़ी आसानी से पेत्रोग्राड में रेलवे स्टेशन, सरकारी बैंक, टेलीफोन एक्सचेंज, पोस्ट आफिस, बिजली घर और खजाने जैसे अन्य महत्वपूर्ण सरकारी प्रतिष्ठानों पर कब्जा कर लिया। बोल्शेविक स्वयंसेवकों ने अस्थायी सरकार के भवनों को घेर लिया गया। 'हमें रोटी दो! युद्ध बन्द करो!!' के मजदूरों के गगनभेदी नारों से आसमान गूंजने लगा। लाचार केरेन्सकी राजधानी छोड़ कर भाग गया जबकि उसके मंत्रिमंडल के कई मंत्री गिरफ्तार कर लिए गए। इस प्रकार यह क्रान्ति लगभग पूरी तरह शान्तिपूर्ण थी। क्रान्ति के दिन राजधानी पेत्रोग्राद में केवल दो व्यक्ति मारे गए। राजधानी पेत्रोग्राड पर बोल्शेविकों का कब्जा हो गया। अस्थायी सरकार के मुख्यालय विंटर पैलेस पर आक्रमण कर प्रतिनिधि सरकार के सभी प्रतिनिधियों को कैद कर लिया गया। केरेन्सकी किसी तरह भाग निकला। जल्दी–जल्दी में सोवियतों की कांग्रेस की एक बैठक बुलाई गयी जिसमें लेनिन के नेतृत्व में एक नए मंत्रिमंडल का गठन किया गया। ट्राटस्की को विदेश एवं युद्ध मंत्री और स्टालिन को गृह मन्त्री बनाया गया। इस तरह 7 नवम्बर 1917 को लेनिन ने रूस की सत्ता संभाल ली। इसी दिन शाम को ६ बजे सोवियतों की कांगेस आरम्भ हुई। अमरीकी पत्रकार जान रीड जो उस वक्त वहां मौजूद थे घटना के ब्यौरे को अपनी किताब 'टेन डेज दैट शुक द वर्ल्ड' में दर्ज करते हुए लिखते हैं दृ लेनिन जब बोलने के लिए उठे तो उनका लम्बे समय तक तालियों से स्वागत हुआ। इसके पश्चात लेनिन ने कहा 'अब हम समाजवादी व्यवस्था की रचना के लिए आगे बढ़ेंगे।' आगे बोलते हुए लेनिन ने कहा– 'पहला काम है शान्ति स्थापित करने के लिए अगली कार्रवाई करना।... ... हम सोवियत शर्तों के आधार पर सभी युद्धरत देशों की जनता से शान्ति का प्रस्ताव करेंगे। ये शर्तें हैं दृ बगैर संयोजनों के, बगैर हरिजनों के और जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के साथ शान्ति। साथ ही हम अपने वादे के मुताबिक सभी गुप्त संधियों को प्रकाशित करेंगे और उन्हें रद्द करेंगे... ... युद्ध और शान्ति का प्रश्न इतना स्पष्ट है कि मेरा ख्याल है कि मैं बिना किसी प्रस्तावना के सभी युद्ध रत देशों के जनों के नाम घोषणा के मसौदे को पढ़ सकता हूँ।' रुसी कैलेण्डर के अनुसार 27 अक्टूबर (9 नवम्बर) को प्रातः 2.00 बजे एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकार

किया जिसके अनुसार व्यक्तिगत भू–स्वामित्व को समाप्त करते हुए जमीन को पूरे राष्ट्र की संपत्ति घोषित कर दिया गया। इसके साथ ही एक एकतरफा घोषणा में जार द्वारा किये गए सभी गैर बराबरी वाले समझौतों को अस्वीकार कर दिया गया। ये समझौते चीन, इराक और अफगानिस्तान जैसे देशों पर जार द्वारा जबरन थोप दिए गए थे। समस्त जनगण के लिए समानता और आत्मनिर्णय के अधिकार की घोषणा की गयी। ग्रेगेरियन कैलेण्डर के मुताबिक यह क्रान्ति नवम्बर में हुई लेकिन प्राचीन रूसी पंचांग के अनुसार उस समय अक्टूबर माह था इसलिए इतिहास में इस क्रान्ति को 'अक्टूबर क्रान्ति' का नाम दिया गया।

सत्ता प्राप्त हो जाने के बावजूद लेनिन को अभी भी संविधान निर्मात्री परिषद से निपटना बाकी था जहां केरेन्सकी के समर्थकों का अभी भी बहुमत था। लेनिन ने चतुराई का परिचय देते हुए यह घोषणा की कि 'संविधान निर्मात्री परिषद्' को सत्ता सौंप देना रूसी बुर्जुआओं के साथ समझौता करना होगा। ऐसे में परिषद् का जबरन विघटन कर दिया गया। वर्ग शासन के पक्ष में इसे बहुमत शासन का परित्याग का नाम दिया गया। इस तरह लेनिन के राह में खड़ी अंतिम बाधा का भी समापन हो गया। रूस में अब पूरे तौर पर सर्वहारा के अधिनायकवाद की प्रतिष्ठा हो गयी। कुछ ही दिनों में लेनिन के सक्रिय प्रयासों से बोल्शेविक पार्टी और सरकार का पूरे देश में वर्चस्व स्थापित हो गया। मार्च 1919 में बोल्शेविक पार्टी का नाम बदल कर 'कम्युनिस्ट पार्टी' कर दिया गया। इतिहासकार हेजेन ने इस घटना का मूल्यांकन करते हुए लिखा – 'यूरोप के इतिहास का निश्चित एवं आमूल परिवर्तन का युग आरम्भ हुआ जिसका प्रभाव अंततोगत्वा युद्ध से सम्बन्धित सभी देशों पर किसी न किसी रूप में पड़ा। इस भयावह प्रकम्पन में एक नया तत्व विद्यमान रहा। वह तत्व था एक छोटा, गंजा और दाढ़ी वाला व्यक्ति जो अपने मन की बात जानता था और जिसने उपलब्ध अवसरों का प्रयोग अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया। एक योग्य एवं अनुभवी नेता, महान संकल्प और दृढ़ इच्छा शक्ति वाला व्यक्ति सहसा सत्तारूढ़ हो गया था। उसकी शक्ति गंभीर अथवा क्षणिक साबित हो सकती थी, किन्तु कम से कम कुछ समय के लिए वह निर्णयात्मक जरूर होगी और उसका प्रभाव देश की सीमाओं से बाहर बहुत दूर तक पडेगा।' इतिहास गवाह है कि हेजेन का यह अनुमान बिलकुल सच साबित हुआ।

1.5 लेनिन की सफलता के कारण

लेनिन ने जिस तरह रूस में बोल्शेविक सरकार की स्थापना की वह असाधारण एवं अकल्पनीय थी थी। इसके पीछे लेनिन की सूझ–बूझ एवं दूरदर्शिता थी। जून 1914 में सोवियतों की कांग्रेस की एक बैठक में जब एक प्रवक्ता ने चुनौती भरे स्वर में कहा कि अभी रूस में कोई ऐसी पार्टी नहीं है जो सरकार संभालने का दावा कर सके तो लेनिन ने खड़े हो कर कहा था कि उनकी पार्टी इसके लिए तैयार है। यद्यपि इस समय लेनिन की बात सोवियत के सदस्यों की हंसी के बीच दब कर रह गयी थी लेकिन समय ने लेनिन को सच साबित किया। लेनिन की सफलता के लिए कई कारण उत्तरदायी थे जो इस प्रकार हैं।

(1) बचपन से ही लेनिन की रूचि मार्क्सवाद में थी। इसी क्रम में उसने मार्क्सवादी साहित्य का गहन अध्ययन किया और अपने आगे बढ़ने के लिए उपयुक्त मार्ग प्राप्त किया।

(2) लेनिन जानता था कि पार्टी को आम जनता से जोड़ कर ही विस्तृत परिप्रेक्ष्य प्रदान किया जा सकता है। लोक शक्ति के प्रयोग और उपयोग में

उसे महारत हासिल थी। इसे वास्तविकता में परिणत कर वह रूस का सामाजिक और राजनीतिक कायापलट करने में कामयाब हुआ।

(3) लेनिन दृढ़–संकल्प ले कर कार्य करता था। अपने उद्देश्य और लक्ष्य को वह पहले भलीभांति निर्धारित कर लेता था फिर उसे प्राप्त करने के लिए जी–तोड़ प्रयत्न करना शुरू कर देता था। इस क्रम में वह कोई भी मूल्य चुकाने के लिए सदैव तैयार रहता था।

(4) लेनिन का यह सौभाग्य था कि उसे हमेशा प्रतिबद्ध अनुयाईयों का साथ मिला। उसके समर्थक भी काफी योग्य एवं प्रतिभाशाली लोग थे जिसमें ट्राटस्की और स्टालिन का नाम प्रमुख है।

(5) लेनिन मूलतः एक पत्रकार था। इस नाते उसमें परिस्थितियों का विश्लेषण करने की असाधारण क्षमता थी। हर घटना का वह तर्कपूर्ण विश्लेषण करता था।

(6) लेनिन की खूबी यह थी कि वह एक कुशल नेतृत्वकर्ता था। इस क्रम में किसी भी मुद्दे पर वह अपने साथियों के साथ जम कर तर्क एवं बहस–मुबाहिसा करता था। इसके बाद ही वह किसी निर्णय पर पहुँचता था। तदुपरान्त ही वह एकजुट हो कर उस निर्णय पर अमल करता था। इससे वह अपने सहयोगियों का पूरा–पूरा विश्वास अर्जित कर लेता था।

(7) अन्तिम निर्णय लेने के पश्चात भी भिन्न विचार रखने वाले साथियों के प्रति वह उदार रहता था और उनके प्रति कोई दुर्भावना अपने मन में नहीं पालता था। असहमति के आदर से वह अपने मित्रों में बहुत लोकप्रिय था।

(8) लेनिन बहुत स्पष्टवादी था। महान वक्ता न होने के बावजूद वह सीधे और साफ शब्दों में अपने विचारों को जनता के सामने रख देता था। इससे जनता को यह विश्वास हो जाता था कि लेनिन उससे कुछ छिपाता नहीं है और वह लेनिन पर पूरा भरोसा करने लगती थी।

(9) निःस्वार्थ होना और सादगीपरकता उसके अन्य मुख्य गुण थे जिससे वह जनता का मन मोह लेता था। सर्वोच्च शासक बनने के बाद भी लेनिन ने अपने लिए कोई विशेष सुविधा और प्रबंध की व्यवस्था नहीं की। रूस का सर्व शक्तिशाली व्यक्ति होते हुए भी जब उसे कभी कोई पुस्तक रात भर के लिए रखनी होती थी तो इसके लिए वह बाकायदा पुस्तकालयाध्यक्ष से अनुमति लेता था।

(10) लेनिन में दूरदर्शिता थी। वह यह भांप सकने में पूरी तरह समर्थ था कि कब परिस्थिति उसके अनुकूल है कब प्रतिकूल। उसकी इस क्षमता ने भी उसकी सफलता में प्रमुख भूमिका निभायी।

लेनिन के इन सब गुणों से उसके समर्थक प्राण–प्रण से उसका साथ देते थे। विपरीत से विपरीत परिस्थितियों का सामना भी वह बड़े धैर्य से करता था। इसके अतिरिक्त जनता की नब्ज पर भी हमेशा उसकी पकड़ रहती थी। लेनिन को मालूम था कि जनता को केवल शान्ति, सुकून एवं रोटी चाहिए। इसे प्रदान कर उसने जनता का वह प्रबल समर्थन प्राप्त कर लिया जो दूसरों के लिए हमेशा स्वप्न

सरीखा था। अपने इन सब गुणों की वजह से जनता की दृष्टि में लेनिन पितृतुल्य हो गया और हर कदम पर जनता का उसे भरपूर साथ एवं सहयोग मिला।

1.6 लेनिन के उद्देश्य

सत्ता प्राप्ति के पश्चात लेनिन ने अपनी और बोल्शेविक सरकार की स्थिति को मजबूत करने के उद्देश्य से मुख्य रूप से चार उद्देश्य निश्चित किये। ये उद्देश्य इस प्रकार थे।

(1) लेनिन ने जनता से जिस शान्ति का वादा किया था उसे जर्मनी के साथ सन्धि करके पूरा करना।

(2) साम्यवादी व्यस्था के अनुकूल सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों की शुरुआत करना।

(3) बोल्शेविक दल के हाथों में सत्ता का केन्द्रीयकरण करना।

(4) रूस को आतंरिक कट्टरवादी ताकतों एवं बाहरी ताकतों के हस्तक्षेप से मुक्त रखना।

अपने उद्देश्य प्राप्ति के प्रथम क्रम में लेनिन ने 3 मार्च 1918 को जर्मनी के साथ बेटलिटोब्स्क की ऐतिहासिक संधि कर ली। इस संधि से रूस को अपने उस बड़े भू–भाग को खोना पड़ा जो उसने दो सौ वर्षों की अवधि में युद्ध जीत कर हासिल किये थे। संधि के अनुसार बाल्टिक के तटवर्ती क्षेत्र कोरेल, एस्टोनिया, सिवोजिया, लिथुआनियाय पोलैंड, यूक्रेन, फिनलैंड, जार्जिया, बातुम, अरधान और कार्स जैसे क्षेत्रों से रूस को हाथ धोना पड़ा। लेनिन के लिए इन क्षेत्रों का खोना उतना महत्वपूर्ण नहीं था जितनी कि रूसी सैनिकों की शान्ति। रूस के सैनिक लगातार युद्धों से ऊब चुके थे। युद्ध बन्द हो जाने से रुसी सैनिक न केवल लेनिन से खुश हो गए बल्कि उसके पक्के समर्थक भी बन गए। सैनिकों के इस प्रबल समर्थन से बोल्शेविक सरकार को प्रारम्भ में ही मजबूती मिल गयी।

दूसरे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लेनिन ने कई महत्वपूर्ण एवं चौका देने वाले कदम उठाये। जमींदारों की समस्त जमीन बिना किसी मुआवजा दिए उनसे छीन ली गयी। जमीन को राष्ट्रीय संपत्ति घोषित कर के उसे किसानों में वितरित कर दिया गया। लेनिन के इस कदम से रूस का किसान वर्ग पूरी तरह बोल्शेविक पार्टी का समर्थक बन गया। अब बारी श्रमिक वर्गों के लिए हितकारी उपायों की थी। इसके लिए लेनिन ने देश के समस्त निजी कारखानों का राष्ट्रीयकरण कर के इनके उत्पादन तथा क्रय–विक्रय की व्यवस्था मजदूर समितियों के हाथों में पूरी तरह सौंप दिया। इससे रूस के मजदूर भी पूरी तरह बोल्शेविकों के पक्ष में आ गए। देश में निजी व्यापार को पूरी तरह बन्द कर दिया गया और खुदरा दुकानों को समाप्त कर दिया गया।

बोल्शेविक दल के हाथों में सत्ता का केन्द्रीयकरण करने के लिए लेनिन ने कई ऐसे उपाय किये जो पूरी दुनिया की अब तक चली आ रही परम्परा को खंडित करने वाले थे। इन उपायों का मूल मंतव्य बोल्शेविक दल की नीतियों के प्रति प्रतिबद्ध व्यवस्था की स्थापना करना था। इस क्रम में पुराने कर्मचारियों को उनके पदों से हटा कर पार्टी के सदस्यों को सभी महत्वपूर्ण उच्च पदों पर नियुक्त कर दिया गया। नियुक्ति के लिए न तो उनकी कोई परीक्षा ली गयी न ही उनकी अर्हता पर ध्यान दिया गया। पार्टी के प्रति प्रतिबद्धता ही पद की एकमात्र योग्यता

थी। न्यायालयों में ऐसे जजों की नियुक्तियां की गयीं जिन्हें कानून का कोई औपचारिक प्रशिक्षण नहीं मिला था। बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और उसमें निजी खाते में जमा सारी रकम जब्त कर ली गयी। यही नहीं प्रतिक्रियावादी आर्थोडाक्स चर्च को पूरी तरह बन्द करके उसकी सारी संपत्ति छीन ली गयी। अब तक रूस ने जितने भी सार्वजनिक ऋण लिए थे उनकी अदायगी से उसने साफ–साफ मना कर दिया। आगे चल कर सभी व्यक्ति के लिए शारीरिक श्रम अनिवार्य कर दिया गया। जनवरी 1918 में लाल सेना (रेड आर्मी) की स्थापना की गयी जिसका अध्यक्ष ट्राटस्की को बनाया गया। इस प्रकार लेनिन ने रूस की पुरातन काल से चली आ रही सामाजिक, आर्थिक और सैनिक व्यवस्थाओं में आमूल–चूल परिवर्तन कर दिया और अपने अनुकूल बिलकुल नयी व्यवस्था की स्थापना की।

बोल्शेविक सत्ता की स्थापना के साथ ही उसे आतंरिक एवं वाह्य मोर्चों पर कई विरोधी ताकतों का सामना करना पड़ा। पुराने राजवंश और उसके समर्थक, जमींदार, कुलीन और आभिजात्य वर्ग और इनके प्रति निष्ठावान कर्मचारी वर्ग, लोकशाही के पोषक उदारवादी, संवैधानिक डेमोक्रेट, लेनिन विरोधी, मेन्शेविक और सामाजिक क्रान्तिकारी वर्ग सभी बोल्शेविक दल के खिलाफ थे और देश भर में नयी सत्ता का प्रबल विरोध कर रहे थे। डॉन तलहटी में सैनिक अधिकारियों, सम्पन्न भूमिपतियोंऔर संपत्ति वंचित व्यवसाइयों की सेना तैयार हो गयी। ओझक में एक विद्रोही गुट ने साईबेरिया की आजादी की घोषणा कर दी। आस्ट्रियाई फौज के बन्दी बनाये हुए पैंतालीस हजार चेक नौजवानों की एक सेना जिसका निर्माण रूस की तरफ से लड़ने के लिए किया गया था, को बोल्शेविक अधिकारियों ने जब निरस्त्र करने का प्रयास किया तो वे सोशल डेमोक्रेटो से जा मिले। बोल्शेविकों का यह सौभाग्य था कि उसके ये तमाम विरोधी कभी भी एकजुट न हो सके। एक और वजह से इन बोल्शेविक विरोधियों को मुँह की खानी पड़ी क्योंकि वे मूलतः दक्षिणपंथी थे और जमींदारों की जमीन उन्हें वापस लौटाए जाने के पक्षधर थे। इससे आम जनता का इन्हें कभी भी समर्थन नहीं मिल पाया और अंततः पराजित होना पड़ा।

वाह्य मोर्चे पर भी स्थिति बोल्शेविक सरकार के प्रतिकूल थी। मित्र राष्ट्र बोल्शेविक सरकार को सत्ता से उखाड़ फेकने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार थे। मित्र राष्ट्रों ने जापान के सामने ब्लाडिवास्टक के रास्ते रूस में प्रवेश करने का प्रस्ताव रखा जिसे उसने स्वीकार कर लिया। इस महत्वाकांक्षी योजना के अंतर्गत मित्र राष्ट्रों की एक टुकड़ी को ब्लाडिवास्टक में उतर कर साईबेरिया को पार करते हुए मध्य बोल्गा क्षेत्र में चेक सैनिक टुकड़ी के साथ जा मिलना था। इस सेना को बोल्शेविकों का नाश करते हुए पश्चिम की और बढ़ कर जर्मनों पर हमला करना था। इस योजना के अंतर्गत 72000 जापानी और 8000 अमरीकी सैनिकों को ब्लाडिवोस्टक में उतार दिया गया। यही नहीं बोल्शेविक सेना को चुकतेन में जर्मनों के साथ और ओडेस्सा बंदरगाह पर उतर चुके फ्रांसीसियों के साथ भी लड़ना पड़ा। यूक्रेन, आर्मीनिया, जार्जिया और अजरबैजान के लोगों ने भी अपनी आजादी घोषित कर दी। पेत्रोग्राद सरकार के समर्थकों ने इन पर पुनः कब्जा कर लिया। इसी बीच एडमिरल कोल्जाक ने विदेशी सहायता से खुद को रूस का शासक घोषित कर लिया था। इसे भी पराजित किया गया। नवोदित पोलैंड की नजरे यूक्रेन पर टिकी थीं और इस क्षेत्र पर कब्जे के लिए वह प्रयासरत भी था। फलतः पोलैंड पर हमला कर उसकी महत्वाकांक्षा को नाकाम कर दिया गया। दरअसल मित्र राष्ट्रों के बीच आपस में मतैक्य नहीं था। फ्रांस रूस में

हस्तक्षेप के पक्ष में था जबकि इंग्लैंड और अमरीका जैसे देश जर्मनी की पराजय के बाद किसी कारवाई के पक्ष में नहीं थे। इधर ट्राटस्की ने लाल सेना का कुशल नेतृत्व करते हुए हर मोर्चे पर सुयोग्य नायकों की नियुक्ति की जिसने प्रतिबद्धता के साथ इन विदेशी हमलों का सफलतापूर्वक सामना किया और नवोदित रूसी सरकार की रक्षा की।

क्रान्ति के बाद के नए रूस ने दुनिया का ऐसा पहला देश होने का गौरव प्राप्त किया जिसने विदेशी शासन से सभी देशों की स्वाधीनता के उद्देश्य का खुल कर समर्थन किया। क्रान्ति के तत्काल बाद सोवियत संघ ने उन सभी असमान संधियों को समाप्त कर दिया जिसे रूस के पूर्व तानाशाह शासक जार ने चीन पर लाद रखी थी। यही नहीं अब रूस ने चीन के एकीकरण में आगे बढ़ कर सन–यात–सेन की पूरी सहायता की। रूसी क्रान्ति ने दुनिया भर के स्वतन्त्रता आन्दोलनों को एक नयी दिशा प्रदान की। रुसी प्रभाव से इन आन्दोलनों ने अपने एजेण्डे में योजनाबद्ध आर्थिक विकास के द्वारा सामाजिक और आर्थिक समानता लाने का सिद्धान्त शामिल कर लिया।

1.7 लेनिन की नयी आर्थिक नीति (New Economic Policy : NEP)

नवोदित बोल्शेविक सरकार को आन्तरिक से लेकर बाह्य कई मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ा जिससे उसकी आर्थिक स्थिति अस्त–व्यस्त हो गयी। 1920–1921 तक कृषि और उद्योग का उत्पादन न्यूनतम स्तर पर पहुँच गया। गृह युद्ध के कारण हजारों एकड़ भूमि खेती के बिना रह गयी। बोल्शेविक सरकार द्वारा किसानों से जबरन अनाज लेने की नीति से कृषकों में आक्रोश फैल गया और 1920–1921 में किसानों में विद्रोह फैल गया। यह विद्रोह रूसी जनता के असंतोष का परिचायक था। इस प्रकार पहले से ही जर्जर और तबाह हो चुके रूस की स्थिति दयनीय हो गयी थी। लेनिन ने इन विद्रोहों का कडाई से दमन तो कर दिया लेकिन इस समय की मांग को देखते हुए अपनी नीतियों में कुछ ऐसे परिवर्तन किये जो पूँजीवादी व्यवस्था के अनुकूल थे। मार्च 1921 ई. में कम्युनिस्ट पार्टी के कन्वेंशन में भाषण देते हुए लेनिन ने कहा दृ 'हम ऐसी दरिद्रता और विनाश की स्थिति में पहुँच गए हैं, हमारे किसानों और मजदूरों की उत्पादक शक्ति में इतनी गिरावट आ गयी है कि हमें उत्पादन बढाने के लिए सभी बातों और सिद्धान्तों को एक तरफ रख देना चाहिए।' इस प्रकार लेनिन ने साम्यवादी व्यवस्था में बदलाव करते हुए पूँजीवादी व्यवस्था की तरफ लौटने के उपक्रम में जिस आर्थिक नीति की रूपरेखा प्रस्तुत की उसे कम्युनिस्ट पार्टी के दलीय सम्मलेन ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार लेनिन के उस नयी आर्थिक नीति (नेप) की शुरुआत हुई जिसे वह अपनी पराजय नहीं बल्कि दो कदम आगे बढ़ने के लिए एक कदम पीछे हटने की रणनीति कहता है। यह पीछे हटना अपनी शक्ति को संगठित करने के लिए जरूरी था। इस प्रकार इस नीति के माध्यम से लेनिन ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय तो दिया ही। साथ ही आम जनता के लिए अपनी उस प्रतिबद्धता को भी प्रदर्शित किया जो उसके लिए हमेशा सर्वोपरि थी।

नयी आर्थिक नीति के अनुसार कृषि, उद्योग और व्यापार के क्षेत्रों में व्यापक बदलाव किया गया। साम्यवादी व्यवस्था में सरकार किसानों से उनकी जरूरत से अधिक अनाज को जमा करा लेती थी, अब इसमें बदलाव लाते हुए किसानों से नकद कर लिया जाने लगा और उन्हें अपने बचे अनाज को अपनी

मर्जी के अनुसार बेचने की अनुमति दे दी गयी इसी क्रम में सरकार ने जुलाई 1921 में देश में खुले रूप से आतंरिक व्यापार करने की अनुमति प्रदान कर दी हालांकि विदेश व्यापार पर सरकार का अभी भी पूर्ण नियन्त्रण बना रहा। सरकारी नियन्त्रण के अधीन निजी परचून व्यापार की अनुमति प्रदान कर दी गयी।

औद्योगिक क्षेत्र में भी परिवर्तन किया गया। बड़े–बड़े कारखानों पर तो सरकार का नियन्त्रण बना रहा लेकिन छोटे कारखानों को उत्पादन और वितरण के सन्दर्भ में स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गयी। रूस इस समय पूँजी की भयावह कमी का सामना कर रहा था। अतः एक सीमा तक विदेशी पूंजी आकर्षित करने के लिए अनेक रियायतें दी गयीं। कारखानों को कच्चा माल, मशीनें आदि उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी पहले सरकार खुद उठाती थी। अब यह प्रथा बन्द कर दी गयी। अब सभी कारखानों को अपने जरूरत की हर वस्तु खुद खरीदनी पड़ती थी।

इन परिवर्तनों के कारण मुद्रा का प्रयोग फिर से आरम्भ हो गया। साम्यवादी व्यवस्था में मुद्रा शब्द की जगह 'सोवजनाक' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा जिसका अभिप्राय 'सोवियत टोकन' से था। लेकिन बदली परिस्थितियों में जुलाई 1922 में नयी मुद्रा 'चरवोनेट्स' का प्रचलन शुरू हुआ। इस समय कागज का 'रूबल' भी चरवोनेट्स के साथ प्रचलन में था और यही दोनों कानूनी निविदा के रूप में लगभग दो वर्षों तक चलती रहीं। धीरे–धीरे रूबल की कीमत बहुत गिर गयी जबकि चरवोनेट्स की मांग बनी रही। चरवोनेट्स फरवरी 1924 तक एक सबल मुद्रा बन गयी और पुराने सोवजनाक से इसका अनुपात 10रू1 का हो गया।

1.8 1918 ई. का सोवियत संविधान– सर्वहारा वर्ग का अधिनायक तन्त्र

रूस में बोल्शेविक सरकार की स्थापना तो हो गयी थी लेकिन अभी नया संविधान बनना बाकी था। केरेन्सकी की सरकार ने अपने समय में एक संविधान सभा के निर्वाचन हेतु नवम्बर 1917 का समय निश्चित किया था। लेनिन ने संविधान सभा के सदस्यों के इस निर्वाचन में कोई बाधा नहीं डाली और नियत समय पर प्रत्यक्ष एवं गुप्त मतदान प्रणाली के माध्यम से सभी वयस्कों ने मतदान किया। इसमें सामाजिक क्रांतिकारियों को बोल्शेविकों से लगभग दुगुने स्थान मिले। नवनिर्वाचित संविधान सभा की पहली बैठक जनवरी 1918 में आहूत की गयी। यह बैठक जब आरम्भ हुई तब इसे बोल्शेविक सैनिकों ने जबरन भंग कर दिया। इसके पश्चात बोल्शेविक दल की केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति (Central EÛcutive Committee) ने एक कमीशन नियुक्त किया जिसे देश के लिए एक नया संविधान बनाने की जिम्मेदारी सौंपी गयी। लेनिन और स्टालिन के नेतृत्व में इस समिति ने देश के लिए एक नया संविधान तैयार किया जिसे 10 जुलाई 1918 को सोवियतों की राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपनी मान्यता प्रदान कर दिया। संविधान के अनुसार 'रूसी सोशलिस्ट फेडरेटेड सोवियत रिपब्लिक' की घोषणा की गयी।

संविधान के अनुसार रूस को श्रमिकों, सिपाहियों एवं किसानों की सोवियतों का गणतन्त्र कहा गया। नए सोवियत संविधान के मूल में यह निश्चित किया गया कि समस्त सत्ता पर गाँवों और नगरों की सोवियतों में शामिल श्रमिकों का अधिकार है। अट्ठारह वर्ष या इससे अधिक उम्र के प्रत्येक स्त्री–पुरुष, जो श्रम से आजीविका प्राप्त करता हो, को मतदान का अधिकार प्रदान किया गया। मुनाफे के लिए मजदूरी कराने वाले, निजी व्यापार करने वाले, बिना किसी श्रम के आय

अर्जित करने वाले, पादरी वर्ग, जार के परिवार के लोग और पुरानी सरकार के लोगों को मताधिकार से वंचित कर दिया गया। इनके अतिरिक्त पूंजीपतियों और समाज के अन्य शत्रुओं को भी राजनैतिक सत्ता से वंचित कर दिया गया। इस प्रकार ग्रामीण अंचल की लगभग आठ प्रतिशत वयस्क जनता और रुसी नगरों में इससे कुछ अधिक प्रतिशत की जनता को अनागरिक घोषित करते हुए मताधिकार से वंचित कर दिया गया। राजनीतिक सत्ता को केवल सर्वहारा वर्ग के हाथों में सीमित कर दिया गया। विशेष तौर पर कारखाना मजदूरों के हाथों में, जिन पर बोल्शेविकों का अधिक प्रभाव था। प्रत्येक वयस्क स्त्री–पुरुष पहले स्थानीय सोवियतों का चुनाव करता था। ये स्थानीय सोवियतें प्रांतीय सोवियतों का और प्रांतीय सोवियतें राष्ट्रीय स्तर की 'अखिल रशियन केन्द्रीय सोवियत' का चुनाव करती थीं। इसके पास केन्द्रीय शासन की समस्त शक्ति रहती थी। केन्द्रीय सोवियत 'केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति' का चुनाव करती थी जो एक तरह से रूस के केन्द्रीय मंत्रिमंडल की तरह कार्य करता था। नए संविधान के अनुसार हर गाँव में किसानों की जबकि हर नगर में औद्योगिक मजदूरों की सोवियतें स्थापित की गयीं। औद्योगिक मजदूर व्यवसाय के आधार पर अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करते थे। खान खोदने वाले, लोहे का काम करने वाले, सैनिक आदि सभी अलग–अलग अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करते थे। इन स्थानीय सोवियतों के ऊपर 'जिला सोवियत' फिर 'काउन्टी सोवियत' फिर 'प्रादेशिक सोवियत' गठित की जाती थी जो अंततः केन्द्रीय सोवियत 'अखिल रशियन केन्द्रीय सोवियत' का चुनाव करती थी। हर उच्चस्तरीय सोवियतों में क्रमशः नीचे की सोवियतों के प्रतिनिधि शामिल रहते थे। इस प्रकार सोवियत शासन का ढांचा नीचे से उपर की ओर एक विशाल पिरामिड के समान था जिसका आधार गाँवों और नगरों में फैलीं हजारों सोवियतें थीं। केन्द्रीय सरकार अपनी शक्ति इन स्थानीय सोवियतों से ही प्राप्त करती थी। इस प्रकार यह एक विशिष्ट एवं अनोखी व्यवस्था थी जो दुनिया में अपनी तरह की एकमात्र व्यवस्था थी।

केन्द्रीय सोवियत में एक हजार से ऊपर सदस्य थे। ये सदस्य एक 'केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति' का चुनाव करते थे जो गणतन्त्र की 'सर्वोच्च विधायक, प्रशासक तथा नियंत्रक संस्था' थी। यह समिति एक मंत्रिमंडल (Counil Of Commissars) की नियुक्ति करती थी। मंत्रिमंडल के हर निर्णय पर केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति की सहमति जरूरी होती थी। सहमति न मिलने की स्थिति में मंत्रिमंडल के निर्णय को निरस्त कर दिया जाता था। संविधान में अट्ठारह मंत्रालयों के गठन का विधान किया गया। ये मंत्रालय थे – (1). विदेश मामले, (2). सेना, (3). नौसेना, (4). आन्तरिक, (5). न्याय, (6). श्रम, (7). समाज कल्याण, (8). शिक्षा, (9). पोस्ट एवं टेलीग्राफ, (10). राष्ट्रीय मामले, (11). वित्त, (12). संचार, (13). कृषि, (14). वाणिज्य एवं उद्योग, (15). राष्ट्रीय आपूर्ति, (16). राज्य नियन्त्रण, (17). राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सुप्रीम सोवियत, एवं (18). जन स्वास्थ्य। केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के अतिरिक्त चालीस सदस्यों की एक सभा 'प्रेजिडियम' (च्तमेपकपनत) या 'अध्यक्ष संस्था' का भी विधान किया गया जो केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के अवकाश के दिनों में मंत्रिमंडल पर नियन्त्रण रखने का काम करती थी।

संविधान के द्वारा रूस के इस समय के सातों गणतंत्रों को एक संघ 'समाजवादी सोवियतों के गणतन्त्र' में शामिल कर दिया गया। संघ में शामिल सात गणतन्त्र ये थे– रूस, श्वेत रूस, यूक्रेन, ट्रान्स काकेशिया, उजबेगिस्तान, तुर्कमेनिस्तान और ताजिकिस्तान। इन गणतंत्रों में से कुछ बहुत छोटे थे जिनकी आबादी लगभग दस लाख थी जबकि रूस एक विशाल गणतन्त्र था जिसकी

आबादी दस करोड़ से भी अधिक थी। सभी गणतन्त्रों में रूस जैसी ही आतंरिक शासन व्यवस्था थी।

नए संविधान की कुछ और विशिष्टताएँ थीं। जैसे स्त्रियों को पुरुषों की तरह ही राजनीतिक और आर्थिक अधिकार प्रदान कर उनकी स्थिति को मजबूत करने का प्रयास किया गया। अभी तक के रूसी शासन में जारशाही पर चर्च का बहुत ज्यादा प्रभाव था। लेनिन धार्मिक जकडबन्दी को समाप्त करने के लिए प्रतिबद्ध था। सत्ता में आते ही उसने चर्च की संपत्ति को जब्त कर लिया। नए संविधान में लोगों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गयी। अब रूस के लोग धर्म के पक्ष या विपक्ष में प्रचार कर सकते थे। यही नहीं चर्च और शिक्षा को भी एक दूसरे से अलग कर दिया गया। सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षा को निःशुल्क घोषित कर दिया। अब सरकारी देख रेख में शिक्षा की व्यवस्था की गयी। नए सोवियत संविधान में हर व्यक्ति के कुछ मौलिक अधिकारों की घोषणा की गयी। इतिहास में पहले–पहल सोवियत ने यह घोषणा की कि प्रत्येक मनुष्य को काम करने का अधिकार है। संविधान ने ऐसी व्यवस्था करने का वचन दिया गया जिसमें यह अधिकार और कारगर हो सके। इस रुसी संविधान में ही पहली बार यह खुले तौर पर कहा गया कि 'जो श्रम नहीं करेगा उसे भोजन पाने का कोई अधिकार नहीं है।' लोगों को विचार और प्रेस इत्यादि की स्वाधीनता दी गयी, किन्तु शर्त यह थी कि इसके कारण सोवियत राज्य की समाजवादी व्यवस्था पर कोई खतरा न आये। मास्को रूस की नयी राजधानी बनी। कम्युनिस्ट पार्टी के हशिया–हथौड़े वाले लाल ध्वज को रूस का राष्ट्रीय ध्वज घोषित कर दिया गया।

संविधान के अनुसार देश में दूसरी पार्टी बन सकती थी। लेकिन रूस के शासन की वास्तविक शक्ति अखिल संघीय साम्यवादी दल में ही निहित थी। इसका महत्व लेनिन की इस घोषणा से प्रमाणित होता है दृ 'हमारे दल की केन्द्रीय समिति के निर्देश के अनुसार हमारे गणतन्त्र की एक भी राज्य संस्था नीति और संगठन से सम्बन्धित एक भी महत्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय नहीं कर सकती है।' नयी रुसी शासन व्यवस्था में केवल साम्यवादियों को ही उच्च एवं प्रभावशाली पदों पर नियुक्त किया गया। सभी मतदाताओं को यह घोषणा करनी पड़ती थी कि वे या तो साम्यवादी हैं या दलहीन व्यक्ति हैं। इस प्रकार वास्तविक स्थिति यह थी कि रूस में केवल एक ही दल था और वह था साम्यवादी दल। जिसका देश की सम्पूर्ण शक्ति पर एकाधिकार था। वास्तविक धरातल पर देखा जाय तो मंत्रिमंडल नियुक्ति और कानून बनाने का काम सेन्ट्रल एक्सक्यूटिव कमेटी के हाथों में था। इस कमेटी में लेनिन को बहुमत प्राप्त था। इस तरह सर्वहारा वर्ग की सोवियतों के आधार पर सोवियतों का निर्माण कर के उसे जिस 'सर्वहारा के अधिनायकतन्त्र' का रूप दिया गया था वह दरअसल 'लेनिन का अधिनायकतन्त्र' बन गया था। अपनी राह में अवरोध पैदा करने वाले लोगों को सख्ती से हटाने के उद्देश्य से लेनिन ने चेका (ज्बीमा) नामक विशेष न्यायालय का गठन किया जिसने उसके निर्देशन में लगभग दस हजार विद्रोहियों को दण्ड दिया। चेका की इस कारवाई के पश्चात् रूस में शांति स्थापित हो गयी और अब लेनिन अपनी और योजनाओं को कार्यरूप में परिणत करने के लिए स्वतन्त्र हो गया। अपनी योजनाओं पर अडिग रहते हुए लेनिन लगातार काम करता रहा। इसी क्रम में लेनिन ने अपनी सफल विदेश नीति का भी संचालन किया जिससे बाध्य हो कर विदेशी सरकारों को बोल्शेविक सरकार को मान्यता प्रदान करनी पड़ी।

कामिंटर्न की स्थापना

केवल रूस में साम्यवादी सरकार की स्थापना से लेनिन संतुष्ट नहीं था। अब वह इसे वैश्विक रूप देना चाहता था। इसी क्रम में दुनिया की गुलाम जातियों एवं देशों को उनके स्वतन्त्रता संग्राम में सहयोग करने के उद्देश्य से 'कामिंटर्न' (COMITERN Or Third International) की स्थापना की गयी। इसका उद्देश्य साम्राज्यवादी देशों के उपनिवेशवादी मंसूबों को ध्वस्त करना, औपनिवेशिक देशों पर से साम्राज्यवादी देशों के आधिपत्य को खत्म करना एवं पूँजीवादी देशों की सरकारों का तख्ता पलट कर वहां समाजवादी सरकार का गठन करना था। कामिंटर्न की प्रेरणा से पूरे विश्व में अनेक श्रमिक आन्दोलनों का जन्म हुआ जिसने साम्राज्यवादी देशों के खिलाफ आक्रामक रुख अपनाया। 1919 के कामिंटर्न–घोषणा पत्र में ऐलान किया गया कि 'एशिया और अफ्रीका के औपनिवेशिक गुलामों! यूरोप में सर्वहारा अधिनायकशाही की स्थापना का पल तुम्हारी भी आजादी का पल होगा।' कामिंटर्न का मुख्यालय मास्को में बनाया गया। दुनिया के देशों के साम्यवादी दल इससे न केवल जुड़े थे बल्कि इससे बराबर प्रेरणा एवं प्रोत्साहन भी पाते रहे। 1920 ई. में घोषणा की गयी कि सोवियत रूस दुनिया के सभी राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों का सक्रिय–समर्थन करता रहेगा। सारी दुनिया को आजाद कराना ही कामिंटर्न का उद्देश्य है। अपनी इस घोषणा से रूस शोषित–दमित जनता एवं गुलाम देशों का मित्र बन गया। पूरे विश्व में एक नवीन उत्साह की लहर दौड़ पड़ी और अब एक स्वतन्त्र विश्व एवं स्वतन्त्र जीवन की उम्मीद साकार होने की किरण साफ–साफ दिखाई पड़ने लगी।

लेनिन घोर पढ़ाकू होने के साथ–साथ अध्यवसायी भी थे। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे अथक परिश्रम करते रहे जिससे उनके सपनों का रूस विश्व मानचित्र पर बेहतर तरीके से स्थापित हो सके। बोल्शेविक सरकार की स्थापना के पश्चात लेनिन को आन्तरिक एवं वाह्य दोनों मोर्चों पर अनेकानेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। लेनिन ने बड़े जीवट से इस संकट का सफलतापूर्वक सामना किया और एक नवीन एवं आधुनिक रूस की स्थापना की। लम्बे समय तक अथक परिश्रम के कारण लेनिन का स्वास्थ्य धीरे–धीरे गिरने लगा। मई 1922 में लेनिन को आंशिक पक्षाघात हुआ। इससे अभी वे ऊबर ही रहे थे कि मार्च 1924 में लेनिन को दुबारा पक्षाघात हुआ जो मारक साबित हुआ। अंततः 21 जनवरी को असाधारण व्यक्तित्व के स्वामी लेनिन चल बसे। पूरे रूस में शोक व्याप्त हो गया। देश ने लेनिन को समुचित आदर एवं सम्मान देते हुए मास्को में क्रेमलिन प्रासाद के समीप ही एक भव्य स्मारक तैयार किया गया जिसमें लेनिन के शव को मसाले में सुरक्षित कर के काँच के एक संदूक में रख दिया गया जिससे जनता इस महापुरुष के भव्य व्यक्तित्व से रू–ब–रू हो सके। लेनिन के सम्मान में पेत्रोग्राद शहर का नाम बदल कर 'लेनिनग्राड' कर दिया गया।

इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से लेनिन न केवल रूस अपितु पूरे विश्व की दलित–दमित जनता के आदर के पात्र बन गए। वे केवल एक दूरदर्शी एवं सफल नेता ही नहीं अपितु दार्शनिक, चिन्तक, महान क्रांतिकारी एवं सुधारक थे। लेनिन ने जो सपने देखे उसे भरसक क्रियान्वित भी किया। रूस में साम्यवादी सरकार की स्थापना से पूरे विश्व को एक नया मोड़ मिला एवं वह व्यवस्था सचमुच में स्थापित हुई जो अभी तक केवल सोची जाती थी। अब यह लगने लगा कि किसान और मजदूर सफलतापूर्वक अपनी सरकार बना और चला सकते हैं।

1.9 सारांश

इस इकाई में आपने लेनिन जैसे महान व्यक्तित्व के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त की। आपने यह भी जाना कि किस प्रकार साहसपूर्वक लेनिन ने बोल्शेविक क्रान्ति का सफल नेतृत्व किया। अपनी दूरदर्शी नीतियों से लेनिन ने रूस में नवजात साम्यवादी सरकार को न केवल एक स्थायित्व प्रदान किया बल्कि उसे एक वैश्विक आयाम भी प्रदान करते हुए कामिंटर्न का आयोजन किया जिससे दुनिया भर के साम्यवादियों को मार्गदर्शन मिला। दुनिया की गुलाम जातियों में उम्मीद का संचार हुआ। लेनिन के प्रयासों से रूस को उस तानाशाह जारशाही से मुक्ति मिली जिसमें आम आदमी का जीवन अत्यंत दुष्कर था। साम्यवादी रूस ने अपना नया संविधान बनाया जिसमें दुनिया में पहली बार आम आदमी के मौलिक अधिकारों की घोषणा की गयी। लोगों को धार्मिक आजादी प्रदान की गयी। शिक्षा को धर्म से मुक्त कर दिया गया और औरतों को पुरुषों के सामान ही राजनीतिक अधिकार प्रदान किये गए। रुसी संविधान में ही पहली बार यह खुले तौर पर कहा गया कि 'जो श्रम नहीं करेगा उसे भोजन पाने का कोई अधिकार नहीं है।' इस प्रकार साम्यवादी शासन की स्थापना से सही मायनों में आम आदमी के उस शासन की शुरुआत हुई जिसे 'सर्वाहारा के अधिनायकवाद' का नाम दिया गया। प्रख्यात रूसी कवि मायकोव्स्की ने अपनी 'लेनिन' नामक लम्बी कविता में सटीक ही लिखा है–

- मैं/ खदान साफ करने को/जाता हूँ लेनिन के पास/क्रांति के साथ जलयात्रा को
- मैं डरता हूँ/प्रशस्तियों से/कतारों पर कतार/एक लड़के की तरह
- डरता हूँ झूठ और संभ्रमों से/वे सजायेंगे आलोक वलय किसी के सिर के चारों ओर
- जिसके विचार से ही/ मुझे घृणा है
- कविता से अंकुरित/ ऐसा प्रकाश वलय / ढकेगा लेनिन का महान
- विशाल मानवीय माथा
- मैं चिंतित हूँ –अनुष्ठान और / जुलूस श्रद्धांजलि और प्रचार की/ मधुर सुगंध कहीं
- लेनिन की मूल सादगी को धुँधला न दे जैसे मृत्यु के दण्ड से काँप उठता हूँ
- ऐसा न हो कि/ लेनिन को भड़कीले सौंदर्य से/ कहीं झुठला दिया जाये
- लिखो!/ स्वीकारता है मेरा हृदय अधिकृत हुआ दायित्व की आज्ञा से
- पूरा मास्को अवरुद्ध है वर्फ से फिर भी संवेग से/ स्पंदित है पृथ्वी

1.10 बोध–प्रश्न

(1) बोल्शेविक क्रान्ति को निम्न में से और किस एक नाम से जाना जाता है?

(अ) फरवरी क्रान्ति (ब) जुलाई क्रान्ति

(स) अक्टूबर क्रान्ति (द) नवम्बर क्रान्ति

(2) रूस का नया संविधान कब लागू किया गया?

(अ) 10 जुलाई 1918 को (ब) 25 अक्टूबर 1920 को

(स) 18 फरवरी 1921 को (द) 15 नवम्बर 1924 को

(3) बोल्शेविक क्रान्ति में लेनिन के योगदान को रेखांकित कीजिये?

(4) नेप या नयी आर्थिक नीति के बारे में एक टिप्पणी लिखिए?

1.11 कठिन शब्दावली

बुर्जुआ – मध्य वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द, जो मूलतः शोषक की भूमिका में होता था

सर्वहारा – समाज का निम्नतम वर्ग जो दलित, दमित और शोषित वर्ग होता था

बोल्शेविक – 'बोल्शेविक' शब्द की व्युत्पत्ति रूसी शब्द 'बोल्शिन्स्त्वो' से हुई जिसका अर्थ होता है बहुसंख्यक। ये लोग मार्क्सवादी विचारों के प्रति प्रतिबद्ध माने जाते थे। इसी दल ने 1917 की रुसी क्रान्ति का नेतृत्व किया और इसी के नाम पर इस क्रान्ति को बोल्शेविक क्रान्ति भी कहा जाता है।

मेन्शेविक – 'मेन्शेविक' की व्युत्पत्ति 'मेनशिंटवो' शब्द से हुई है जिसका अर्थ अल्पसंख्यक होता है। इन्हें अवसरवादी कहा गया।

कामिंटर्न – कम्युनिस्टों का तीसरा अंतर्राष्ट्रीय सम्मलेन।

साम्राज्यवादी देश – ऐसे देश जो किसी देश पर अधिकार कर उसके राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं एवं गुलाम देश का भरपूर आर्थिक शोषण करते हैं। प्रायः यूरोपीय देश ही साम्राज्यवादी भूमिका में दिखाई पड़ते हैं।

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (स) 2. (अ)

1.13 उपयोगी पुस्तकें

- ई. एडन, रशियारू द जारिस्ट एंड सोवियत लेगेसी, लन्दन, 1995
- गुप्ता, पार्थसारथी, (संपा.) यूरोप का इतिहास, दिल्ली, 1989

- हेजेन, सी. डी., आधुनिक यूरोप का इतिहास (1789–1965) अनु. सत्यनारायण दुबे, दिल्ली, 1979–80
- डैनियल्स, आर. वी., रेड अक्टूबररू द बोल्शेविक रिवोल्यूशन ऑफ 1917, न्यूयार्क, 1967
- कीप, जे. एल. एच., द राशियन रिवोल्यूशनरू ए स्टडी इन मॉस मोबिलाईजेशन, लन्दन, 1976
- कीप, जॉन लियोनेल कोचन, द मेकिंग ऑफ मॉडर्न रशिया, लन्दन, 1997
- रियाजानोव्सकी, एन. वी., अ हिस्ट्री ऑफ रशिया, ऑक्सफोर्ड, 1993
- सम्नर, बी. एच., रूसी इतिहास का सर्वेक्षण, अनु.– देव सहाय त्रिवेद, पटना, 1972
- विद्यालंकार, सत्यकेतु, यूरोप का आधुनिक इतिहास (1781–1939), नयी दिल्ली, 1982 वर्मा, दीना नाथ, विश्व इतिहास का सर्वेक्षण (1500–1950), पटना, 1991

इकाई–2 महान आर्थिक मन्दी

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 पूँजीवादी व्यवस्था और महान आर्थिक मन्दी

2.3 महान आर्थिक मन्दी के कारण

2.4 आर्थिक मन्दी से उबरने के लिए किये गए उपाय

2.5 लुसाने सम्मलेन (जुलाई 1932)

2.6 लन्दन सम्मलेन (जून 1933)

2.7 सारांश

2.8 बोध प्रश्न

2.9 कठिन शब्दावली

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.11 उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप जान सकेंगे कि

- ❖ महान आर्थिक मन्दी का क्या अभिप्राय है?
- ❖ महान आर्थिक मन्दी के लिए उत्तरदायी कारण कौन से थे?
- ❖ विभिन्न देशों ने आर्थिक मन्दी से उबरने के लिए कौन से प्रयास किये?
- ❖ आर्थिक मन्दी का दुनिया पर क्या प्रभाव पड़ा?

2.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्वयुद्ध और दूसरे विश्वयुद्ध के बीच एक ऐसी घटना घटी जिसने पूरी दुनिया को बुरी तरह दुष्प्रभावित किया। यह घटना थी दृ महान आर्थिक मन्दी की। इस घटना के समाधान के लिए विश्व के महत्वपूर्ण देशों ने कुछ महत्वपूर्ण प्रयास किया लेकिन इन प्रयासों के बीच में इन बड़े देशों का अहम आड़े आ गया और कोई भी प्रयास सफल नहीं हो पाया। अंततः जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति के रूप में दिए जाने वाले बकाये को जब देने से इनकार कर दिया तब समस्या अपने आप सुलझ गयी। इस मन्दी ने दुनिया को उस स्थिति में पहुंचा दिया जिसमें युद्ध के

अलावा और कुछ भी नहीं बचा था। जल्द ही दुनिया ने अपने आप को द्वितीय विश्व युद्ध के दलदल में फंसा पाया।

2.2 पूँजीवादी व्यवस्था और महान आर्थिक मन्दी

कभी–कभी हमें ऐसा लगता है कि जो कुछ हो रहा है वह बेहतर हो रहा है। लेकिन हकीकत कुछ और ही होती है। ठीक उस आईसवर्ग की तरह जो समुद्र में पानी के ऊपर तो बौना दिखाई पड़ता है लेकिन पानी के नीचे ऐसी भीमकाय आकृति वाला होता है जो बड़ी से बड़ी पनडुब्बियों को अपनी टकराहट से तोड़ डालता है। ऐसा ही कुछ घटित हुआ अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर 1929 ई. में। प्रथम विश्वयुद्ध से उत्पन्न कठिनाईयाँ 1929 ई. तक सुलझती नजर आने लगीं और हर तरफ एक आशावादी वातावरण दिखने लगा। ऐसा लगा जैसे जर्मनी अब संभल गया हो। इधर रूस क्रान्तिजनित समस्याओं से ऊबर कर महान नेता स्टालिन के नेतृत्व में पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत कर चुका था। क्षतिपूर्ति की समस्या लगभग खत्म हो चुकी थी। नए राज्यों में स्थिरता आ चुकी थी और मुद्रा अब संतुलित हो चली थी। जाहिर सी बात है इतना बढ़िया वातावरण किसी को भी बेहतर भविष्य के लिए आश्वस्त कर सकता है, लेकिन यह सब कुछ महज एक भ्रम साबित हुआ बिलकुल रेगिस्तान के मृगमारीचिका की ही तरह। अचानक ही हर देश की मुद्रा का मूल्य बड़ी तेजी से गिरने लगा। हालत यह हुई कि अनेक बड़े और नामी–गिरामी बैंक रातों–रात दिवालिया हो गए। बहुत से कारखानों पर अचानक ही ताला लग गया और लाखों मजदूर एक झटके में सड़क पर आ गए। ऐसा नहीं था कि कहीं कोई अभाव था। इसके उलट गोदाम माल से भरे पड़े हुए थे जबकि उनका कोई खरीददार नहीं था। लोगों की जरूरतें भी पहले की ही तरह विद्यमान थीं लेकिन उनकी खरीद पाने की सामर्थ्य खत्म हो गयी थी। कहना न होगा कि जब लोगों के पैसे नहीं थे तो वे अपने राज्यों की सरकारों को कर कैसे देते। कर वसूल न हो पाने से देशों का बजट घाटे में जाने लगा। और हालत यह हुई कि पूरे संसार का व्यापार पहले की अपेक्षा केवल आधा रह गया।

वस्तुतः अपनी श्रेष्ठता का दावा करने वाली पूँजीवादी व्यवस्था की आन्तरिक गड़बड़ियों और अति आत्मविश्वास ने महान आर्थिक संकट की यह दिक्कत खड़ी की। यह पूँजीवादी व्यवस्था लोगों के आपसी लेन–देन और विश्वास पर टिकी हुई थी। जिसमें महाजन, निवेशक, सूदखोर और कर्जदार भविष्य पर पूरी तरह विश्वास करते हुए आपसी लेन–देन किया करते थे। महाजन या निवेशक इस उम्मीद पर अपना धन लगाता था कि वह बाद में अपना पैसा मुनाफे समेत वापस लेगा। कर्जदार इस विश्वास पर कर्ज लेता था कि अपना काम पूरा हो जाने और अपनी स्थिति बेहतर हो जाने पर वह बाद में कर्ज की अदायगी कर देगा। सभी एक दूसरे से परस्पर जुड़े हुए थे साथ ही परस्पर निर्भर भी थे। ये हालात कमोबेश पूरी दुनिया में थे। कहना न होगा कि कोई भी गड़बड़ी पूरी दुनिया को अपने आगोश में ले सकती थी।

2.3 महान आर्थिक मन्दी के कारण

दुनिया को इस महान आर्थिक मन्दी का सामना किस वजह से करना पडा? इसके लिए कौन से कारण उत्तरदायी थे? इस सवाल का सटीक जवाब आज तक नहीं मिल पाया है। विभिन्न विद्वानों ने इस मुद्दे पर अपनी अलग–अलग

राय व्यक्त की है और इसके पीछे अलग–अलग कारणों को जिम्मेदार ठहराया है। समग्रता से अध्ययन करने पर इसके पीछे अनेक कारण दिखाई पड़ते हैं जो समवेत रूप से इसके लिए उत्तरदायी थे। ये कारण इस प्रकार हैं।

प्रथम विश्व युद्ध के समय विभिन्न देशों द्वारा लिए गए ऋण ने इस आर्थिक संकट में प्रमुख भूमिका निभायी। युद्ध के समय अपनी युद्धकालीन जरूरतों के अनुसार देशों ने ऋण लेकर अपना खर्च चलाया। युद्ध के समय मित्र राष्ट्रों ने अमरीका से बड़े पैमाने पर कर्ज लिया। ब्रिटेन और फ्रांस समेत तमाम देश अमरीका के कर्जदार थे। युद्ध के बाद अमरीका महाजन की भूमिका में आ गया। कर्ज का भुगतान होते ही दुनिया के सामने स्वर्ण की समस्या आ गयी क्योंकि अमरीका अपने ऋण का भुगतान कर्जदार देशों से स्वर्ण के रूप में लेने लगा। फ्रांस को भी क्षतिपूर्ति का धन सोने के रूप में ही मिल रहा था। अब अमरीका और फ्रांस में दुनिया भर का सोना इकट्ठा होने लगा। एक अनुमान के मुताबिक इस समय की दुनिया का लगभग साथ प्रतिशत सोना इन दोनों देशों में जमा हो गया। जबकि अन्य देशों में सोने की कमी हो गयी जिससे सोने का मूल्य बहुत बढ़ गया। वस्तुतः सोना ही मुद्रा–पद्धति का आधार होता है और उसी को आधार बना कर कीमतों को मापा जाता है। प्रथम विश्व युद्ध के समय अनेक देशों ने स्वर्णमान का परित्याग कर दिया था लेकिन 1924 से 1929 ई. के बीच अनेक यूरोपीय देशों ने स्वर्णमान को फिर से अपना लिया। लेकिन जब इन देशों के पास सोना ही नहीं था तो वे क्या करते। ब्रिटेन ने आर्थिक संकट से उबरने के लिए 'स्वर्णमान' को स्थगित कर दिया। देखा–देखी कुछ अन्य देशों ने भी ब्रिटेन का अनुकरण किया। ऐसे देशों ने मजबूरी में बिना सोने के भण्डार के ही अंधाधुंध मुद्रा छापना शुरू कर दिया। इससे मुद्रा का मूल्य बहुत गिर गया और यह संकट उत्पन्न हो गया।

कुछ विद्वान् इसी समय चाँदी की अधिक उपलब्धता को इस आर्थिक संकट की वजह से जोड़ते हैं। इस समय के चीन और भारत जैसे बड़े देशों की मुद्रा का आधार चाँदी थी। चाँदी की अधिक उपलब्धता से इन देशों की मुद्रा का मूल्य गिर गया जिससे कि इस मुद्रा की खरीदने की सामर्थ्य कम हो गयी और अंततः यह आर्थिक संकट की वजह में तब्दील हो गयी।

समय–चक्र को भी कुछ लोग इस आर्थिक संकट के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। इस अवधारणा के अनुसार अभिवृद्धि और मन्दी पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं। यानी अभिवृद्धि के बाद मन्दी और मन्दी के बाद अभिवृद्धि का क्रम अनवरत चलता रहता है। इतिहास में पहले भी ऐसा देखा गया है। अर्थशास्त्री लिप्सन के अनुसार साधारणतः उत्पादन की क्रियाओं में एक निश्चित समयावधि के पश्चात इस प्रकार की शिथिलता आया करती है। इस बात को पिछले तीन सौ वर्षों से देखा जा रहा है। इसी तरह की मन्दी 1620–1624 ई. की अवधि में ब्रिटेन में दिखाई पड़ी थी जब इंग्लैंड का व्यापार अत्यंत संकुचित हो गया था और बेरोजगारी बढ़ गयी थी। एक बार फिर प्रथम विश्वयुद्धजनित परिस्थितियों से आर्थिक और राजनीतिक दिक्कतें उठ खड़ी हुईं जिससे मन्दी का यह दौर आरम्भ हो गया। युद्ध के कारण विश्व आर्थिक व्यवस्था पहले ही संकट से जूझ रही थी। युद्ध के बाद युद्धकालीन ऋणों की अदायगी और और क्षतिपूर्ति के दावों से स्थिति और अधिक बिगड़ गयी। पहले पराजित देश परेशानी में पड़े। धीरे–धीरे यह संक्रामक आर्थिक परेशानी विजयी देशों तक भी पहुँची और यह संकट उत्पन्न हो गया।

जब भी युद्ध होता है तब अनेक वस्तुओं जैसे अनाज एवं हथियारों की माँग एकाएक बढ़ जाती है। मांग अधिक होने से इन वस्तुओं की कीमत भी अधिक बढ़

जाती है। जब–जब युद्ध होता है तब–तब ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है। लेकिन जब युद्ध थम जाता है तब इस मांग में अचानक गिरावट आ जाती है। इस समय का वैश्विक परिदृश्य कुछ इसी तरह का था। जे. बी. कांडलीफ महोदय के अनुसार 'युद्ध काल में सैनिक सामग्री की मांग बढ़ जाने से उद्योग का असाधारण विस्तार होता है, सैनिकों की असाधारण भर्ती से मजदूरों की कमी हो जाती है। अतः रोजगार, मजदूरी और लाभ की दर बढ़ जाती है। युद्ध समाप्त होने के पश्चात कुछ समय तक तो यह वृद्धि बनी रहती है किन्तु उसके बाद मन्दी आ जाती है।' प्रथम विश्व युद्ध के बाद भी ऐसा ही हुआ।

बीसवीं सदी वैज्ञानिक खोजों एवं आविष्कारों की सदी मानी जाती है। नए–नए यन्त्रों की खोज ने कृषि और औद्योगिक उत्पादन को कई गुना बढ़ा दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि बाजार अभी भी माल से भरा–पड़ा था लेकिन उसे खरीदने वाला कोई नहीं था। ऐसा नहीं था कि लोगों की जरूरतें ही समाप्त हो गयीं थीं। लोगों की जरूरतें बढी ही थीं लेकिन जब उनकी खरीदने की सामर्थ्य ही नहीं थी तो वे अपनी जरूरत की चीजें खरीदते भी तो कैसे। इधर औद्योगिक वस्तुओं की आपूर्ति मांग से अधिक होने के कारण मालिकों ने अपने कारखानों के उत्पादन को घटाना शुरू कर दिया। इसी क्रम में मालिकों ने अपने कारखानों में जरूरत से अधिक श्रमिकों की छंटनी शुरू कर दी। अधिक तादाद में बेरोजगार हो गए इन श्रमिकों की क्रय शक्ति लगभग समाप्त हो गयी और इस प्रकार दुनिया आर्थिक संकट के दलदल में फंस गयी।

यह आर्थिक संकट इस बात की भी पुष्टि करता है कि जब मालिकों और मजदूरों के मुनाफे में घोर असंतुलन आ जाए तब विकृतियों को फैलने से नहीं रोका जा सकता। एक ओर उद्योगपति इस समय हुए मुनाफे से मालामाल हो रहे थे तो दूसरी तरफ श्रमिक अपने मेहनताने में मामूली बढ़ोत्तरी के बावजूद बदहाल थे। एक अध्ययन के मुताबिक 1923 से 1929 ई. तक की समयावधि में उद्योगपतियों का मुनाफा बहत्तर प्रतिशत तक बढ़ा जबकि मजदूरों की मजदूरी मात्र आठ प्रतिशत या इससे भी कम बढ़ी। एक बात और थी इतना अधिक मुनाफा होने पर भी ये उद्योगपति न तो वस्तुओं का मूल्य घटाने के लिए राजी थे न ही मजदूरों की मजदूरी बढाने के लिए तैयार हुए। वे इस बात को भूल गए कि उनका मुनाफा तभी कायम रह सकता है जब पैसा लगातार गतिशील रहे। उपभोक्ता वस्तुओं की भरमार होने के बावजूद इन्हें खरीदने वाला कोई नहीं था। ऐसे में उनका मुनाफा कितने समय तक टिक पाता।

दुर्भाग्यवश इसी समय दुनिया के अलग–अलग हिस्सों में आर्थिक राष्ट्रवाद का दौर चल पडा। हर देश अपना उत्पादन अधिकाधिक बढ़ा कर विदेशी आयात को प्रतिबंधित करने का प्रयास करने लगा। विभिन्न देशों ने विदेशी माल का आयात रोकने के लिए आर्थिक पक्षपात की नीति अपनाई। वैश्विक निर्यात पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। संकुचित आर्थिक राष्ट्रीयता के इस दौर ने पहले से ही मुसीबत में फंसी हुई दुनिया को और भी मुसीबत में डाल दिया। स्वयं अमरीका और यूरोप एक दूसरे का माल खरीदने के लिए तैयार नहीं थे। अमरीका ने यूरोपीय सामानों के आयात पर अधिकाधिक सीमा–शुल्क लगा दिया जिससे यूरोपीय निर्यात प्रभावित हुआ। अब यूरोप के पास डालर की भारी कमी हो गयी जिससे वे अमरीकी ऋण को चुकता करने में दिक्कत का सामना करने लगे। खुले व्यापार के प्रबल समर्थक ब्रिटेन तक ने स्थिति को संभालने के लिए संरक्षणवादी नीति अपनानी शुरू कर दी। क्रान्ति के बाद का रूस भी अब अपनी जरूरत का उत्पादन खुद करना शुरू कर दिया जिससे पश्चिमी यूरोपीय देशों के हाथों से एक

और बड़ा बाजार निकल गया। दुनिया के एक और बड़े देश भारत में भी यह आर्थिक राष्ट्रवाद इस समय चरम पर था। इस समय भारत के 'स्वदेशी आन्दोलन' और 'विदेशी कपड़ों के बहिष्कार की नीति' ने इंग्लैंड के व्यापार पर प्रतिकूल असर डाला। ऐसे देश जिन्हें अपना युद्ध ऋण चुकता करने और क्षतिपूर्ति के भुगतान के लिए अनुकूल व्यापार संतुलन की जरूरत थी प्रतिकूल व्यापार से परेशानियों में पड़ गए। इस संकुचित आर्थिक राष्ट्रीयता की भावना से दुनिया आर्थिक संकट के भंवर में फंस गयी।

इस समय का यूरोप तीन बड़ी कठिनाईयों का सामना कर रहा था। पहली कठिनाई तो यह थी कि अब यान्त्रिक उत्पादन में यूरोपीय एकाधिकार समाप्त हो गया। युद्धकालीन जरूरतों के अनुसार जापान और भारत जैसे एशियाई देशों ने अपने जरूरत की बहुत सी चीजें खुद बनाना शुरू कर दिया जिससे इन देशों की यूरोप पर निर्भरता समाप्त हो गयी। दूसरी कठिनाई यह थी कि इसी समय कनाडा और रूस जैसे देश इतना सस्ता अनाज उत्पादित करने लगे कि यूरोप के कृषि प्रधान देश उनका सामना नहीं कर पा रहे थे। यूरोप के कृषि प्रधान देशों पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इस समय के यूरोप की तीसरी कठिनाई यह थी कि उनकी पूरी अर्थव्यवस्था अमरीकी ऋणों पर ही अवलंबित हो गयी थी। अक्टूबर 1929 ई. में जब अमरीकी बैंक दिवालिया हो गए तब तब इन देशों को ऋण मिलना बंद हो गया और वे लडखडाने लगे।

विश्व युद्ध के पश्चात् अमरीका की आर्थिक समृद्धि काफी बढ़ी। इससे यहाँ के पूंजीपति अपनी अतिरिक्त पूंजी को सट्टेबाजी में लगाने के लिए प्रेरित हुए। भारी लाभ के कारण शेयरों की खरीद के लिए इन पूंजीपतियों के बीच एक होड़ शुरू हो गयी। इसका परिणाम यह निकला कि अधिक मांग होने से शेयरों की कीमत उनकी वास्तविक कीमत से बीस गुना ज्यादा तक बढ़ गयी। 1929 ई. तक सट्टेबाजी का यह दौर ऐसी स्थिति में पहुँच गया जो अविश्वसनीय था। 1929 ई. में जब इसे प्रतिबंधित करने का प्रयास किया गया तब तक हालात बहुत बिगड़ चुके थे। अंततः 21 अक्टूबर 1929 को न्यूयार्क के मशहूर शेयर बाजार 'वालस्ट्रीट' में जब शेयरों की कीमतों में गिरावट आरम्भ हुई तो शेयर बाजार औंधे मुँह गिर पड़ा। महीने का अन्त होते–होते शेयरों पर होने वाली हानि सोलह अरब डालर का दायरा पार कर चुकी थी। यह स्थिति अमरीका के लिए भयावह साबित हुई। अमरीका के हजारों कारखाने बन्द हो गए और हजारों अमरीकी बैंक दिवालिया हो गए। लोगों में भूखमरी और बेकारी फैल गयी। जब अमरीका खुद आर्थिक दिक्कत में था तब वह यूरोप को ऋण देना कैसे जारी रख सकता था। लाचार अमरीका ने यूरोप को कर्ज देना बिलकुल बन्द कर दिया। अमरीकी ऋण मिलना बन्द होने से वे देश जिनका पूरा आर्थिक कारोबार अमरीकी ऋण पर ही टिका हुआ था, धराशायी हो गये। एक और बात हुई। अमरीकी सामान से दुनिया के बाजार भरे हुए थे लेकिन उन्हें खरीदने वाला कोई नहीं था। इसका असर भी अमरीका पर पड़ा। अब अमरीका ने 1930 ई. में भारी मात्रा में आयात कर लगा कर विदेशी माल के आयात पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया जिससे विदेशी व्यापार खासकर यूरोपीय व्यापार अत्यन्त संकुचित हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि दुनिया भर में वस्तुओ के मूल्य बेतहाशा गिर गये। इस समय का मूल्य 1928 ई. की तुलना में महज आधा रह गया। इसका अर्थ यह हुआ कि संसार में हर ऋण दुगुना हो गया। इससे यूरोप के सभी राज्यों की पहले से ही बदहाल अर्थव्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गयी। उनके यहाँ पूँजी की भारी कमी हो गयी और उनके कारखाने एक–एक कर बंद होने लगे। लाखों मजदूर बेकार हो गये। अमरीका जब स्वयं इस आर्थिक दुष्चक्र में फंस गया तब दिक्कत काफी बढ़ गयी। अमरीका के

आर्थिक संकट में फंसते ही दुनिया के अन्य देश भी बड़ी तेजी से संकट के इस जाल में फंसते चले गए।

जर्मनी पर इसका सबसे बुरा असर पड़ा। जर्मनी अमरीकी ऋण के माध्यम से सँभलने की कोशिश में जुटा हुआ था। डावेस योजना कार्यान्वित होने के बाद से जर्मनी ने विदेशों से नब्बे करोड़ पौण्ड का ऋण लिया था जिसमें से अधिकांश ऋण अमरीका से लिया गया था। इस ऋण की मदद से 1924 से 1929 ई. के बीच की पाँच वर्ष की अवधि में जर्मनी ने पचास करोड़ पौण्ड का भुगतान क्षतिपूर्ति में किया जबकि चालीस करोड़ पौण्ड की उसे बचत हुई थी। इससे अब जर्मनी में आर्थिक समृद्धि आने लगी थी। इस आर्थिक समृद्धि के जारी रहने के लिए जरूरी था कि जर्मनी को यथेष्ठ परिमाण में लगातार ऋण मिलता रहे लेकिन जब अमरीका खुद इस मन्दी का शिकार बन गया तब वह भला दूसरों को कैसे ऋण दे सकता था। अब देश से बाहर धन लगाने में अमरीका की कोई रूचि न रही जिसका दुष्परिणाम उन देशों को भुगतना पड़ा जो अमरीकी ऋण पर ही अपना काम चला रहे थे।

2.4 आर्थिक मन्दी से उबरने के लिए किये गए उपाय

24 अक्टूबर 1929 को महान आर्थिक मन्दी की विधिवत शुरुआत हो गयी। इस तारीख को गुरूवार का दिन होने के कारण इसे विश्व इतिहास में 'काले गुरूवार' (ठसंबा जैनतेकंल) की संज्ञा दी गयी। यूरोपीय राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री इस महान आर्थिक संकट से बाहर निकलने के उपायों के बारे में आपसी विचार–विमर्श करने लगे। फ्रांस के विदेश मन्त्री ब्रियाँ ने आर्थिक मन्दी से उबरने के लिये यह प्रस्ताव रखा कि यूरोप के सभी देशों को मिल कर अपना एक संघ बना लेना चाहिए जो न केवल उनके राजनीतिक जीवन को नियन्त्रित रखे बल्कि उनके बीच आर्थिक सहयोग भी स्थापित करे। राष्ट्र संघ की असेम्बली में इस संभावना पर विचार भी किया गया लेकिन इसका कोई परिणाम नहीं निकला। इसकी वजह यह थी कि अनेक यूरोपीय देशों को इसमें वह फ्रांसीसी कुचक्र निहित दिखाई पडा जिसके द्वारा फ्रांस यूरोप पर एक बार फिर अतीत जैसी अपनी प्रधानता स्थापित करना चाहता था। आस्ट्रिया के विदेश मंत्री जोहान शोबर ने आर्थिक मन्दी का सामना करने के लिए क्षेत्रीय समझौते करने का सुझाव रखा। राष्ट्र संघ असेम्बली ने शोबर के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इसी क्रम में यूरोपीय राजधानियों में आर्थिक सम्मेलनों का आयोजन किया गया लेकिन आपसी ईर्ष्या एवं आर्थिक प्रतिस्पर्धा ने इसे असफल बनाने में कोई कोर–कसार नहीं रख छोड़ी। आस्ट्रिया और जर्मनी के बीच एक आर्थिक संघ बनाने की योजना का फ्रांस ने इस बिना पर कड़ा प्रतिवाद किया कि जर्मनी इसके द्वारा आस्ट्रिया को अपने में शामिल करना चाहता है। फलतः यह योजना भी कार्यान्वित नहीं हो सकी और सर्वत्र निराशा का वातावरण व्याप्त हो गया।

आर्थिक संकट अपना दायरा बढाता जा रहा था। मई 1931 ई. में आस्ट्रिया भी मन्दी के चंगुल में फंस गया जब राजधानी वियना के सबसे बड़े बैंक 'क्रेडिट अनस्तात्ल्ट' का दिवाला निकल गया। अब जर्मनी की बारी थी। पूंजीपतियों ने जर्मन बैंकों से तत्काल अपने पैसे निकालने शुरू कर दिए। स्थिति हाथ से निकलती देख कर अमरीकी राष्ट्रपति हूबर ने आगे बढ़ते हुए यूरोपीय आर्थिक संकट को दूर करने के उद्देश्य से कुछ प्रस्ताव रखे। यह प्रस्ताव इस प्रकार था–

(1) जुलाई 1931 से जून 1932 तक जर्मनी की अंतर्राष्ट्रीय देनदारी की सभी किस्तों को स्थगित रखा जाय।

(2) जर्मनी से एक वर्ष तक हर्जाने की वार्षिक किस्त न ली जाय। वार्षिक किस्त की वह धनराशि जो यंग योजना के अनुसार जर्मनी को अनिवार्य रूप से देना है, उसे भी 'बैंक ऑफ इंटरनेशनल सेटलमेंट' द्वारा जर्मनी में ही लगाया जाय।

यह योजना जर्मनी के आर्थिक संकट को दूर करने में सहायक हो सकता था। सभी देशों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार भी कर लिया लेकिन एक बार फिर फ्रांस ने अड़ंगा डालते हुए इस प्रस्ताव का कड़ा विरोध किया। असहाय जर्मनी की हालत दयनीय बनी रही। 13 जुलाई 1931 को जर्मनी के प्रमुख बैंक 'डर्मस्ताल्दार एंड नेशनल बैक' का दिवाला निकल गया। अगले ही दिन 14 जुलाई 1931 को एक सरकारी आदेश निकाल कर देश के अन्य सभी बैंकों को बन्द कर दिया गया।

अभी जर्मनी की मदद के लिए पेरिस और लन्दन में योजना बन ही रही थी कि इंग्लैंड भी आर्थिक मन्दी की चपेट में आ गया। अबकी बार शिकार बना दुनिया का प्रख्यात 'बैंक ऑफ इंग्लैंड'। सभी देशों ने इस बैंक में अपना जमा धन निकालना शुरू कर दिया। हालत यहाँ तक बिगड़ी कि इस समय की लेबर पार्टी की सरकार को इस मुद्दे पर इस्तीफा देना पड़ा। अब इंग्लैंड में एक राष्ट्रीय सरकार का गठन किया गया। नयी सरकार ने 2 सितम्बर 1931 को ब्रिटिश मुद्रा पौण्ड को स्वर्णमान से हटा कर स्थिति सुधारने का प्रयास किया। सभी यूरोपीय देशों में अव्यवस्था फैल गयी और एक के बाद एक सभी देशों में स्वर्णमान पद्धति छोड़ने की जैसे होड़ लग गयी। 1931 ई. के अन्त तक आर्थिक संकट अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। मूल्य निम्नतम स्तर पर पहुँच गया और पूरे संसार की आर्थिक व्यवस्था इस कदर अस्त–व्यस्त हो गयी कि किसी को कोई भी उपाय नहीं सूझ रहा था। सन 1932 के यूरोप में केवल फ्रांस, इटली, स्विटजरलैंड, रूमानिया और हालैंड ही ऐसे देश थे जो अपनी पुरानी मुद्रा पद्धति पर चल रहे थे। इतिहासकार डेविड थामसन के अनुसार 'स्वर्णाधारित मुद्रा का अब उस यूरोप में कोई औचित्य नहीं रह गया था, जहां का लगभग समूचा स्वर्ण अब अमरीका में पहुँच गया था।' स्वर्णमान से मुद्रा के हटते ही आर्थिक संकट से जूझने के प्रयास तीव्र हो गए। समस्या से निपटने के लिए विभिन्न देशों की सरकारों ने निम्नलिखित उपाय अपनाए।

(1) मुद्रा नियंत्रण को कड़ाई से आरम्भ किया गया। विनिमय दरों को पूरी तरह नियंत्रित किया गया। तटकरों को सुनिश्चित किया गया। आयातों पर रोक लगाई गयी। आर्थिक मन्दी पर काबू पाने के लिए विभिन्न देशों ने अपने यहाँ कठोर कानून सख्ती से लागू किये।

(2) मन्दी से निजात पाने के क्रम में क्षेत्रीय स्तर पर भी कुछ प्रयास किये गए। उदाहरण के तौर पर नार्वे, स्वीडन जैसे देशों ने 'ओस्लो गुट' बना लिया। यूरोप के कृषि प्रधान देशों जैसे हंगरी, रूमानिया और चेकोस्लोवाकिया तथा ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के सदस्य देशों ने मिल कर 1932 ई. में 'ओटावा समझौता' कर लिया।

2.5 लुसाने सम्मलेन (जुलाई 1932)

मन्दी से निबटने के प्रयासों में सबसे महत्वपूर्ण प्रयास था प्रमुख देशों द्वारा मिल–जुल कर लुसाने सम्मलेन के लिए पहलकदमी किया जाना। लुसाने सम्मलेन

में शामिल होने वाले देशों में इंग्लैंड, फ्रांस, बेल्जियम, जापान, इटली आदि प्रमुख थे। इन देशों के बीच पूरे तीन सप्ताह तक गहन विचार–विमर्श हुआ। अंततः यह फैसला लिया गया कि जर्मनी पर क्षतिपूर्ति का जो भी ऋण है उसे माफ कर दिया जाय। सम्मलेन में इस बात पर भी सहमति बनी कि यंग योजना को समाप्त कर दिया जाय और इसके बदले जर्मनी यूरोप के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए केवल 75 करोड़ डालर की राशि प्रदान करे। इस निर्णय से जर्मनी को उसकी देनदारियों में नब्बे प्रतिशत की छूट मिल गयी। इस छूट के पीछे इन देशों की कोई उदारता नहीं थी बल्कि आर्थिक संकट को दूर करने के लिए ऐसा करना अब आवश्यक हो गया था। ये मित्र–राष्ट्र चाहते थे कि संयुक्त राज्य अमरीका भी इसी अनुपात में अपने ऋणों की मात्रा में कमी कर दे। लेकिन अमरीका इसके लिए तैयार नहीं हुआ फलतः लुसाने सम्मलेन असफल हो गया। अब जर्मनी को बाहर कहीं से ऋण मिल पाना असंभव था। उम्मीद की जो किरण दिखाई पड रही थी वह भी धूमिल हो गयी। अंततः 1932 ई. में जर्मन चांसलर ने यह घोषणा कर दी कि जर्मनी फिर से क्षतिपूर्ति की किस्त आरम्भ नहीं कर सकता। इस तरह प्रथम विश्व युद्ध के तत्काल बाद से ही शुरू हुई इस जटिल समस्या का निदान अपने आप ही हो गया। जर्मनी की ही तर्ज पर अन्य देशों ने भी अपने–अपने ऋणों का भुगतान करना बंद कर दिया।

2.6 लन्दन सम्मलेन (जून 1933 ई.)

लुसाने सम्मलेन ने राष्ट्र संघ से यह प्रार्थना की थी कि आर्थिक संकट पर विमर्श हेतु भविष्य में एक विश्व–सम्मलेन आयोजित किया जाय। अनुरोध को स्वीकार करते हुए राष्ट्र संघ ने जून 1933 में लन्दन में एक सम्मलेन आयोजित किया जिसमें दुनिया भर के कुल 67 देश शामिल हुए। लन्दन सम्मलेन में प्रमुख रूप से मुद्रा में स्थिरता लाने के सम्बन्ध में विचार किया गया। इस बात पर भी सहमति बनी कि व्यापार के क्षेत्र में संरक्षण नीति का अंत कर विभिन्न राज्य आपसी सहयोग करें। विभिन्न देशों ने आयात को रोकने के लिए जो कड़े कर लगाए हैं उन्हें ढीला और कम किया जाय। फ्रांस ने प्रस्ताव रखा कि संरक्षण नीति का अन्त करने के पहले मुद्रा का स्थिरीकरण आवश्यक है। ब्रिटेन समेत कुछ देशों ने फ्रांस की इस मांग का समर्थन किया। इस समय तक अमरीका की बैंकिंग व्यवस्था पूरी तरह अस्त–व्यस्त हो चकी थी और लगभग डेढ़ करोड़ मजदूर अपनी नौकरी से हाथ धो चुके थे। नए घटनाक्रम के अंतर्गत फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट 4 मार्च 1933 को अमरीका का नया राष्ट्रपति बन चुका था। गाडी को पटरी पर लाने के लिए रूजवेल्ट ने अपनी मशहूर 'न्यू डील पालिसी' की घोषणा कर दी थी। रूजवेल्ट ने इस क्रम में चार दिनों के लिए सारे बैंक बन्द कर दिए। अप्रैल में अमरीका ने भी स्वर्णमान का परित्याग कर दिया। रूजवेल्ट ने अपार साहस एवं धैर्य और साहस के साथ विश्व अर्थव्यवस्था को सुधारने का अपना प्रयास आरम्भ किया। लन्दन सम्मलेन में अमरीकी प्रतिनिधि ने 22 जून 1933 ई. को यह घोषणा कर दिया कि मुद्रा में स्थिरता लाने का यह उपयुक्त समय नहीं है। अमरीका के इस रूख से लन्दन सम्मलेन भी विफल हो गया। अंततः इस सम्मलेन को विधिवत समाप्त घोषित कर दिया गया। और आर्थिक संकट को दूर करने के सारे प्रयास धरे के धरे रह गए।

तरह–तरह के उपायों और सम्मेलनों, बैठकों से आर्थिक संकट की जो पहेली नहीं सुलझ पाई थी उसे समय ने अपने मरहम से सुलझा दिया। समय के साथ मन्दी के संकट की तीव्रता अपने आप कम होने लगी। अनेक देशों ने मुद्रा प्रसार की नीति का अवलंबन कर खुद ही अपनी मुद्रा का मूल्य घटा लिया। इससे वस्तुओं के मूल्य बढ़ने लगे। इतने दिनों से कारखानों के बन्द रहने से भी माल अब कम मात्रा में ही बचा रह गया था। राजनीतिक तौर पर यूरोपीय फिजा में फिर से तनाव व्याप्त होने लगा था और विभिन्न देशों ने व्यापक पैमाने पर हथियारों का निर्माण आरम्भ कर दिया था। इससे बंद हुए कारखाने खुलने लगे और मजदूरों को काम मिलने लगा। विभिन्न देश अपनी सेना में बड़े पैमाने पर सैनिकों की भर्ती करने लगे। बेरोजगारी का दौर समाप्त हो चला था। इस तरह आर्थिक तौर पर हर देश मजबूती के साथ अपने कदम आगे बढाने लगा। लेकिन जिस तरह इस समस्या का समाधान हुआ वह न तो राजनीति के लिए, न लोकतन्त्र के लिए न ही भविष्य के लिए हितकारी साबित हुआ। कुल मिला कर इस प्रवृत्ति ने विभिन्न देशों में तानाशाही को बढ़ावा दिया जिससे दुनिया बड़ी तेजी से दूसरे विश्वयुद्ध की ओर अग्रसर हो गयी।

किसी भी समय की आर्थिक व्यवस्था का परिणाम सीधे तौर पर उस समय की राजनीति पर पड़ता है। आर्थिक मन्दी इसका अपवाद कैसे होती। मन्दी के कारण जनता को बेकारी, गरीबी और भूखमरी के त्रासद दौर से गुजरना पड़ा। इससे जनता में हताशा, निराशा, अस्थिरता और असुरक्षा की भावना पैदा हो गयी। इस समय की विभिन्न देशों की लोकतांत्रिक सरकारें जनता की इन समस्याओं का कोई समाधान नहीं निकाल पा रही थीं जिससे उन्होंने शीघ्र ही जनता का विश्वास खो दिया। हर जगह जनता ने सतारूढ़ दलों के खिलाफ वोट दे कर उन्हें अपदस्थ किया और प्रतिक्रियावादी तत्वों के हाथों में सत्ता सौंप दी।

आर्थिक मन्दी के प्रथम दौर (1920–1924) में इटली में तानाशाह मुसोलिनी ने प्रजातन्त्र का दमन कर फासिस्ट सरकार की स्थापना की। इसकी देखा–देखी विश्व के अन्य देशों में भी तानाशाही शासन स्थापित करने के प्रयास किये गए। मन्दी का दूसरा दौर जो 1929 से 1932 के बीच चला, अधिक भयावह था और इसने पूरी दुनिया की जनता के सामने हताशा की स्थिति उत्पन्न कर दी। लोग–बाग अपने देशों के शासन से ऊब चुके थे और किसी भी तरह व्यवस्था में बदलाव चाहते थे। तानाशाही शक्तियों ने इस निराशावादी वातावरण का अपने पक्ष में उपयोग किया और वे जनता के बीच भड़काऊ भाषण दे कर लोगों को तमाम प्रलोभन देने लगे। विकल्पहीनता की स्थिति में जनता ऐसे तत्वों के झांसे में आ गयी और कमोबेश ऐसा माहौल बन गया जिसमें सर्वत्र अधिनायक तन्त्र के पक्ष में हवा बहने लगी। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों तक में सरकारों ने आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपनी शक्ति काफी बढ़ा ली जबकि संसद की शक्तियों को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया। इंग्लैंड में लेबर दल की सरकार की जगह सर्वदलीय सरकार की स्थापना हुई जो लगभग अधिनायकवादी सरकार ही थी। अमरीका में राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट ने अपने हाथों में अपरिमित शक्तियां केन्द्रित कर लिया और अपने पूरे शासन काल में एक तानाशाह की भाँति ही शासन कार्यों का संचालन किया। जर्मनी में हिटलर तमाम तिकड़मों की सहायता से सत्ता पर काबिज हो गया और नात्सीवादी सरकार की स्थापना कर लिया। इसी तरह आस्ट्रिया, हंगरी, स्पेन, पोलैण्ड, यूगोस्लाविया, रोमानिया, बुल्गारिया, यूनान, पुर्तगाल, एस्टोनिया, लैटविया आदि राज्यों में भी

तानाशाही शासन की स्थापना हो गयी। तमाम खामियों के बावजूद लोकतांत्रिक पद्धति की एक खासियत होती है वहां बातचीत की गुंजाईश होती है। बातचीत से जटिल से जटिल समस्याएं सुलझा जाती हैं। लेकिन अधिनायकतंत्र में शासन के एक व्यक्ति के इर्द–गिर्द केन्द्रित होने के कारण अनेक दिक्कते पेश आती हैं। वहाँ शासक का अहम् सर्वोपरि होता है और बातचीत की गुंजाईश न के बराबर होती है। अधिनायकवादी व्यवस्था में काबिज व्यक्ति के ऊपर दबाव बनाने वाली किसी संस्था के अभाव में भी कोई संभावना नहीं बचती। अगर किसी एक देश की ऐसी स्थिति होती तब किसी तरह उस पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता था लेकिन जहां पूरे कुएँ में ही भांग पड़ी हो वहां किसी तरह की कोई उम्मीद करना अपने आप को धोखे में रखना होता। अन्ततः वाही हुआ जिसका डर सबको था। पूरा विश्व युद्ध की धधकती अग्नि में आत्मोत्सर्ग करने के लिए कूद पड़ा।

2.7 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि महान आर्थिक मंदी क्या थी? इसके लिए उत्तरदायी कारण कौन से थे? किस तरह इसने लगभग समूची दुनिया को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया? आपने यह भी जाना कि इस मन्दी से उबरने के लिए किस तरह के सामूहिक प्रयास किये गए और संकीर्ण स्वार्थों की वजह से वे सब असफल रहे। एक समय आया जब जर्मनी ने क्षतिपूर्ति का धन देने से इनकार कर दिया और इस प्रकार यह जटिल समस्या अपने आप ही सुलझ गयी। लेकिन जिस तरह से यह समस्या सुलझी उसके परिणाम दुनिया के लिए भयावह साबित हुए। समूचा यूरोप और प्रकारांतर से पूरी दुनिया एक बार फिर युद्ध की दिशा में आगे बढ़ चली और कुछ ही वर्षों बाद द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत हो गयी।

2.8 बोध प्रश्न

(1) महान आर्थिक मन्दी की शुरुआत किस तारीख से प्रारम्भ मानी जाती है?

(अ) 24 अक्टूबर 1929 (ब) 24 मार्च 1930

(स) 24 नवम्बर 1931 (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(2) मन्दी से उबरने के क्रम में लुसाने सम्मलेन का आयोजन कब किया गया?

(अ) जुलाई 1931 (ब) जुलाई 1932

(स) जुलाई 1933 (द) जुलाई 1934

(3) आर्थिक मन्दी से उबरने के लिए अमरीका द्वारा क्या प्रयास किये गए?

(4) महान आर्थिक मन्दी के क्या परिणाम निकले?

2.9 कठिन शब्दावली

आयात – अपनी जरूरत की वस्तुओं को जब भी कोई देश विदेशों से मंगाता है तो उसे 'आयात' कहा जाता है।

निर्यात – जब कोई देश किसी अन्य देश को उसकी मांग पर कोई वस्तु भेजता है तब इसे निर्यात कहा जाता है।

स्वर्णमान – कोई भी देश अपनी मुद्रा का मूल्य बनाए रखने के लिए जब अपने यहाँ जारी किये जाने वाली मुद्रा के बराबर का सोना अपने भण्डार में सुरक्षित रखता है तब उस नीति को स्वर्णमान की नीति कहा जाता है।

अनुकूल व्यापार संतुलन– जब किसी देश का निर्यात उसके आयात से अधिक हो तब इस स्थिति को अनुकूल आर्थिक संतुलन की संज्ञा दी जाती है।

प्रतिकूल व्यापार संतुलन– जब किसी देश का आयात उसके निर्यात से अधिक हो तब इस स्थिति को प्रतिकूल आर्थिक संतुलन की संज्ञा दी जाती है।

क्षतिपूर्ति– प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त मित्र राष्ट्रों ने युद्ध की पूरी जिम्मेदारी जर्मनी पर थोप दी और अपनी समस्त क्षति के लिए उसे ही उत्तरदायी ठहराया। इन देशों ने युद्ध के हर्जाने की रकम जर्मनी से वसूलने का निश्चय किया। इस मद में जर्मनी ने मित्र राष्ट्रों को जो भी रकम चुकता किया उसे क्षतिपूर्ति की रकम कहा जाता है।

डावेस योजना– जर्मनी तथा यूरोप को आर्थिक संकट से उबारने के उद्देश्य से 1924 ई. में विशेषज्ञों की एक समिति का गठन किया गया। अमरीकी सैनिक जनरल डावेस ने इस समिति का नेतृत्व किया। इस कमेटी ने एक योजना बनायी जिससे जर्मनी अपने कर्जों को आसानी से उतार सके। इसी योजना को इतिहास में 'डावेस योजना' कहा गया।

यंग योजना– क्षतिपूर्ति समस्या के अन्तर्गत जर्मनी द्वारा चुकाई जाने वाली रकम और समयावधि तय करने के उद्देश्य से फरवरी 1928 में अमरीकी अर्थशास्त्री ओवेन यंग के नेतृत्व में एक समिति की बैठक आरम्भ हुई। यंग के नाम पर ही इसे 'यंग योजना' कहा गया।

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) अय (2) बय

2.11 उपयोगी पुस्तकें

- ई. एच. कार, द ट्वेन्टी इयर क्राईसिस(1919–1939), इण्टरनेशनल रिलेशन बिट्वीन टू वर्ल्ड वार्स
- गाथरॉन एंड हार्डी, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ इण्टरनेशनल अफेयर
- हेज एंड कोल, हिस्ट्री ऑफ यूरोप, खंड– 2
- जैक्सन, द बिट्वीन वार वर्ल्ड
- लैंगसम, द वर्ल्ड सिन्स 1914

इकाई–3 अफ्रीका का संकट और अबीसीनिया का मुद्दा

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 अफ्रीका की खोज

3.3 बर्लिन सम्मलेन

3.4 कांगो के राज्य का निर्माण

3.5 अफ्रीका की लूट–खसोट

3.6 अफ्रीका में ब्रिटेन की लूट

3.7 इजिप्ट में ब्रिटेन की लूट

3.8 सूडान और फसोदा काण्ड

3.9 बोअर समस्या

3.10 अबीसीनिया की समस्या

3.11 अबीसीनिया पर विजय के परिणाम

3.12 सारांश

3.13 बोध प्रश्न

3.14 कठिन शब्दावली

3.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.16 उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे कि

- अफ्रीका की खोज कैसे हुई।
- यूरोपीय महाशक्तियों ने किस तरह अफ्रीका की निर्मम लूट–खसोट की।
- इजिप्ट में ब्रिटेन ने किस प्रकार अपना आधिपत्य स्थापित किया?
- फसोदा काण्ड क्या था और यह मामला कैसे सुलझा?

- ❖ अबीसीनिया की समस्या क्या थी और इटली ने किस तरह अबीसीनिया पर अपना अधिकार जमा लिया।
- ❖ अबीसीनिया विजय के क्या परिणाम निकले?

3.1 प्रस्तावना

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों में कुछ ऐसी परिघटनाएं हुईं जिनका विश्व इतिहास पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा। यूरोप के कुछ देश जो ज्ञान–विज्ञान में अधिकाधिक प्रगति कर चुके थे अब प्रभूत मात्रा में औद्योगिक उत्पादन करने लगे थे। उनके सामने समस्या यह थी कि वे अपने इन कारखानों में उत्पादित अतिरिक्त सामान की खपत कहाँ और कैसे करें कि उन्हें ज्यादा से ज्यादा मुनाफा हो। ठीक इसी समय विश्व के मानचित्र पर दो नए यूरोपीय देश उभर कर सामने आये। संयोगवश 1870–71 ई. में जर्मनी और इटली का एकीकरण लगभग एक साथ सम्पन्न हुआ। एकीकृत होने के बाद इन देशों ने अब अपनी औद्योगिक प्रगति पर ध्यान दिया और शीघ्र ही ये नवोदित देश भी अपने माल की खपत के लिए बाजार खोजने लगे। दुनिया वही थी इसलिए उसका क्षेत्रफल भी उतना ही था जितना वह पहले भी हुआ करता था। संयोगवश इस दुनिया को यूरोप के कुछ चतुर–सुजान देश पहले ही आपस में बाँट चुके थे। अब जर्मनी और इटली को अपने बाजार के लिए उपनिवेश कहाँ से और कैसे मिलते। कहना न होगा कि इन साम्राज्यपिपासु देशों के बीच तकरार की जमीन तैयार हो गयी थी। इतिहास की एक विशेषता यह भी होती है कि उसके अंतर्गत किसी भी घटना का अध्ययन पर्याप्त बाद में किये जाने और फिर उसे लिखे जाने के कारण उसके पास घटनाओं के तमाम कारणों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की बड़ी सुविधा होती है। एक अध्ययन में यह भी दिखाई पड़ता है कि 1873 ई. से दुनिया भर के बाजारों में सामानों की कीमतें गिरने लगी थीं जिससे कि पूंजीपतियों के मुनाफे कम हो गए थे। ये लोग अब अपनी पूँजी का निवेश अन्यत्र ऐसी जगह करना चाहते थे जहां लाभ की गुंजाईश अधिकाधिक हो। एक और बात थी। 1870 ई. के पहले यूरोपीय देश बहुत ऊंचे ब्याज पर अमरीकी देशों को ऋण दिया करते थे। सामुद्रिक दूरी की अधिकता और इन अमरीकी देशों के पिछड़ेपन के चलते होता यह था कि ब्याज की वसूली तो दूर यूरोपीय देशों का मूल धन भी डूब जाता था। ऐसे में ये देश अपनी पूँजी अब अपने ही उपनिवेशों में लगाना चाहते थे जिससे कि उनकी पूँजी तो सुरक्षित रहे ही, साथ ही अधिकाधिक मुनाफा भी कमाया जा सके। इन देशों का यह मंसूबा कामयाब न हो पाता अगर इस समय भाप से चलने वाले बड़े जहाजों और टेलीग्राम की खोज न हो गयी होती। यातायात और संचार के इन तीव्रगामी माध्यमों की खोज और विकास ने इन देशों के लिए दूर–दराज के क्षेत्रों पर अधिकार, तथा इनके आर्थिक शोषण के साथ–साथ इन पर राजनीतिक वर्चस्व कायम करने की राह को भी आसान बना दिया।

साम्राज्यवादी देश ऐसी चतुराई से अपने साम्राज्य का विस्तार करते थे जिससे वे अपने काम को दुनिया की नजर में न्यायोचित ठहरा सकें और कोई भी उनकी महत्वाकांक्षा को तनिक भी भांप न पाए। 'सांप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे' कहावत को चरितार्थ करने के लिए इन देशों ने एक ऐसा कपोल–कल्पित सिद्धान्त गढ़ा जिसका वास्तव में कोई आधार ही नहीं था। इस सिद्धान्त के अनुसार विकसित एवं सभ्य राष्ट्र होने के कारण यूरोपीय देशों के ऊपर यह

जिम्मेदारी थी कि वे दुनिया के पिछड़े एवं असभ्य देशों को विकसित और सभ्य बनाएँ। इसे गोरे लोगों का भार या ''पजमतंद'' ठनतकमद कहा गया। अंगेज कवि रूडयार्ड किपलिंग अपनी एक कविता में लिखते हैं–

Take up the White Man's burden

Send out the best ye breed

Go bind your sons to exile

To serve your captive's need

To wait in heavy harness

On fluttered folk and wild

Your new caught sullen peoples

Half devil and half child-

3.2 अफ्रीका की खोज

सभ्य बनाने के लिए जरूरी था कि ऐसे पिछड़े देशों को ये विकसित देश अपनी उत्कृष्ट सभ्यता एवं उच्च धर्म से परिचित कराएँ। अतः फ्रांस अपने 'Mission Civilisatrice' और 'jarmani Kulture' के अभियान में जुट गए। इस क्रम में धर्म, संस्कृति और सभ्यता के प्रसार के नाम पर अनगिनत ईसाई पादरियों को अफ्रीका और प्रशान्त महासागरीय द्वीपों में भेजा गया। इस प्रकार सभ्य बनाने की आड़ में ऐसे देशों को अपने आधिपत्य में लेने का क्रम इन यूरोपीय देशों ने शुरू कर दिया। ईसाई धर्म के प्रचार के उद्देश्य से इन देशों में पहले पादरी पहुँचे। पादरियों के पीछे–पीछे कुछ व्यापारी गए। फिर इन व्यापारियों की सुरक्षा के लिए अंततः सेना भेज दी गयी और इस प्रकार इन देशो पर कब्जा जमाने का साम्राज्यवादी अभियान पूरा कर लिया गया। सभ्य होने का दावा करने वाले इन देशों का असली चेहरा अब उजागर हुआ जब शासित देश के लोगों पर इन देशों के व्यापारियों और कर्मचारियों ने अमानुषिक अत्याचार किये। इस प्रकार इन साम्राज्यवादी देशों के बीच एक तीखी और कटु औपनिवेशिक प्रतिस्पर्धा की शुरुआत हुई।

पडोसी होते हुए भी अफ्रीका यूरोप के लिए अपरिचित था। यह भूमंध्य सागर के दक्षिण में अवस्थित था जिसे 'अंध–महाद्वीप' (Dark Continent) की संज्ञा दी जाती थी क्योंकि इसके बारे में लोगों को न के बराबर जानकारी थी। यहाँ के निवासी गहरे काले रंग वाले लोग थे जिन्हें हब्शी या नीग्रो कहा जाता था। यह पूरा महाद्वीप घने जंगलों और पहाड़ों से भरा पड़ा था। दुनिया को फतह कर लेने वाले यूरोपीय नाविक भी अफ्रीका के अन्दरूनी भागों में जाने का साहस नहीं जुटा पाए थे और केवल तटीय क्षेत्रों का ही स्पर्श कर पाए थे। इसी क्रम में इन क्षेत्रों के नाम 'गोल्ड कोस्ट', आईवरी कोस्ट', और 'स्लेव कोस्ट' रखे गये थे। इन तटवर्ती क्षेत्रों से ही हजारों नौजवान हब्शी स्त्री–पुरुषों को गुलाम बना कर अमरीकी महाद्वीप में जानवरों की तरह बेचने के लिए भेज दिया जाता था। यहाँ इन पर अमानुषिक अत्याचार किया जाता था तथा जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया जाता था। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अफ्रीकी महाद्वीप के कुछ भागों पर यूरोपीय देशों का पहले ही कब्जा हो गया था। इस समय के विश्व की सबसे बड़ी

औपनिवेशिक शक्ति इंग्लैण्ड था। 1806 ई. में इंग्लैण्ड ने हालैण्ड से 'केप कॉलोनी' का क्षेत्र छीन कर अपने अफ्रीकी अभियान की शुरुआत की। इसी क्रम में उसने 1843 ई. में नटाल पर कब्जा कर लिया। आगे बढते हुए इंग्लैण्ड ने गाम्बिया, सियारालियोन, गोल्ड–कोस्ट, लेगास और नाईजर नदी के मुहाने वाले क्षेत्र पर भी कब्जा कर लिया। 1830 ई. में अफ्रीका के उत्तरी तट पर स्थित अल्जीयर्स पर फ्रांस ने अधिकार कर लिया। आगे बढते हुए फ्रांस ने गेबून, सेनेगल और आईवरी कोस्ट पर अधिकार कर लिया। स्पेन और पुर्तगाल ने भी इसी क्रम में अपने उपनिवेश स्थापित किये।

अफ्रीका को दुनिया से परिचित कराने का श्रेय धर्म–प्रचारकों एवं व्यापारियों को है। अफ्रीका के दुर्गम अन्दरूनी भागों में पहले–पहल पहुँचने वाले लोगों में स्काटिश धर्म–प्रचारक एवं वैद्य डेविड लिविंगस्टोन था। मानवता की सेवा और धर्म के प्रचार को ही लिविंगस्टोन ने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। इसी क्रम में 1841 ई. में वह दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका पहुँचा। जाम्बेजी नदी के किनारे–किनारे चलते हुए लिविंगस्टोन विक्टोरिया जलप्रपात तक पहुँच गया। यहाँ पहुँचने वाला वह पहला यूरोपीय व्यक्ति था। लिविंगस्टोन ने अफ्रीका के अंदरूनी भागों के भूगोल, जलवायु, वनस्पतियों एवं पहाड़ों के बारे में जानकारियाँ जुटाई थीं जिसका लाभ उसे इस यात्रा के दौरान मिला। वह अफ्रीकी लोगों के साथ काफी घुल–मिल गया और उनके बीच ही रहते हुए सेवा कार्यों में लगा रहा। बहुत दिनों तक जब वह यूरोप नहीं लौटा तब उसका पता लगाने के लिए 'न्यूयार्क हेराल्ड' समाचार पत्र के अनुभवी पत्रकार हेनरी मोर्टन स्टेनली नामक पत्रकार को अफ्रीका भेजा गया। स्टेनली 1871 ई. में उस जगह पहुँचा जहां लिविंगस्टोन रहा करता था। स्टेनली से मुलाकात के कुछ ही दिनों बाद लिविंगस्टोन का निधन हो गया।

पत्रकार होने के नाते हेनरी को बहुत अनुभव था। अफ्रीका की समृद्धि को देख कर वह बहुत चकित हुआ और भविष्य में उसकी अपार सम्भावनाओं एवम उससे उठाये जाने वाले फायदों का आंकलन कर लिया। यूरोप लौट कर वह ऐसे शासकों की तलाश करने लगा जो उसकी योजनाओं में रूचि ले। सौभाग्यवश 1878 ई. में उसकी मुलाकात बेल्जियम के शासक लियोपोल्ड द्वितीय से हुई जो व्यवसायी प्रकृति का था और अपना साम्राज्य विस्तृत करना चाहता था। लियोपोल्ड के अधिकार क्षेत्र में चीन के कुछ हिस्से, फारमोसा (ताईवान), फिलीपींस और मोरक्को पहले से ही थे फिर भी उसने मध्य अफ्रीका में कांगो नदी तट के क्षेत्र के विकास में रूचि लिया। स्टेनली और लियोपोल्ड ने मिल कर 1878 ई. में 'इण्टरनेशनल कांगो एसोसियेशन' नामक संस्था की स्थापना किया। इस कंपनी का बेल्जियम के लोगों या सरकार से कोई सम्बन्ध नहीं था। 1882 ई. में स्टेनली फिर कांगों पहुँचा और दो वर्षों के अन्दर ही उसने पांच सौ से अधिक कबीलों के सरदारों को लालच दे कर उनसे कागजातों पर उनके राजकीय निशानों के मुहर लगवा लिए। कांगो नदी तट के एक बड़े हिस्से पर बेल्जियम ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। स्टेनली ने अफ्रीका पर तीन किताबें भी लिखीं। ये किताबें थीं– (1)- How I Find Livingstone (1872), (2) Through The Dark Continent (1878) aur (3)- The Darkest Africa (1890)- इन किताबों के प्रकाशन से भी यूरोपियन लोगों में मन में अफ्रीका के प्रति जिज्ञासा का भाव जगा और वे इसकी तरफ आकृष्ट हुए। और इसी के साथ अफ्रीका के उस संकट की शुरुआत हुई जिसमें शीघ्र ही उसे यूरोप की उपनिवेशवादी शक्तियों के निर्मम लूट–खसोट का शिकार बनना पड़ा।

अब अफ्रीका यूरोपीय शक्तियों के लिए एक खुला मैदान था। वे अपने मनमाफिक क्षेत्रों पर अधिकार कर के उसे अपना उपनिवेश बना सकते थे। यूरोपीय उपनिवेशवादी देश पुर्तगाल का अंगोला और मोजाम्बिक पर पहले से ही कब्जा था। यूरोपीय शक्तियां अफ्रीका के मध्यवर्ती क्षेत्रों पर अधिकार करके अपने साम्राज्य को विस्तृत करना चाहती थीं। इंग्लैंड इसका समर्थन करता था। दरअसल यूरोपीय राज्य अफ्रीका के दलदल में उलझाना नहीं चाहते थे लेकिन इन देशों में कुछ ऐसे दबाव समूह होते थे जो ऐसा करने के लिए अपने देशों की सरकारों पर लगातार दबाव डालते थे।

3.3 बर्लिन सम्मलेन

अफ्रीका में साम्राज्य स्थापित करना और जगहों की तुलना में बहुत आसान था। वहाँ के आदिवासी जातियों के सरदार प्रायः अशिक्षित, पिछड़े हुए एवं लालची थे। छोटे–मोटे उपहार और शराब की बोतलें उन्हें लुभाने–ललचाने के लिए पर्याप्त थीं। उन्हें राजनीति–कूटनीति की तो कोई समझ ही नहीं थी। जब ये सरदार आपस में ही लड़–झगड़ रहे होते थे, यूरोपीय साम्राज्यवादी अपने देशों की राजधानियों में बैठ कर मानचित्र पर इन अफ्रीकी देशों का बंटवारा कर लेते थे और इन सरदारों को इसकी तनिक भी भनक तक नहीं लग पाती थी। लेकिन आगे चल कर जब समस्या इन साम्राज्यवादी देशों के बीच ही उभर कर सामने आई कि किसी उपनिवेश पर अधिकार के क्या आयाम हों? इधर विश्व के मानचित्र पर जर्मनी एक राष्ट्र के रूप में जन्म ले चुका था। हालांकि जर्मनी का निर्माता बिस्मार्क किसी भी उलझाव से बचने के लिए उपनिवेश स्थापना के पक्ष में नहीं था, फिर भी उस पर इस बात का लगातार दबाव पड़ रहा था कि जर्मनी को उपनिवेश स्थापना के लिए आगे बढ़ना चाहिए। अफ्रीका उनके निशाने पर था। इसी क्रम में अफ्रीका की समस्या को आम सहमति से सुलझाने के लिए 1884–85 ई. में बर्लिन सम्मलेन आहूत किया गया। यूरोपीय देशों का यह आखिरी ऐसा सम्मलेन था जो सामान्य हित के मामलों पर विचार करने के उद्देश्य से बुलाया गया। यूरोप के साम्राज्यवादी देशों के अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमरीका भी इस सम्मलेन में शामिल हुआ। इस सम्मेलन में यह तय किया गया कि

(1) कांगो एसोसियेशन के अधिकृत क्षेत्रों को अन्तर्राष्ट्रीय तत्वावधान में अन्तर्राष्ट्रीय राज्य बनाया जाय।

(2) जिस यूरोपीय देश के अधिकार में अफ्रीका का कोई तटवर्ती क्षेत्र होगा उसे उस क्षेत्र के अंदरूनी इलाकों को अधिकृत करने में प्राथमिकता मिलेगी।

(3) अफ्रीकी क्षेत्रों पर अधिकार के लिए एक सर्वमान्य अंतर्राष्ट्रीय संहिता बनायी जाय जिसके अन्तर्गत यह सुनिश्चित किया गया कि किसी क्षेत्र पर काबिज होने के लिए महज मानचित्र पर बँटवारा ही पर्याप्त नहीं माना जाएगा। बल्कि किसी भी क्षेत्र पर अधिकार के लिए यह जरूरी होगा कि तत्संबंधित देश अपने अधीनस्थ देश में या तो अपनी सेना की एक टुकड़ी रखे या कुछ प्रशासक रखे या फिर अपने देश के लोगों को वहाँ पर बसाए।

(4) प्रत्येक देश किसी भी भाग को अपने साम्राज्य में शामिल करने के पूर्व अन्य देशों को इस आशय की सूचना जरूर दे देगा।

इस बर्लिन सम्मलेन के पश्चात् अफ्रीका की खुली लूट चालू हो गयी। पूरे अफ्रीका को साम्राज्यवादी देशों ने कुछ ही वर्षों में बड़ी बेरहमी से छोटे–छोटे कई टुकड़ों में बाँट डाला।

3.4 कांगो राज्य का निर्माण

बर्लिन सम्मलेन के निर्णयानुसार 'अंतर्राष्ट्रीय कांगो एसोसियेशन' की जगह 1885 ई. में 'कांगो फ्री स्टेट' की स्थापना की गयी। यह एक अंतर्राष्ट्रीय संरचना थी जिसके साथ दुनिया भर के देश सामान रूप से व्यापार कर सकेंगे। इस नवस्थापित राज्य का बेल्जियम समेत किसी भी राष्ट्र की सरकार से कोई सम्बन्ध नहीं होगा। 'कांगो फ्री स्टेट' का शासन चलाने के लिए लियोपोल्ड को अधिकृत किया गया और नए राज्य की सीमाएँ सुनिश्चित कर दीं गयीं। लियोपोल्ड ने बर्लिन संधि के हस्ताक्षरकर्ता देशों का एक सम्मलेन 1889 ई. में ब्रुसेल्स में आयोजित किया। लेकिन कांगो पर अंतरराष्ट्रीय नियंत्रण का प्रयत्न सफल नहीं हो सका। वस्तुतः खुद लियोपोल्ड कांगो से भारी मुनाफा कमाने के चक्कर में था। इस क्रम में उसने कांगों की प्राकृतिक सम्पदा के शोषण की योजना बनायी। श्रमिक के तौर पर कांगों के आदिवासी उपलब्ध थे ही। उनका अमानवीय तरीके से शोषण प्रारम्भ हो गया। आदिवासियों को गुलाम बना कर उनसे दिन–रात काम लिया जाने लगा। थोड़े ही दिनों में कांगो दुनिया का सबसे बड़ा रबड़ उत्पादक राष्ट्र बन गया। इस समय के नवऔद्योगिक देशों अमरीका एवं यूरोप में रबड़ की भारी मांग थी और लियोपोल्ड ने इसका फायदा उठाते हुए बेहिसाब धन अर्जित किया। इसके बावजूद लियोपोल्ड के इस व्यवसाय पर भारी कर्ज चढ़ा हुआ था। उसने बेल्जियम राज्य से दो करोड़ पचास लाख फ्रेंक की रकम उधार लिया। बेल्जियम राज्य ने कर्ज देते समय यह शर्त रखी कि अगर उसका कर्ज नहीं चुकाया गया तो लियोपोल्ड के मरणोपरांत कांगो राज्य पर बेल्जियम का अधिकार हो जाएगा। ऐसा जान–बूझ कर किया गया। 'चित्त भी मेरी पट्ट भी मेरी' की तर्ज पर 1909 ई. में लियोपोल्ड की मृत्यु के पश्चात कांगो पर बेल्जियम राज्य का अधिकार हो गया और इस तरह यह राज्य 'बेल्जियाई कांगो' बन गया।

3.5 अफ्रीका की लूट–खसोट

इतिहासकार केटलबी के अनुसार 'अफ्रीका का बँटवारा नवीन साम्राज्यवाद के युग की एक असाधारण घटना है।' इसकी असाधारणता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1875 ई. तक जिस अफ्रीका के केवल दस प्रतिशत भाग पर ही यूरोपियनों का अधिकार था, 1900 ई. तक उसी अफ्रीका का केवल दस प्रतिशत हिस्सा ही ऐसा बच गया जिस पर यूरोपीय देशों का अधिकार नहीं रह गया था। यानी अफ्रीका का कुल नब्बे फीसदी हिस्सा यूरोपीय लोगों की हवस का शिकार बन गया। अफ्रीका के बँटवारे की यह घटना दो तरह से असाधारण थी–

(1) बँटवारा क्रमिक रूप में नहीं बल्कि बड़ी तेजी से हुआ और यह केवल पच्चीस वर्षों की अवधि में ही पूर्ण हो गया।

(2) बँटवारे के इस कार्य में इन यूरोपीय शक्तियों के बीच कोई भी बड़ा उलझाव नहीं हुआ। यानी विभाजन का यह महत्वपूर्ण काम बिना किसी युद्ध के असाधारण तरीके से लगभग शांतिपूर्वक सम्पन्न हो गया। बंटवारे के समय इन यूरोपीय देशों के बीच कुछ कटुताएँ और तनाव जरूर दिखाई पड़े। कभी–कभी तो ऐसा लगा कि बस अब युद्ध शुरू होने ही वाला है लेकिन आखिरकार मामले को कूटनीतिक तरीकों से ही सुलझा लिया गया और युद्ध की कोई जरूरत नहीं पड़ी।

अपवाद के तौर पर इथोपिया और कुछ हद तक लाईबेरिया के क्षेत्र ही ऐसे थे जो यूरोपीय हस्तक्षेप से बचे रह गए। लाईबेरिया की स्थापना 1882 ई. में मुक्त किये गए गुलामों को बसाने के लिए की गयी थी। यह राज्य वास्तविक तौर पर संयुक्त राज्य अमरीका के संरक्षण में था।

अफ्रीकी क्षेत्रों पर अधिकार जमाने के लिए गोरे लोगों ने आदिवासी मुखियाओं को अपना मोहरा बनाया। सीधे–सादे मुखिया जल्द ही गोरों के प्रलोभन के जाल में फँस जाते थे। गोरे लोग आदिवासी मुखिया से संधि प्रपत्र पर हस्ताक्षर करा कर तत्सम्बन्धित क्षेत्रों पर अधिकार कर लेते थे। हालांकि इन मुखिया लोगों के पास इस तरह का कोई अधिकार ही नहीं था कि वे अपने क्षेत्र की संप्रभुता हस्तान्तरित करते, जमीन बेचते या खनिज निकालने का एकाधिकार किसी और को प्रदान करते। लेकिन गोरे लोगों ने संधि प्रपत्रों पर इन मुखियाओं के हस्ताक्षर को ही वैधानिक मान कर अपने अधिकृत क्षेत्रों का अधिकाधिक दोहन आरम्भ कर दिया। शासक वर्ग को कदम–कदम पर कबीले के मुखियाओं की जरूरत पड़ती। मसलन वे अपनी सुरक्षा के लिए पूर्ण रूप से इन्हीं पर आश्रित थे, सड़क और रेलवे के निर्माण के लिए मजदूरों की व्यवस्था भी ये मुखिया लोग ही किया करते थे।

अफ्रीकी लोगों के मजदूर बनने की प्रक्रिया ने भी कई एक महत्वपूर्ण बदलावों की शुरुआत की। अफ्रीकी लोगों के लिए यह एक नया अनुभव था। हम पहले ही इस बात की चर्चा कर चुके हैं कि अफ्रीका का समाज अभी भी पुरातन युग की मानसिकता में जी रहा था। इस समय भी एक आम अफ्रीकी में नकद व्यक्तिगत लाभ की कोई चेतना ही नहीं थी इसलिए मजदूरी लेकर काम करने की प्रथा से ये लोग बिलकुल अनजान थे। दूसरे अफ्रीकी समाज का इस समय जो ढांचा था उसमें पुरुष वर्ग कठिन परिश्रम का आदी ही नहीं होता था। घर–परिवार में यह जिम्मेदारी प्रायः महिलाएँ उठाती थीं। यूरोपियन लोगों ने अब मुखियाओं की मदद से अफ्रीकन नौजवानों से जबरन काम लेना शुरू किया। यही नहीं उन्होंने वे तमाम हथकण्डे भी अपनाए जिससे ये अफ्रीकी लोग काम करने के लिए आसानी से राजी हो जायें। उदाहरण के तौर पर औपनिवेशिक प्रशासन प्रायः हर अफ्रीकी पर कुछ कर (जैसे झोपड़ी कर) आरोपित कर देता था जो उन्हें नकद देना होता था। ऐसे में नकद राशि जुटाने के लिए इन आदिवासी लोगों को मन मार कर काम करने के लिए तैयार होना पड़ता था। एक और बात थी यूरोपीय लोगों ने खेती लायक अधिकाँश जमीनें हथिया ली थीं जिन पर अफ्रीकी लोगों को काम करने के लिए मजबूर किया। अब ये आदिवासी गोरों के बाड़े में उनके घर और खेतों में सपरिवार दिन–रात काम करते। इस तरह आदिवासी अपनी मूल जड़ से लगातार कटने लगे। उन्हें अपने तौर–तरीके, प्रथा–परम्पराएँ, नृत्य–संगीत सब कुछ छोड़ने पड़े। गोरे लोग इन्हें अपनी संस्कृति से भी दूर ही रखने का प्रयास करते थे। इस तरह अपनी छूटती हुई सामाजिक परम्पराओं की जगह इनके पास नया अपनाने के लिए भी कुछ नहीं था।

➢ पुर्तगाल

बेल्जियम की देखा–देखी पुर्तगाल भी अफ्रीकी राज्यों पर अधिकार जमाने के लिए जागृत हुआ। पहले उसके पास अफ्रीकी तट पर कुछ समुद्री स्टेशन थे। अब आगे बढ़ते हुए उसने अंगोला और मोजाम्बिक जिसे पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका कहा जाता था, जैसे क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। पुर्तगाल यह चाहता था कि उसका अधिकार अफ्रीका के बीच के उन राज्यों पर भी हो जाय जिससे उसके पश्चिमी उपनिवेश अंगोला और पूर्वी उपनिवेश मोजाम्बिक भू–भाग से जुड़ जाए। लेकिन पुर्तगाल की चाहत पूरी न सकी।

➢ इटली

इटली भी एक राज्य के रूप में संगठित हो चुका था और अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित करने के मंसूबे से वह भी आगे बढ़ा। लेकिन तमाम प्रयासों के बावजूद इटली को अफ्रीकी राज्यों पर कब्जा जमाने में सफलता नहीं मिल पायी। वह ट्यूनिश पर अधिकार जमाना चाहता था, लेकिन अभी वह सोच ही रहा था कि फ्रांस ने 1882 ई. में ट्यूनिश को अपने कब्जे में ले लिया। इटली देखता रह गया। इससे इटली के मन में फ्रांस के प्रति एक खटास पैदा हो गयी और वह जर्मनी के गुट में शामिल हो गया। इटली को अफ्रीका के दो वीरान इलाकों से संतोष करना पड़ा। सोमालीलैंड के एक हिस्से और इरिट्रिया पर इटली का अधिकार हो गया। अब इटली अफ्रीका के अंदरूनी भाग की तरफ बढ़ा। वस्तुतः वह इथियोपिया और नील नदी के उपरी क्षेत्रों को अधिकृत कर एक साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रहा था। लेकिन लगभग अस्सी हजार इथोपियाई सैनिकों ने जबरदस्त प्रतिरोध करते हुए बीस हजार संख्या वाली इटालियन सेना को 1896 ई. में अडोवा के युद्ध में पराजित कर दिया। युद्ध में अनेक इतालवी सैनिक मारे भी गए। इतिहास में यह पहला मौका था जब अफ्रीकी आदिवासियों ने किसी यूरोपीय सेना को युद्ध के मैदान में पूरी तरह पराजित कर अपने भू–भाग की रक्षा करने में कामयाबी हांसिल की थी। आगे चल कर 1911–12 ई. में इटली ने तुर्की को पराजित कर उससे त्रिपोली और साईरीनिका नामक क्षेत्र छीन लिया। अफ्रीका में साम्राज्य स्थापना के क्रम में इटली और फ्रांस के हितों में बराबर टकराव होता रहा जिसमें फ्रांस का पलड़ा भारी पड़ा।

➢ जर्मनी

देर से एकीकृत होने के कारण जर्मनी औपनिवेशिक दौर में पिछड़ गया था। जर्मनी का निर्माता बिस्मार्क नहीं चाहता था कि जर्मनी औपनिवेशिक होड़ में शामिल हो। लेकिन एक समूह ऐसा था जो जोरो–शोर से प्रचारित कर रहा था कि जर्मनी को भी साम्राज्यवादी प्रसार में भाग लेना चाहिए अन्यथा उसका पिछड़ना तय है। जनता का एक बड़ा वर्ग भी जर्मनी के आगे बढ़ने के पक्ष में था। अब जर्मनी अपने नवस्थापित उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति हेतु उपनिवेश स्थापना के लिए आतुर दिखाई पड़ा। जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए, जर्मनी की औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा वैश्विक रंगमंच पर जर्मन प्रभाव बनाए रखने के लिए बिस्मार्क को अपनी अनिच्छा त्यागनी पड़ी। धीरे–धीरे जर्मनी ने अफ्रीका के पश्चिमी तट पर स्थित टोगोलैंड, कैमरून तथा दक्षिण–पश्चिम अफ्रीका (नामीबिया) का क्षेत्र अपने अधिकार में ले लिया। इन भो–भागों पर अधिकार जमाते समय ब्रिटिश–जर्मन संबंधों में तनाव आ गया क्योंकि ये सभी क्षेत्र समुद्र तट पर स्थित थे। बिस्मार्क ने जर्मन लोगों की विस्तारवादी आकांक्षाओं को पूर्ण करने की प्रक्रिया

में उपनिवेशवाद की नीति का प्रचार करने वाले दबाव गुट को सुनियोजित तरीके से बहुत शक्तिशाली बना दिया। बिस्मार्क के उत्तराधिकारियों के लिए इसकी उपेक्षा कर पाना संभव नहीं था। इसी क्रम में जर्मनी ने 1890 ई. के पश्चात सुदूर–पूर्व और निकट–पूर्व क्षेत्र में अपना औपनिवेशिक विस्तार किया।

➢ फ्रांस

ब्रिटेन के बाद फ्रांस ही ऐसा देश था जिसे अफ्रीका की लूट में सर्वाधिक लाभ प्राप्त हुआ। फ्रांस के पास 1830 ई. से ही अल्जीरिया था। नवसंगठित देश इटली को अल्जीरिया से दूर रखने के लिए फ्रांस ने 1882 ई. में ट्यूनिश पर कब्जा कर लिया। फ्रांस की इस हरकत से इटली नाराज हो गया और वह जर्मन गुट में शामिल हो गया। लेकिन फ्रांस ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और अपना साम्राज्य स्थापना का अपना अभियान जारी रखा। पश्चिमी अफ्रीका के तट पर– उत्तर में अल्जीरिया से लेकर पूर्व में सूडान तक और वहां से गिनी तट के अधिकांश क्षेत्रों में फरांस का आधिपत्य कायम हो चुका था। फ्रांसीसियों ने लाल सागर के तटवर्ती ओबोफ पर कब्जा कर लिया। इसी क्रम में उसने 1883 ई. में सेनेगल, 1894 ई. में तिम्बूकट, 1896 ई. में मेडागास्कर और 1912 ई. में मोरक्को पर अधिकार कर लिया। 1896 ई. इटली के अबीसीनिया के हाथों पराजित होने के पश्चात अबीसीनिया में भी फ्रांस का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। अब फ्रांसीसी पश्चिम में डकार से पूर्व में एडेन की खाड़ी तक फ्रांसीसी अफ्रीका का सपना देखने लगे। 1898 ई. में फ्रांस की ओर से कैप्टेन मार्शा को एक अभियान दल के साथ चाड झील से पूरब की ओर भेजा गया। इस अभियान का उद्देश्य नील नदी के ऊपरी क्षेत्र में पहुँच कर सूडान के दक्षिणी भाग में फ्रांसीसी आधिपत्य की घोषणा करना था। इस समय तक सूडान पर किसी भी यूरोपीय राष्ट्र का कब्जा नहीं था।

3.6 अफ्रीका में ब्रिटेन की लूट

अफ्रीका की लूट का सबसे बड़ा हिस्सा ब्रिटेन को मिला। उत्तर में ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका, यूगांडा और एंग्लो–इन्डियन सूडान पर कब्जा करते हुए और सूडान और इजिप्ट को अपने संरक्षण के दायरे में लाते हुए ब्रिटेन ने अपनी सीमा को भूमध्यसागर तक पहुँचा दिया। दक्षिण में उसने दक्षिण अफ्रीका और रोडेशिया (जिम्ब्वाबे) पर जबकि पूर्वी तट पर ब्रिटिश सोमालीलैण्ड और पश्चिमी तट पर स्थित जाम्बिया, सियरा–लियोन, गोल्ड–कोस्ट (घाना) एवं नाईजीरिया पर अधिकार कर लिया।

3.7 इजिप्ट में ब्रिटेन का आधिपत्य

इजिप्ट के ऊपर ब्रिटेन का अधिकार एक अजीबोगरीब घटना है। इसका प्रारम्भ इजिप्ट के वित्तीय संकट से हुआ। इजिप्ट की सरकार दिवालिया हो गयी थी। इससे जूझने के लिए 1875 ई. में इजिप्ट के शासक खदीव इस्माईल ने स्वेज नहर के इजिप्ट के शेयर ब्रिटेन को बेच दिए। हालांकि एक समय ब्रिटेन ने स्वेज नहर के निर्माण का विरोध किया था, लेकिन शेयर खरीदने के बाद स्वेज नहर के व्यापार में ब्रिटेन ने बड़ा हिस्सा प्राप्त कर लिया। यही नहीं स्वेज नहर मार्ग के जरिये उसके भारतीय उपनिवेश की दूरी बहुत कम हो गयी थी जो उसके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था। इधर शेयर बेचने के बाद भी 1876 ई. में अपनी खराब अर्थव्यवस्था को देखते हुए इजिप्ट ने अपने विदेशी ऋणों को चुकाना स्थगित कर

दिया। चुकि इजिप्ट में ब्रिटेन और फ्रांस की ही अधिकाँश पूँजी लगी हुई थी अतः इन देशों ने इजिप्ट की वित्तीय स्थिति की जाँच करने की माँग की। इजिप्ट के सहमत होते ही ब्रिटेन और फ्रांस को इजिप्ट के वित्तीय मामलों में हस्तक्षेप करने की छूट मिल गयी। वित्तीय व्यवस्था पर दोहरा नियंत्रण कुछ दिनों तक तक तो चलता रहा लेकिन कुछ समय बाद टकराव पैदा हो गया। यूरोपीय शक्तियों ने खदीव इस्माईल को अपदस्थ कर तौफीक को इजिप्ट का नया खदीव बना दिया। लेकिन आर्थिक स्थिति लगातार खराब ही होती चली गयी। जब इजिप्ट में 1400 यूरोपियन लोगों को ऊँची राजकीय सेवाओं में भर्ती कर लिया गया तब इजिप्ट के लोगों में जातीय विद्वेष की भावना फैल गयी और 1882 ई. में पूर्व में सैन्याधिकारी रहे अरबी पाशा बे के नेतृत्व में विद्रोह शुरू हो गया। पाशा बे ने 'इजिप्ट इजिप्टवासियों के लिए' का नारा दिया जो शीघ्र ही पूरे इजिप्ट में लोकप्रिय हो गया। अब ब्रिटेन और फ्रांस ने यह तय किया कि इस संकट का सैनिक समाधान निकाला जाय लेकिन बाद में फ्रांस अन्तिम समय में इस सैनिक अभियान से अलग हो गया। अकेले ब्रिटेन ने सर गार्नेट वूल्सले के नेतृत्व में इजिप्ट के विद्रोह का कड़ाई से दमन कर दिया और अलेक्जेंड्रिया पर अधिकार कर लिया। 13 सितम्बर 1882 को अरबी वे को पराजित कर सीलोन भेज दिया गया। इसके पश्चात इजिप्ट पर ब्रिटिश नियन्त्रण आरम्भ हो गया।

1882 ई. में सर इवलिन बेरिंग को इजिप्ट में ब्रिटिश कांसल जनरल नियुक्त किया गया। बेरिंग बाद में लार्ड क्रोमर नाम से विख्यात हुआ क्रोमर के निर्देशन में ही 1907 ई. तक इजिप्ट का शासन संचालित होता रहा। खदीव अब नाम–मात्र का शासक रह गया और शासन की वास्तविक बागडोर अब ब्रिटेन के हाथों में आ गयी। इजिप्ट के प्रति ब्रिटेन की इस नीति का निर्देशन ग्लैडस्टोन ने किया जो एक कुशल राजनीतिज्ञ होने के साथ–साथ ब्रिटेन की साम्राज्यवादी नीति के पोषक एवं समर्थक थे। इजिप्ट को पराजित करने के बावजूद ब्रिटिश साम्राज्य में नहीं मिलाया गया। खदीव ही इजिप्ट का शासक बना रहा। ब्रिटेन की इजिप्ट पर इस सफलता के पीछे एक महत्वपूर्ण कारक यह भी था कि जर्मन चांसलर बिस्मार्क ने ब्रिटेन की साम्राज्यवादी लिप्सा पर अंकुश लगाने का कोई प्रयास नहीं किया। ब्रिटिश विदेश सचिव लार्ड ग्रेनविल ने जर्मन सद्भावना पर आभार व्यक्त करते हुए लिखा था दृ 'हम लोग बिस्मार्क के आभारी हैं। इजिप्ट में हमें जो सफलता मिली है उसमें जर्मनी की मित्रता पूर्ण नीति का बड़ा योगदान है।' अब ब्रिटेन के सामने प्रश्न यह था कि इजिप्ट के विद्रोह दमन के बाद वह क्या करे? प्रधानमन्त्री ग्लैडस्टोन और विदेश सचिव ग्रेनविल का मानना था कि ब्रिटिश सेना वापस बुलाने का अर्थ है इजिप्ट में फिर से अराजकतापूर्ण स्थिति को वापस लाना। अंततः ब्रिटिश मंत्रिमंडल ने यह तय किया कि खदीव के सलाहकार के रूप में ब्रिटिश प्रभाव को वहां बनाए रखा जाय। यह भी कहा गया कि ब्रिटिश सरकार के परामर्श पर खदीव वहां पर आवश्यक सुधार कार्यक्रमों को लागू करेगा और इजिप्ट को समृद्धशाली बनाएगा। प्रथम विश्वयुद्ध शुरू होने पर जब तुर्की ने जर्मनी का साथ देने का निश्चय किया तब 1914 ई. में एक घोषणा के द्वारा ब्रिटेन ने इजिप्ट को अपने संरक्षण में ले लिया। ब्रिटेन की इस घोषणा से फ्रांस और ब्रिटेन के बीच वैमनस्य बढ़ा।

3.8 सूडान और फसोदा काण्ड

इजिप्ट के दक्षिण में सूडान का राज्य था जिस पर इजिप्ट का सदियों से आधिपत्य चला आ रहा था। लेकिन 1880 ई. में सूडान ने अपने को स्वतन्त्र घोषित

कर दिया था। 1882 ई. में इजिप्ट पर आधिपत्य कायम करने के पश्चात् ब्रिटेन ने अब सूडान पर भी अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू कर दिया। इजिप्ट में ब्रिटेन के बढ़ते प्रभाव से फ्रांस पहले ही चिन्तित था। स्वेज नहर के शेयर खरीद कर जिस तरह ब्रिटेन ने उस क्षेत्र में अपना दखल बढाया था वह उसे और भी नागवार लगा था। लेकिन ब्रिटेन को इसकी तनिक भी परवाह नहीं थी। फ्रांस उत्तरी अफ्रीका में पूरब से पश्चिम अपना साम्राज्य बनाना चाहता था जबकि ब्रिटेन अफ्रीका में उत्तर से दक्षिण अपना राज्य कायम करना चाहता था। सूडान पर दोनों साम्राज्यवादी भेड़ियों की नजर लगी हुई थी, ऐसे में दोनों के बीच तनाव बढ़ने लगा।

इजिप्ट पर आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात ब्रिटेन सूडान को अपने प्रभाव–क्षेत्र में समझने लगा और सूडान की तरफ हाथ–पाँव बढाने लगा। इसके प्रतिक्रियास्वरुप सूडान के स्वतन्त्रताप्रेमी कट्टर मुसलमानों ने अपने नेता मुहम्मद अहमद, जो खुद को 'महदी' बतलाता था, के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। महदी ने अपने को पैगम्बर घोषित करके सूडान के लोगों को धार्मिक तौर पर उत्तेजित कर दिया। इजिप्ट की सेना को पराजित कर महदी ने धार्मिक युद्ध की घोषणा कर दी। सूडान के लोगों ने महदी का साथ दिया। ब्रिटिश–इजिप्ट के सैनिकों को घेर लिया गया। ब्रिटेन ने इन सैनिकों को बचाने का निश्चय किया और इसी क्रम में जनरल गार्डेन को सूडान भेजने का निश्चय किया गया। अर्द्ध–सभ्य जातियों को प्रभावित करने में गार्डेन को महारत हांसिल थी। सबको यह विश्वास था कि जनरल गार्डेन सूडान में फंसे हुए सैनिकों को सुरक्षित वहां से निकाल लाएगा। लेकिन गार्डेन जब राजधानी खारतूम पहुंचा तो उसने अपने को महदी के धर्मान्ध और कट्टर अनुयाईयों से घिरा पाया। गार्डेन की उम्मीद के विपरीत स्थिति बहुत गंभीर थी। इंग्लैंड में गार्डेन अपनी वीरता, विलक्षणता और समझ में न आने वाले विपरीत आकर्षक और योग्य गुणों के लिए जनता में बहुत लोकप्रिय था। गार्डेन को अविलम्ब बचाए जाने की मांग उठने लगी। ब्रिटिश सरकार ने काफी विलम्ब के पश्चात् सितम्बर 1884 में एक अभियान दल भेजा। यह दल 18 जनवरी 1885 को खारतूम पहुँचा। लेकिन दो दिन पहले ही विद्रोहियों ने जनरल गार्डेन की ग्यारह हजार सैनिकों के साथ राजधानी खारतूम में हत्या कर दी गयी थी। इस वीभत्स हत्याकांड और सैनिक विफलता के लिए ब्रिटिश जनता ने अपने प्रधानमन्त्री ग्लैडस्टोन की अदूरदर्शी नीतियों को उत्तरदायी समझा और पूरे ब्रिटेन में उसका कड़ा विरोध होने लगा। अंततः जनमत को अपने विरुद्ध जाते देख कर प्रधानमन्त्री ग्लैडस्टोन को अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा। दस वर्षों तक सूडान को दरवेशों के हाथों में छोड़ दिया गया और सूडान की अनदेखी करने की कोशिश की गयी। अंततः अंग्रेजों ने सूडान के विद्रोह से निबटने के लिए लार्ड किचनर के नेतृत्व में एक सेना को सूडान भेज दिया। किचनर ने 2 सितम्बर 1898 ई. को ओमदुर्मन (Omdurman) के युद्ध में महदी के अनुयाईयों जिन्हें दरवेश कहा जाता था, को पराजित कर सूडान पर पुनः ब्रिटिश–इजिप्ट के शासन को स्थापित कर दिया।

इस समय साम्राज्यवादियों के बीच अफ्रीका के बंटवारे के सन्दर्भ में एक विचित्र तरीका चल पड़ा था जिसके अन्तर्गत जिस स्थान पर कोई यूरोपीय पहले पहुँच जाता था वह स्थान उस देश के अधिकार में मान लिया जाता था। 1898 ई. में ही कांगो की घाटी से एक फ्रेंच सेना कैप्टन मार्शा के नेतृत्व में ऊपरी नील नदी–घाटी में आगे बढ़ी। यह सेना जब एजिप्तियन सूडान में पहुँच कर फसोदा नामक गाँव पर अपना अधिकार जमाने लगी तो किचनर ने आगे बढकर मार्शा को वहाँ से हट जाने के लिए कहा और फसोदा में फहराए गए फ्रांसीसी झण्डे को उतारने का आदेश दिया। फ्रांस ने इसे अपना राष्ट्रीय अपमान माना। ऐसा लगा कि ब्रिटेन और फ्रांस के बीच बस अब युद्ध छिड़ने ही वाला है। लेकिन फ्रांसीसी

विदेश मन्त्री देल्काजे ने इस मौके पर सूझ–बूझ का परिचय देते हुए अपनी फ्रांसीसी सेना को वापस बुला लिया और इस तरह विकट परिस्थिति पर काबू पा लिया गया। अंततः 1899 ई. में एक समझौते के द्वारा फ्रांस ने इजिप्तियन सूडान पर ब्रिटेन का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। और वचन दिया कि वह इजिप्ट और सूडान में ब्रिटेन को मनमानी करने से नहीं रोकेगा जिसके बदले में ब्रिटेन फ्रांस को मोरक्को में छूट प्रदान करेगा। इस प्रकार भू–मध्य सागर से भू–मध्य रेखा तक नील नदी के प्रदेश में ब्रिटेन का अधिकार स्थापित हो गया। इस समझौते से फ्रांस ने एक तीर से दो निशाने साधे। पहला तो यह कि अपने चिर प्रतिद्वन्दी जर्मनी का कोप झेल रहे फ्रांस ने समझौते द्वारा ब्रिटेन को अपने दुश्मन के खेमे में जाने से रोक लिया। दूसरे फ्रांस अब अफ्रीका के उत्तरी एवं पश्चिमी भू–भागों में खुले रूप से अपना साम्राज्य विस्तार कर सकता था। इसी क्रम में उसने कांगो से लेकर अल्जीरिया तक अपना प्रभाव कायम कर लिया। इस प्रकार 1899 ई. में सूडान के प्रश्न पर ब्रिटेन और फ्रांस के बीच हुआ समझौता फ्रांस के लिए फायदेमन्द साबित हुआ। और इसी के साथ ब्रिटेन और फ्रांस के बीच का फसोदा–काण्ड समाप्त हो गया।

3.9 बोअर समस्या

अंग्रेजों ने 1815 ई. में केप ऑफ गुड गोप को हालैण्ड से हस्तगत कर वहां पर अपना शासन स्थापित कर लिया। यहाँ के डच निवासियों ने केप पर अंग्रेजी आधिपत्य का विरोध किया। अंग्रेज इन्हें 'बोअर' कहा कहते थे। सरल लेकिन स्वाभिमानी प्रकृति वाले बोअर उत्तरी अफ्रीका चले आए और जंगलों को साफ कर दो नए स्वतन्त्र उपनिवेश नेटाल और आरेंज बसा लिए। लेकिन अंग्रेजों की नजर इन नए क्षेत्रों पर भी पड़ी और उन्होंने हमला कर 1841 ई. में इस पर भी अधिकार कर लिया। दर–बदर हुए बोअरों ने फिर एक नयी जगह ट्रांसवाल में अब अपना ठिकाना बनाया। इसी बीच अंग्रेजों ने 1852 ई. में बोअरों के साथ एक सन्धि कर 'आरेंज' क्षेत्र को बोअरों को वापस लौटा दिया। लेकिन 1877 ई. में जब बेंजामिन डिजरायली इंग्लैंड का प्रधानमन्त्री बना तो ब्रिटेन ने ट्रांसवाल पर पुनः हमला कर दिया। बोअर लोगों ने अंग्रेजी आक्रमण का कड़ा प्रतिवाद किया और 1881 ई. में मजूवा हिल की लड़ाई में अंग्रेजी सेना को पराजित कर दिया। दोनों पक्षों के बीच संघर्ष चलता ही रहा। 1884 ई. में ग्लैडस्टोन की उदारवादी सरकार ने बोअरों से संधि कर युद्ध को स्थगित कर दिया और ट्रांसवाल की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली।

इसी बीच 1886 ई. में अंग्रेजों को यह जानकारी मिली कि ट्रांसवाल के रैंड क्षेत्र में हीरे और सोने की अनेक खानें हैं। अब ब्रिटिश लोग झुण्ड के झुण्ड ट्रांसवाल जा कर वहाँ की खानों में अपनी पूँजी लगाने लगे। शीघ्र ही यहाँ पर विदेशियों की संख्या बोअरों से अधिक हो गयी जो ट्रांसवाल पर अंग्रेजी सत्ता स्थापित करने का प्रयास करने लगे। यही नहीं विदेशी लोगों ने अब बोअर सरकार के निर्माण में अपने मताधिकार की मांग की। इन विदेशियों में सबसे प्रमुख सेसिल रोड्स था। उसके पास पहले से ही सोने और हीरे की कई खानें थीं। शीघ्र ही वह दक्षिण अफ्रीका का प्रमुख राजनीतिज्ञ और उग्र ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रधान प्रतिपादक बन गया। उसने 1889 ई. में 'ब्रिटिश साउथ अफ्रीका कम्पनी' बनाया और कुछ ही दिनों में उस समस्त क्षेत्र पर अधिकार कर लिया जो उसके नाम से रोडेशिया (वर्तमान जिम्बाब्वे) के नाम से जाना गया। रोड्स 1890 से 1896 ई. तक केप कालोनी का प्रधानमन्त्री रहा। इस काल में उसने ब्रिटिश उपनिवेश मन्त्री

जोजेफ चेम्बरलेन से सांठ–गांठ कर ट्रांसवाल और आरेंज फ्री स्टेट को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल करने के उद्देश्य से युद्ध छेडने का प्रयत्न करने लगा। इसी क्रम में 1895 ई. उसने ट्रांसवाल पर आक्रमण कर दिया। लेकिन बोअर लोगों ने वीरतापूर्वक सामना करते हुए उसे पराजित कर दिया। इस घटना से ट्रांसवाल और ब्रिटेन के बीच तनाव बढ़ा। यह ट्रांसवाल के लिए यह खतरे की घंटी थी। इसे भांपते हुए ट्रांसवाल के राष्ट्रपति पॉल क्रूगर ने विदेशियों खासकर अंग्रेजों के ट्रांसवाल आगमन का विरोध किया। अंततः मताधिकार के मुद्दे को लेकर ही 1899 ई. में ब्रिटेन ने ट्रांसवाल और आरेंज फ्री स्टेट के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। आरम्भ में जनरल बोथा और जनरल वेट के नेतृत्व में बोअर लोगों को अच्छी सफलता मिली। लेकिन कहाँ संसाधनविहीन बोअर लोग और कहाँ साम्राज्यवादी ब्रिटेन। बोअर कहाँ तक और कब तक उनके आगे टिकते, फिर भी उन्होंने ब्रिटेन को कड़ी टक्कर दी। ब्रिटेन ने आस्ट्रेलिया, कनाडा और न्यूजीलैंड और खुद अपने यहाँ स्वयंसेवकों की भारती कर के साढ़े तीन लाख की सेना लार्ड रोबर्ट्स और लार्ड किचनर के नेतृत्व में भेजी। इस सेना ने बोअरों को 1902 ई. में पराजित किया। मई 1902 ई. की विरीनिगिंग की संधि के द्वारा बोअर लोगों ने डच भाषा की सुरक्षा और स्वशासन की शर्तों पर हथियार डाल दिए। ट्रांसवाल और आरेंज फ्री स्टेट अब ब्रिटिश साम्राज्य के अंग बन गए। फिर भी बोअर लोगों का आक्रोश बना रहा। इसे देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने 1906 ई. में उन्हें उत्तरदायी स्वशासन प्रदान कर दिया। अंततः 1909 ई. में केप कोलोनी, नेटाल और इन दोनों प्रदेशों को मिला कर कनाडा के आदर्श पर उनकी एक यूनियन (न्दपवद वि ैवनजी ।तिपब) बना कर उसे डोमिनियन का दर्जा दे कर वास्तविक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। बोअर युद्ध ने जर्मनी को ब्रिटेन का शत्रु बना दिया। अब ब्रिटेन ने अपनी शानदार तटस्थता की नीति का परित्याग करते हुए, अपने पक्ष में वैश्विक गोलबन्दी करना शुरू कर दिया। इसी क्रम में ब्रिटेन ने 1902 ई. में जापान से और 1904 ई. में फ्रांस से संधि कर लिया। नेपथ्य में प्रथम विश्वयुद्ध की तैयारियों में यूरोपीय महाशक्तियाँ जुट गयीं थीं।

इस प्रकार थोड़े ही दिनों में अफ्रीका यूरोपीय महाशक्तियों के बंदरबांट का शिकार बन गया। अफ्रीका के बँटवारे के सन्दर्भ में एक खास बात यह दिखायी पड़ी कि इन यूरोपीय महाशक्तियों को किसी विशेष प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा। इन्होंने बड़ी आसानी से लगभग पूरे अफ्रीका पर कब्जा कर लिया। बिना किसी विशेष युद्ध और रक्तपात के विश्व की सबसे भयावह लूट–खसोट सम्पन्न हो गयी। सहारा मरुस्थल के दक्षिण में विशाल भू–खण्ड पर लाईबेरिया एवं इथोपिया को छोड़ कर सभी अफ्रीकी क्षेत्र यूरोपीय उपनिवेश बन गए। उत्तर अफ्रीकी तट पर पश्चिम में मोरक्को, मध्यवर्ती भाग में लीबिया और पूर्व में इजिप्ट महाशक्तियों की प्रतिद्वंदिता की धुरी बने रहे। मोरक्को को लेकर 1905 ई. में फ्रांस और जर्मनी आमने–सामने आ गए। 1911 ई. में इटली ने लीबिया पर अधिकार कर लिया। अफ्रीका को लेकर यूरोपीय महाशक्तियों की महत्वाकांक्षा की वजह से कई किस्म के अंतरराष्ट्रीय संकट पैदा हुए और दुनिया पहले विश्वयुद्ध की तरफ तेजी से बढ़ चली।

3.10 अबीसीनिया का समस्या

अबीसीनिया ऐसा अफ्रीकी देश था जिसने पहली बार यह दिखाया कि एकजुट हो कर साम्राज्यवादी शक्तियों को पराजित किया जा सकता है। इटली ने 1896 ई. में उसे हड़पने के उद्देश्य से जब हमला किया तो अबीसीनिया के सामने

उसे मुँह की खानी पड़ी और उसका मंसूबा पूरा न हो सका। उन्नीसवीं सदी से अबीसीनिया पाने की लालसा संजोये इटली बीसवीं सदी में भी इसके लिए प्रयास करता रहा। इटली ने अफ्रीका में उपनिवेश स्थापन के क्रम में इरिट्रिया, सोमालीलैंड और लीबिया पर अपना कब्जा जमा लिया था। अब इटली की सोच यह थी कि यदि अबीसीनिया भी इस साम्राज्य में शामिल कर लिया जाय तो अफ्रीका में उसका भी एक विशाल साम्राज्य हो जायेगा। क्षेत्रफल की दृष्टि से अबीसीनिया एक बड़ा देश था। 1127127 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैला हुआ यह क्षेत्र कच्चे माल की दृष्टि से सम्पन्न था। इसके अतिरिक्त यह इटली के लिए बाजार की दृष्टि से भी एक मुफीद जगह हो सकती थी। अडोवा की पराजय इटली को हमेशा सालती रहती थी और वह अतीत के अपने इस कलंक को धोना चाहता था।

1915 ई. में इटली मित्र राष्ट्रों की तरफ से पहले विश्व युद्ध में शामिल हुआ। युद्ध समाप्त होने पर 1919 ई. में पेरिस की संधियों में इटली विजेता देशों की पंक्ति में बैठा और उसके प्रधानमन्त्री ओरलैंडो संधि में शामिल होने वाले प्रमुख नेताओं में से एक थे। लेकिन विजेता देश होने के बावजूद इटली वह प्राप्त नहीं कर सका जो ब्रिटेन और फ्रांस जैसे विजेता देशों को सहज ही मिल गया था। इटली अपनी उपेक्षा से आहत था और इसके लिए अपनी निर्बलता को उत्तरदायी समझता था। इन्हीं परिस्थियों में मुसोलिनी के नेतृत्व में इटली में फांसीवादी शासन की स्थापना हुई। तानाशाह मुसोलिनी इटली को वैश्विक रंगमंच पर एक सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए कृत संकल्प था और अपने उद्देश्य की प्राप्ति में वह जोरो–शोर से जुट गया। प्रारम्भ में ब्रिटेन और फ्रांस जैसे देशों ने उसके प्रति तुष्टिकरण की नीति अपना कर उसे खुश रखने का प्रयास किया। इसी क्रम में अबीसीनिया इटली का शिकार बना जिसमें कहीं न कहीं ब्रिटेन और फ्रांस की मूक सहमति थी।

अबीसीनिया पर आक्रमण की तैयारियाँ इटली पहले से ही कर रहा था। इसी क्रम में 1925 ई. में इटली ने इंग्लैंड से एक समझौता कर के अबीसीनिया में सुविधाएँ प्राप्त करने की अनुमति ले ली थी। स्वाभाविक रूप से अबीसीनिया इस समाचार से सशंकित हुआ। इसी के मद्देनजर अबीसीनिया ने राष्ट्र–संघ में इसकी शिकायत की। अबीसीनिया की आशंका के निवारण के लिए मुसोलिनी ने 1928 ई. में अबीसीनिया से से 'चिरकालिक मित्रता और मध्यस्थता की सन्धि' कर ली। संधि के अनुसार इटली ने अबीसीनिया से यह वादा किया था कि वह उसकी स्वतन्त्रता और प्रादेशिक अखंडता का अतिक्रमण नहीं करेगा। लेकिन मुसोलिनी की महत्वाकांक्षाओं से परिचित अबीसीनिया का सम्राट हेल सलासी इस संधि से सशंकित हुआ और इटली को किसी प्रकार की सुविधाएँ देने से बराबर बचता रहा। मुसोलिनी आखिर यह कब तक बर्दाश्त करता। इसी समय 1931 ई. में जापान ने मंचूरिया पर हमला कर राष्ट्र संघ की निर्बलता को उजागर कर दिया। इससे मुसोलिनी का हौसला बढ़ा। अंततः मुसोलिनी ने बल प्रयोग का निश्चय किया और बड़ी चालाकी से अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों को अपने अनुकूल देख कर पूर्वी अफ्रीका में अपनी सेना भेज कर हमले की तैयारियों में जुट गया। मार्शल डी. बोनो के अनुसार हमले के दो वर्ष पहले यानी 1932 ई. में ही मुसोलिनी ने अबीसीनिया को हड़पने की रूपरेखा तैयार कर लिया था।

अबीसीनिया पर इटली के आक्रमण के कई कारण थे।

(1) इटली का एक राष्ट्र के रूप में गठन बहुत बाद में होने के कारण वह साम्राज्यवाद की दौड़ में पीछे रह गया था। जब वह उपनिवेश स्थापना के लिए सन्नद्ध हुआ, अबीसीनिया ही ऐसा क्षेत्र बच गया था जहाँ पर अपना साम्राज्यवादी प्रसार कर सकता था।

(2) मुसोलिनी एक तानाशाह के रूप में जो प्रतिष्ठा अर्जित करना चाहता था वह अबीसीनिया को जीत कर उसे हासिल हो सकता था।

(3) इटली अफ्रीका में अपना विशाल साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। इरिट्रिया, सोमालीलैंड और लीबिया में पहले से ही वह काबिज था। अबीसीनिया को जीत कर वह अपने साम्राज्य को विस्तृत कर सकता था।

(4) महान आर्थिक मंदी के कारण इटली की आर्थिक स्थिति खराब हो गयी थी। देश में करीब ढाई लाख लोग बेकार हो गए थे।

(5) अबीसीनिया खनिज पदार्थों की दृष्टि से काफी समृद्ध था। इटली के कारखानों के लिए यहाँ से पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल मिल सकता था।

(6) जनसँख्या घनत्व की दृष्टि से इटली एक सघन देश था। बढती हुई आबादी के लिए उसे नए क्षेत्र की जरूरत थी। अबीसीनिया इसके लिए उपयुक्त क्षेत्र साबित हो सकता था।

अबीसीनिया पर हमला करने के पहले इटली ब्रिटेन और फरांस का समर्थन प्राप्त करना चाहता था ताकि इन महाशक्तियों की तरफ से कोई अवरोध खड़ा न किया जा सके। मुसोलिनी का मानना था कि जर्मनी में हिटलर का खतरा ऐसा कारक था जिसका डर दिखा कर यह संभव हो सकता था। 1935 ई. में जब हिटलर ने खुलेआम वार्साई संधि की धाराओं को तोडना शुरू किया तब इटली, फ्रान्स और ब्रिटेन के प्रतिनिधि स्ट्रेसा नामक स्थान पर मिले और एक समझौता किया जिसके अनुसार हिटलर के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा कायम किया गया। इस समय ब्रिटेन के प्रतिद्वंदी जोरो–शोर से अपनी शक्ति बढ़ाने में लगे हुए थे। अबीसीनिया को ले कर ब्रिटेन इटली से उलझना नहीं चाहता था। दूसरी तरफ फरांस इस बात से आशंकित था कि यदि इटली अबीसीनिया से पराजित हुआ तो यूरोप में उसकी स्थिति पर असर पड़ सकता है। फ्रांसीसियों के लिए इटली की हार का अभिप्राय था उसकी सहानुभूति हमेशा के लिए खो देना। ऐसी स्थिति में फरांसीसी विदेश मंत्री लावाल ब्रिटिश विदेश सचिव सैम्युअल होर के साथ एक ऐसा समझौता कर लेना चाहता था जिसमें इटली को किसी खास कठिनाई का सामना न करना पड़े। लावाल ने मुसोलिनी को इस आशय का आश्वासन भी दे दिया। इसी क्रम में दिसंबर 1935 ई. में फरांस के विदेश मंत्री लावाल तथा इंग्लैंड के विदेश मंत्री सेम्युअल होर के बीच पेरिस में कुख्यात 'होर–लावाल समझौता' सम्पन्न हुआ जिसके अनुसार यह निर्णय हुआ कि इटली को अबीसीनिया का पूर्वी प्रदेश तथा इरिट्रिया और सोमालीलैंड की सीमाओं के पास के कुछ प्रदेश दे दिए जायँ और दक्षिणी अबीसीनिया में एक क्षेत्र इतालियनों के बसने और आर्थिक विस्तार के लिए रखा जाय। अबीसीनिया को लाल सागर पर एक बंदरगाह दिया जाय ताकि उसे समुद्र तट पर पर एक निकास स्थान प्राप्त हो सके। यह समझौता न केवल अबीसीनिया अपितु राष्ट्र–संघ के आदर्शों के प्रति भी एक महान विश्वासघात था। पहले इस योजना को गोपनीय रखने की कोशिश की गयी लेकिन लावास ने इस योजना का खुलासा फ्रांसीसी अखबारों में कर दिया। ब्रिटिश जनता में सैम्युअल होर के प्रति व्यापक रोष फैल गया। ब्रिटिश जनता को यह लगा कि उनकी सरकार ने ब्रिटिश अबीसीनिया और राष्ट्र–संघ के आदर्शों के प्रति विश्वासघात किया है और उसका मकसद कुल मिला कर मुसोलिनी को सहायता पहुँचाना है। ब्रिटिश जनता ने इस योजना का कड़ा विरोध किया। होर को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा। एन्थोनी इडन ब्रिटेन के नए विदेश मंत्री बने। और यह योजना

समाप्त हो गयी। अपने लिए विनाशकारी इस समझौते को अबीसीनिया भला कैसे स्वीकार करता। अंततः अबीसीनिया ने इस समझौते को मानने से इनकार कर दिया।

राष्ट्र–संघ ने इटली को आक्रामक घोषित करते हुए अपने संविधान की सोलहवीं धारा के अनुसार उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिए। सदस्यों देशों को इटली से सभी तरह के आर्थिक सम्बन्ध समाप्त कर लेने के लिए कहा गया। इस प्रतिबन्ध से इटली को शुरू में दिक्कतें होने लगीं। अगर इस प्रतिबन्ध का कड़ाई से पालन किया जाता तो इटली को झुकना ही पड़ता। लेकिन ब्रिटेन और फ्रांस का वरदहस्त प्राप्त कर इटली ने इस प्रतिबन्ध का सामना सफलतापूर्वक किया। दरअसल मुसोलिनी ने जनवरी 1935 में इंग्लैंड को यह आश्वासन दे कर कि अबीसीनिया में इटली के पहुँचने से ब्रिटिश हितों को कोई नुकसान नहीं होगा, इंग्लैंड का समर्थन प्राप्त कर लिया। इंग्लैंड चाहता तो स्वेज नहर का रास्ता रोक कर इटली के लिए मुसीबत कड़ी कर सकता था। लेकिन इंग्लैंड ने दोहरी नीति का परिचय देते हुए अबीसीनिया का पक्ष लेते हुए भी उसकी कोई मदद नहीं की। यही नहीं उसने अबीसीनिया को अपनी रक्षा के लिए हथियार भी प्राप्त नहीं होने दिया। अंतरराष्ट्रीय स्थिति को देखते हुए अमरीकी कांग्रेस ने अगस्त 1935 में अनेक 'तटस्थता नियम' पारित किये जिसके अनुसार युद्धरत देशों को अमरीकी हथियार मिलने बंद हो गए। इस कानून से इटली को तो कोई नुकसान नहीं हुआ लेकिन शक्तिहीन अबीसीनिया को अमरीकी अस्त्र–शस्त्र मिलना बंद हो गया। हर तरह से अबीसीनिया अकेला पड़ गया। इटली की सबसे बड़ी दिक्कत तेल को लेकर थी। मुसोलिनी ने इस मामले पर धौंस देकर अपना काम निकाल लिया। उसने यह खुलेआम धमकी दे डाली कि अगर तेल का प्रतिबन्ध उस पर लगाया गया तो युद्ध छिड़ जाएगा। हालांकि इंग्लैंड, फ्रांस और अन्य राज्यों से अकेले लड़ पाना इटली के बूते के बाहर था लेकिन उसकी धौंस काम कर गयी और उस पर तेल का प्रतिबन्ध लागू नहीं किया जा सका। दूसरी तरफ इटली को जर्मनी से युद्ध सामग्री बराबर प्राप्त होती रहीं। अपनी तैयारी पूरी करने के पश्चात् इटली ने मई 1936 ई. में अबीसीनिया की राजधानी अदिस अबाबा पर हमला कर उस पर अधिकार कर लिया। इस हमले में इटली ने अंतरराष्ट्रीय युद्ध नियमों की जम कर धज्जी उडाई। अपने विमानों से इटली ने अबीसीनिया पर उन वर्जित विषाक्त गैसों और गोलों को गिराया जो युद्ध नियमों के अनुसार निषिद्ध थे। असहाय अबीसीनिया की सेना हर जगह पराजित होने लगी। 2 मई 1936 को अबीसीनिया के सम्राट हेल सलासी को भाग कर इंग्लैंड में शरण लेनी पड़ी। 6 मई 1936 को अबीसीनिया को इटली में शामिल कर लिया गया। अबीसीनिया, इरिट्रिया और सोमालीलैंड को मिला कर इटालियन पूर्वी अफ्रीका के साम्राज्य का गठन कर दिया गया।

अबीसीनिया के सम्राट हेल सेलेसी ने जेरुसलम से राष्ट्र–संघ सचिव को एक टेलीग्राम भेज कर यह सूचित किया कि 'अबीसीनियावासियों को सर्वनाश से बचाने के लिए मैं राजधानी छोड़ चुका हूँ।' सम्राट ने राष्ट्र–संघ से अपील की कि वह अबीसीनिया की विजय को मान्यता न दे और राष्ट्र–संघ विधान की मर्यादा को कायम रखने के लिए अभी भी अपने प्रयास करे। 11 मई 1936 को अबीसीनिया के मुद्दे पर बात करने के लिए राष्ट्र संघ के कौंसिल की बैठक बुलाई गयी। बैठक में इटली के प्रतिनिधियों ने अबीसीनिया की उपस्थिति पर अपनी आपत्ति दर्ज की। अबीसीनिया ने राष्ट्र संघ के विधान की सोलहवीं धारा के अनुसार कारवाई करने की मांग की। कौंसिल कोई भी कदम उठाने में खुद को लाचार पा रही थी अतः

उसने सारा विवाद असेम्बली के जिम्मे सौंप दिया। पश्चिमी देश अबीसीनिया के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए उत्सुक नहीं थे।

राष्ट्र संघ असेम्बली की बैठक 30 जून 1936 को आहूत की गयी। सम्राट सिलेसी खुद अपने देश का प्रतिनिधित्व करने पहुंचा। सेलेसी ने असेम्बली में एक जोरदार भाषण दिया लेकिन सोवियत संघ को छोड़ कर किसी ने भी अबीसीनिया का साथ नहीं दिया। अबीसीनिया की सभी मांगों को अस्वीकृत कर इटली पर से पाबंदी हटा दी गयी। अबीसीनिया को उसके भाग्य–भरोसे छोड़ दिया गया। राष्ट्र संघ में अबीसीनिया को प्रतिनिधित्व प्रदान किये जाने के मुद्दे को लेकर इटली ने राष्ट्र संघ का बहिष्कार कर दिया। राष्ट्र संघ के महासचिव एवेनोल मुसोलिनी से क्षमा माँगने रोम गए। इसके पश्चात ब्रिटेन और फ्रांस के प्रयासों से अबीसीनिया को राष्ट्र संघ से निकाल दिया गया। नवम्बर 1938 में ब्रिटेन और फ्रांस ने अबीसीनिया पर इटली के कब्जे को अपनी मान्यता प्रदान कर दिया। इसके केवल उन्नीस महीने बाद ही इटली ने इन दोनों देशों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर इस मान्यता का समुचित जवाब भी दे दिया।

3.11 अबीसीनिया विजय के परिणाम

अबीसीनिया की समस्या दोनों विश्व युद्धों के बीच की ऐसी महत्वपूर्ण घटना थी जिसने पूरे विश्व को कई स्तरों पर गहरे तौर पर प्रभावित किया। इस समस्या को सुलझाने में राष्ट्र संघ पूरी तरह अक्षम नजर आया। हालांकि संघ बहुत दिनों तक इस मसले के समाधान की कोशिशें करता रहा और इसी क्रम में उसने इटली पर अपने विधान की धारा सोलह के अंतर्गत आर्थिक प्रतिबन्ध भी लगाए लेकिन ब्रिटेन और फ्रांस जैसे शक्तिशाली देशों के आगे यह प्रतिबन्ध बेअसर साबित हुआ। तेल के प्रतिबन्ध को लेकर तो इटली ने युद्ध तक की धमकी दे डाली। युद्ध की उसकी धौंस काम कर गयी और यह प्रतिबन्ध पूरी तरह धराशायी हो गया। इटली ने किसी की परवाह न करते हुए अबीसीनिया पर निर्लज्जतापूर्ण आक्रमण करके उसे अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया। प्रोफेसर गेथोर्न हार्डी के अनुसार इस घटना से प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अंतरराष्ट्रीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ आरम्भ होता है। अबीसीनिया पर इटली की विजय से राष्ट्र संघ को सांघातिक चोट लगी जिससे वह आगे कभी भी संभल नहीं पाया। छोटे–छोटे देश जो राष्ट्र संघ और सामूहिक सुरक्षा के सिद्धांत पर आश्रित थे, उनका विश्वास हमेशा के लिए राष्ट्र संघ पर से उठ गया। प्रकारांतर से यह अबीसीनिया की नहीं बल्कि राष्ट्र संघ की हत्या थी।

अबीसीनिया घटना ने जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत को चरितार्थ कर दिया। इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी ने जब जैसा और जो चाहा किया। छोटे और अशक्त देश इन महाशक्तियों के प्रति आशंकित हो गए। जबकि वैश्विक रंगमंच पर अराजकता और आक्रामक प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला।

अबीसीनिया युद्ध के समय और उसके पूर्व इटली के प्रति बड़े देशों के दब्बू रुख को देख कर हिटलर को प्रोत्साहन मिला और उसने वार्साई संधि की शर्तों को मानने से इनकार कर दिया। संधि की कुछ शर्तों को हिटलर पहले भी अस्वीकृत कर चुका था। अन्तरराष्ट्रीय अराजकता का लाभ उठा कर हिटलर ने मार्च 1938 में अपनी एक सेना भेज कर राइनलैंड क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार लोकार्नो संधियों के अंत का आरम्भ हो गया।

अबीसीनिया की घटना ने दोनों तानाशाहों हिटलर और मुसोलिनी को एक दूसरे के काफी करीब ला दिया। युद्ध के समय हिटलर ने मुसोलिनी का पक्ष लेकर उसका समर्थन प्राप्त कर किया। इसी क्रम में 25 अक्टूबर 1936 को दोनों देशों के बीच एक समझौता हो गया जिससे 'रोम–बर्लिन धुरी' नामक गठबंधन बन गया। संधि के अनुसार जर्मनी ने अबीसीनिया पर इटली के अधिकार को जर्मनी ने स्वीकार कर लिया। फांसीवाद और नाजीवाद का गठबंधन कायम हो गया। इससे विश्व में अधिनायकवादी शक्तियों को प्रोत्साहन मिला और वे एकजुट और मजबूत हुईं। और इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध की वह बुनियाद पड़ी जो आगे चल कर दुनिया के लिए भयावह साबित हुई।

3.12 सारांश

आपने इस इकाई में पढ़ा कि किस तरह यूरोप की साम्राज्यवादी ताकतों ने अफ्रीकी महाद्वीप को अपने लूट–खसोट का केन्द्र बना लिया। और मात्र पच्चीस वर्षों के भीतर ही उसका बंटवारा कर उसके विभिन्न हिस्सों पर अधिकार कर लिया। इसी क्रम में आपने फसोदा काण्ड और बोअर समस्या के बारे में भी जानकारी प्राप्त की जिसकी वजह से यूरोपीय महाशक्तियों के बीच आपसी तनाव बढ़ा और टकराव की स्थितियां पैदा हो गयीं। आपने यह भी पढ़ा कि किस तरह इटली के तानाशाह शासक मुसोलिनी की आक्रामक प्रवित्तियों का शिकार अबीसीनिया जैसे देश को बनना पड़ा और दुनिया के सारे देश खामोश हो कर केवल तमाशा देखते रहे। इससे तानाशाही शक्तियों को न केवल बढ़ावा मिला बल्कि वे एकजुट हो कर पूरी दुनिया पर अपने आधिपत्य के लिए सन्नद्ध हो गये जिससे पूरी दुनिया दूसरे विश्व–विश्व युद्ध की तरफ बढ़ चली।

3.13 बोध प्रश्न

(1) अबीसीनिया पर इटली के हमले के समय वहां का सम्राट कौन था?

(अ) हेल सेलेसी (ब) सैम्युअल होर

(स) लावाल (द) इनमें से कोई नहीं

(2) अबीसीनिया को किस समय इटली के संघ में शामिल कर लिया गया?

(अ) मई 1935 (ब) मई 1936

(स) दिसंबर 1936 (द) मार्च 1937

(3) फसोदा संकट में किन दो यूरोपीय महाशक्तियों के बीच टकराहट की आशंका उठ खड़ी हुई?

(अ) इटली–इंग्लैंड (ब) इटली–फरांस

(स) इटली–जर्मनी (द) ब्रिटेन–फरांस

(4) फसोदा संकट पर एक टिपण्णी लिखिए?

(5) उन कारणों पर प्रकाश डालिए जिनके चलते मुसोलिनी ने अबीसीनिया पर हमला करने का निश्चय किया?

3.14 कठिन शब्दावली

अबीसीनिया — अफ्रीका का एक देश जिसे आजकल इथियोपिया के नाम से जाना जाता है।

गोल्ड — कोस्टरू अफ्रीका का ही एक देश जिसे आजकल घाना के नाम से जाना जाता है।

राष्ट्र संघ — प्रथम विश्व–युद्ध के पश्चात पेरिस की संधियाँ की गयीं। इसी के अंतर्गत हुई वार्साई की संधि में राष्ट्र संघ (स्मंहनम वि छंजपवदे) का प्रावधान किया गया। राष्ट्र संघ की स्थापना 1919 ई. में अंतरराष्ट्रीय सद्भाव में वृद्धि करने, मानव को युद्ध की विभीषिका से बचाने तथा विश्व में शान्ति बनाए रखने के उद्देश्य से किया गया था।

फांसीवाद — फासीवाद इटली की राष्ट्रीय आकांक्षाओं का वह आक्रामक आह्वान था जिसका विकास मुसोलिनी के नेतृत्व में हुआ।

नात्सीवाद — नात्सीवाद फासिज्म का अधिक नस्लवादी और अधिक गतिमान संस्करण है। इसका विकास जर्मनी में हिटलर के नेतृत्व में हुआ।

3.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1). अ, (2). ब (3).

3.16 उपयोगी पुस्तकें

- Carr, E- H- : International Relation Between Two World Wars; The Twenty Year Crisis (1919-1939)
- Finaer H : Mussolini's Italy
- Hains & Hoffman : Origin And Background Of The Second World War
- King : History Of Italian Unity
- King & Okey : Italy Today
- Orsi, P : Modern Italy
- Salvemini, G : Under The Age of Facism
- Steer : Caesar in Abyssinia
- Wallace : Greater Italy

इकाई–4 सुदूर पूर्व और मंचूरिया संकट

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 सुदूर पूर्व

4.3 प्रथम आंग्ल–चीनी युद्ध या प्रथम अफीम युद्ध

4.4 नानकिंग की संधि

4.5 नानकिंग की संधि के परिणाम

4.6 द्वितीय आंग्ल–चीनी युद्ध या द्वितीय अफीम युद्ध

4.7 पीकिंग की सन्धि (1860 ई.)

4.8 बॉक्सर आन्दोलन

4.9 बॉक्सर आन्दोलन के कारण

4.10 बॉक्सर आन्दोलन रू घटनाक्रम

4.11 बॉक्सर आन्दोलन के परिणाम

4.12 बॉक्सर आन्दोलन की असफलता के कारण

4.13 जापान

4.14 चीन–जापान युद्ध के कारण

4.15 शिमोनोसेकी की सन्धि

4.16 जापान की विजय के परिणाम

4.17 चीन–जापान युद्ध के परिणाम

4.18 मंचूरिया संकट

4.19 मंचूरिया संकट का महत्व

4.20 रूस–जापान युद्ध

4.21 युद्ध के कारण

4.22 पोर्ट्समाउथ की सन्धि

4.23 रूस–जापान युद्ध के परिणाम और महत्त्व

4.24 सारांश

4.25 बोध प्रश्न

4.26 कठिन शब्दावली

4.27 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.28 आवश्यक पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि

- सुदूर पूर्व क्या है?
- ब्रिटेन और चीन के बीच अफीम युद्ध किस कारण से हुए और इसके क्या परिणाम निकले?
- बॉक्सर आन्दोलन क्या है, यह क्यों हुआ और इसके क्या परिणाम निकले?
- चीन–जापान के बीच युद्ध क्यों हुआ और जापानी विजय के क्या परिणाम निकले?
- मंचूरिया संकट से क्या अभिप्राय है? इस काण्ड का क्या महत्त्व है?
- रूस–जापान युद्ध क्यों हुआ? इसके क्या परिणाम निकले और इसका क्या महत्त्व है?

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप यह पढेंगे कि पश्चिमी शक्तियों के लिए सुदूर–पूर्व का क्षेत्र किस तरह जल्द ही एक औपनिवेशिक अखाड़ा बन गया था। इसी क्रम में ब्रिटेन ने चीन में हस्तक्षेप किया। चीनियों के प्रतिरोध के पश्चात ब्रिटेन और चीन के बीच दो अफीम युद्ध हुए जिनमें चीन को यद्यपि पराजय का स्वाद चखना पड़ा फिर भी यह इस मायने में अर्थपूर्ण था की चीन के कमजोर राजवंश मांचू राजवंश की नींव हिल गयी और वहां पर 1911 ई. के चीनी क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार हुई। पाश्चात्य शक्तियों के मंसूबे को तब और कडा झटका लगा जब चीनी देशभक्तों ने बॉक्सर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। अप्रत्याशित हमले से विदेशी शक्तियाँ बुरी तरह भयभीत हो गयीं और उनके बीच इस बात पर सहमति बन गयी कि अफ्रीका की तर्ज पर चीन को वे आपस में नहीं बाँट सकते इसलिए मिलजुल कर उन्होंने चीन का शोषण आरम्भ किया। इसी इकाई में हम यह भी जानेंगे कि एशिया का ही एक छोटा सा देश जापान अब अपनी पुरातनता को छोड़ कर आधुनिकता की राह पर आगे बढ़ चला और पश्चिमी तकनीक का प्रयोग करते हुए इतनी अधिक उन्नति कर लिया कि अपने से कई गुना बड़े दैत्याकार देश चीन और आगे चलकर रूस को पराजित कर दिया। इससे रूस के एशियाई साम्राज्यवाद की नीति को कड़ा झटका लगा और एशिया में उसके विस्तार का क्रम प्रायः थम ही गया।

4.2 सुदूर पूर्व

ऐतिहासिक शब्दावली में एशिया के पूर्वी भाग को सुदूर पूर्व कहा जाता है। इसमें वे क्षेत्र शामिल है जो ग्रीनविच के नब्बे अंश देशान्तर पूर्व में है। इसमें पूर्वी साईबेरिया, कोरिया, चीन और उसके सीमावर्ती क्षेत्र जैसे– मंचूरिया, मंगोलिया, सिक्यांग या चीनी तुर्किस्तान और तिब्बत, और दक्षिण में म्यामार (बर्मा), थाईलैंड, हिन्द–चीन, मलय द्वीप, जापान, फिलिपीन्स और इंडोनेशिया का प्रदेश शामिल किया जाता है। जिस समय के इतिहास का अध्ययन हम इस इकाई में करने जा रहे हैं उस समय पश्चिमी शक्तियों के लिए यह सुदूर पूर्व नाम सार्थक था। जब हवाई जहाज का आविष्कार नहीं हुआ था और दूर–दराज के क्षेत्रों में आवागमन के लिए पानी के जहाज प्रयुक्त किये जाते थे, उस समय इन पश्चिमी शक्तियों को अफ्रीका का पूरा लंबा चक्कर काट कर हिन्द महासागर में भारत और लंका से होते हुए एशिया के पूर्वी भाग की यात्रा करनी पड़ती थी। इसी वजह से चीन और उसके आस–पास का क्षेत्र इनके लिए सुदूर पूर्व था। नवीनतम तकनीक की खोजों के बाद अब इन पाश्चात्य शक्तियों के लिए यह क्षेत्र न तो पूर्व में है न ही सुदूर। फिर भी इस भाग के लिए उस समय गढ़ा गया यह शब्द आज भी ज्यों का त्यों प्रचलन में है। तमाम नजदीकियों के बावजूद यह क्षेत्र आज भी एक तरह से पृथक और बौद्धिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से रहस्यमय जगत बना हुआ है।

अफीम युद्ध की पृष्ठभूमि

अफ्रीका के विभाजन के पहले ही साम्राज्यवादी देशों की नजर एशिया पर पड़ गयी थी। लेकिन एशिया की स्थिति अफ्रीका से बिलकुल भिन्न थी। अफ्रीका की तरह का बँटवारा यहाँ पर संभव नहीं था। 1857 के संग्राम के समय भारतीयों के जबरदस्त प्रतिरोध और बाक्सर आन्दोलन के समय विदेशियों एवं उनके समर्थक देशी लोगों पर चीनी विद्रोहियों के भयावह आक्रमण से साम्राज्यवादी शक्तियां यह भलीभांति समझ चुकी थीं कि एशिया को आपस में विभाजित कर पाना संभव ही नहीं है। बाद में जापान के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया और उसके चलते उसके अन्दर पैदा हुए उग्र साम्राज्यवादी ललक ने पश्चिमी देशों को सहमा कर रख दिया। भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप से भी एशिया अफ्रीका से बहुत अलग दिखाई पड़ता है। एक तो एशिया महाद्वीप अफ्रीका की तुलना में बहुत बड़ा है दूसरे यह विश्व के अनेक प्राचीनतम धर्मों और सभ्यताओं का उद्‌गम स्थल भी रहा है, ऐसे में प्राचीन समय से ही यहाँ के विभिन्न अंचलों के लोगों में एक सांस्कृतिक जागरूकता विद्यमान रही है जो इन्हें एकीकृत रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। रूस एशिया की एक बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति था और उसका यहाँ के एक तिहाई हिस्से पर अधिकार था। भारत ब्रिटेन का सबसे बड़ा उपनिवेश था जिसे वह किसी भी कीमत पर अपने पास बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध था। अब वह ललचाई नजरों से चीन की तरफ देख रहा था। चीन पर दूसरी महाशक्तियों की भी नजरें लगी हुई थीं। क्षेत्रफल के हिसाब से चीन रूस और कनाडा के बाद दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा देश है। यहाँ की धरती खनिज–पदार्थों की दृष्टि से काफी उपजाऊ थी। यहाँ कोयले की बड़ी–बड़ी खानें थीं। कपास, चाय, रेशम और चावल के लिए चीन मशहूर था। पश्चिमी सभ्यता के विकास के कई शताब्दियों पूर्व ही चीन के लोग ध्रुवदर्शक यन्त्र (कम्पास), बारूद, चीनी मिट्टी के चमकदार बर्तन और कागज के प्रयोग से भली–भांति परिचित हो गए थे। ईसा की छठवीं शताब्दी में ही उन्हें चल काष्ठ टुकड़ों (ब्लाकों) वाली मुद्रण कला का ज्ञान हो चुका था।

कांसे, काष्ठ, सुनहरी वार्निश तथा रेशम उत्पादन के लिए उनकी ख्याति सदियों से रही है। अध्यवसायी और बुद्धिमान जाति होने के कारण चीनी लोग हमेशा शांतिपूर्ण ढंग से अपना व्यवसाय करते रहे हैं और युद्ध से प्रायः विरत ही रहे हैं। इस समय के चीन पर मांचू वंश का शासन था जो कमजोर और भ्रष्ट हो चुका था। अत्याचारी मंचू वंश के विरुद्ध विद्रोह उठने शुरू हो गए थे और इसी क्रम में 1800 ई. में श्वेत कमल समिति (White Lotus Society) और 1813 ई. में स्वर्गीय बौद्धिक समिति (Heavenly Reason Society) ने विद्रोह कर दिए। इसी कड़ी में सबसे बड़ा विद्रोह 1850 ई. का ताईपिंग विद्रोह (Taipin Rebellion) था। इन विद्रोहों से चीन में राजनैतिक अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी जिसका फायदा उठा कर यूरोपीय उपनिवेशवादी शक्तियाँ चीन पर अपना कब्जा जमाना चाहती थीं।

चीन ने अपने लिए सदियों से एकाकी जीवन खुद ही चुना था और वे बाहरी संसार से अलग–थलग हो कर अपनी दुनिया में जीवन यापन कर रहे थे। किसी भी देश से उनके दौत्य सम्बन्ध नहीं थे। न तो चीन का राजदूत किसी देश में था न ही किसी देश का राजदूत चीन में था। चीनी परम्परा के अनुसार पूरी दुनिया पाँच संकेन्द्रीय वृत्तों में बंटी थी। अन्दर के तीन वृत्त चीनी और उनके पड़ोसियों मंगोल, तिब्बती और थाई आदि से आबाद था और बाहरी दो वृत्तों में बाहर और 'दूर की बर्बर जातियां रहती थीं। चीनी परम्परा के अनुसार अन्दर के तीन वृत्त के लोगों को ही स्वर्ग से शासन करने का अधिकार मिला है। इस प्रकार चीनी शासन और जनता की नजर में ब्रिटिश सैनिक बर्बर एवं असभ्य समझे जाते थे। चीनियों ने अपने आप के लिए एकान्तिक जीवन चुना और विदेशियों के संपर्क से यथासंभव बचने की कोशिशें करते रहे। चीनियों ने बहुत हिचक के पश्चात विदेशियों के लिए चीन से व्यापार करने के लिए केवल कैण्टन नाम का बंदरगाह खोला था। विदेशी लोग केवल यहीं से व्यापार कर सकते थे और वह भी कष्टपपूर्ण और अपमानजनक स्थितियों के अन्तर्गत ही।

ब्रिटेन ने चीन को अपनी साम्राज्यवादी लिप्सा का पहला शिकार बनाया। ब्रिटेन में बना सूती और ऊनी कपड़ा चीन में आसानी से नहीं बिकता था। इसलिए ब्रिटिश पूंजीपतियों को चीन से चाय, रेशम और दूसरी उत्पादित वस्तुएँ खरीदने के एवज में बड़ी मात्रा में चाँदी देनी पड़ती थी। इसी समय पूरे विश्व में चाँदी का संकट उत्पन्न हो गया। ब्रिटेन अब चाँदी के बदले किसी अन्य माध्यम द्वारा कीमत चुकाने के उपाय सोचने लगा। इसी क्रम में उसने चीन से अफीम का व्यापार करने का फैसला किया। 1781 ई. में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी ने पहली बार भारतीय अफीम को चीन में भेजा। यह अफीम पटना में निर्मित किया जाता था और कलकत्ता में नीलाम किया जाता था। इस मादक द्रव्य के बारे में बिलकुल भी न जानने वाला चीन अब इसकी लत का बुरी तरह आदी होता चला गया और बहुत जल्द ही अफीम का यह व्यापार इतना बढ़ गया कि चीन से निर्यात होने वाली चाय, रेशम और अन्य चीजों का मूल्य अफीम का मूल्य चुकाने के लिए कम पड़ने लगा। अब देश के अन्दर संचित चाँदी देश के बाहर जाने लगी।

प्रथम आंग्ल–चीनी युद्ध या प्रथम अफीम युद्ध (1840–1842 ई.)

अपनी जनता के शारीरिक, मानसिक और आर्थिक तौर पर दुष्प्रभावित होने के कारण चीनी सम्राट ने 1800 ई. में अफीम के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया। लेकिन अफीम की लत जनता में अपनी जगह बना चुकी थी और इसके व्यापार के मुनाफे से बहुत से व्यापारी एवं अधिकारी नैतिक रूप से पतित और भ्रष्ट हो चुके

थे। इन लोगों ने तस्करी के माध्यम से अफीम का आयात जारी रखा और सरकारी प्रतिबन्ध को निष्प्रभावी बना दिया। एक आंकड़े से यह बात और स्पष्ट हो जायेगी। अफीम का वार्षिक व्यापार जो 1800 ई. में प्रतिबन्ध के समय 2000 पेटियों (एक पेटी 140 से 160 पौण्ड वजन के बराबर होती थी) का था, 1838 ई. में प्रतिबन्ध के बावजूद बढ़ कर 40000 पेटियों के बराबर हो गया। भारतीय अफीम अब चीन के लिए अपर्याप्त पड़ने लगी और इस कमी को पूरा करने के लिए तुर्की का अफीम लाया जाने लगा। इस काम में ब्रिटिश जलयानों के साथ–साथ अमरीकी जलयानों ने भी बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया और बेशुमार मुनाफा कमाया जो आगे चल कर अमरीका के औद्योगिक विकास का आधार बना।

अफीम के इस अवैध व्यापार से चीन की चाँदी बड़ी तेजी से देश के बाहर जाने लगी। इससे देश में चाँदी की कमी हो गयी जिस से देश में इसकी कीमत काफी बढ़ गयी। इसका बोझ किसानों पर पडा जब अनाजों की कीमत में तेजी से गिरावट आई। जमींदारों ने किसानों से करों की वसूली अधिक अनाज वसूल कर की। इससे चीनी समाज में सामाजिक तनाव व्याप्त होने लगा। 1810 ई. के पश्चात मंचू राजवंश के खिलाफ अधिक संख्या में और व्यापक पैमाने पर विद्रोह हुए। 1813 ई. में तो विद्रोहियों का एक दल राजधानी पेकिंग में सम्राट के राजमहल में घुस गया।

इन्हीं परिस्थितियों में अफीम के अवैध व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए केन्द्रीय सरकार ने 1839 ई. में लिन–त्से–सू को शाही कमिश्नर बना कर कैण्टन भेज दिया। लिन मार्च 1839 में कैंटन (जिसे अब गुआंगझोऊ कहा जाता है) पहुँचा। जनता के समर्थन से लिन ने कैण्टन के उस हिस्से की घेरेबन्दी कर दी जहां पर ब्रिटिश और अमरीकी व्यापारियों के कार्यालय स्थित थे। उसने वहां के सारे अफीम व्यापारियों को एक निश्चित अवधि के अन्दर अपना सारा स्टॉक जमा करने का आदेश दिया। इस आदेश के बाद कैण्टन स्थित ब्रिटिश व्यापार अधीक्षक चार्ल्स इलियट को बीस हजार दो सौ इक्यानबे पेटी अफीम चीनी अधिकारियों के हवाले करना पड़ा। इसमें 1500 पेटियाँ अमरीकी व्यापारियों की थीं। इसका मूल्य साठ लाख डालर था। लिन ने इस जब्त की गयी अफीम को हूमन के समुद्र तट पर जलवा दिया। अब लिन ने यह आदेश जारी किया कि किसी को भी किसी भी हालत में थोड़ी भी अफीम चीन लाने की अनुमति नहीं दी जायेगी। इसी परिस्थितियों में पहला अफीम युद्ध शुरू हो गया।

प्रथम अफीम युद्ध के मूल में कुछ और कारण भी थे। मसलन समस्त विदेशी व्यापार पर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिए गए थे। विदेश व्यापार चीन के कैण्टन बंदरगाह तक सीमित था। साथ ही ये व्यापार केवल को–हांग द्वारा ही हो सकता था। विदेशी व्यापारियों को अधिक चुंगी अदा करनी पड़ती थी। विदेशियों के समस्त आवागमन पर चीनी सरकार कड़ी निगरानी रखती थी। अपने को दुनिया का स्वामी मानने वाले अंग्रेजों के प्रतिनिधियों समेत सभी विदेशी प्रतिनिधियों के साथ भी चीन का व्यवहार सम्मानजनक नहीं होता था। चीनी लोग विदेशियों को असभ्य एवं बर्बर समझते थे। उन्हें कैण्टन नगर से बाहर जाने की अनुमति नहीं थी। व्यापार का खास समय समाप्त होने पर विदेशियों को वापस लौटना पड़ता था। इससे अंग्रेजों को बहुत असुविधा होती थी। दूसरी वजह यह थी कि कि विदेशी लोग केवल कैण्टन में रहते थे। विवाद की स्थिति में चीनी न्यायालय अपने स्थानीय कानूनों के अनुसार उनके झगड़ों को सुलझाता था। जबकि विदेशी चाहते थे कि उनसे सम्बंधित मामले उनके देश के कानून के अनुसार सुलझाए जायं। तीसरी वजह यह थी कि लिन द्वारा नष्ट की गयी अफीम की क्षतिपूर्ति करने और

चीन द्वारा ब्रिटिश व्यापारियों को अधिक व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अंग्रेज अपनी सरकार पर दबाव डालने लगे।

उपरोक्त कारणों से 1840 ई. में प्रथम अफीम युद्ध शरू हो गया जो 1842 ई. तक चलता रहा। ब्रिटिश हमला होते ही ऊपर से शक्तिशाली दिखाई पड़ने वाले चीनी साम्राज्य की कलई दुनिया के सामने खुलने लगी। ब्रिटेन ने जून 1840 ई. में अपने व्यापारियों की रक्षा करने के नाम पर 40 से अधिक जहाजों में 4000 से अधिक सैनिक भेज कर चीन के कैण्टन (क्वांगतुंग) के तटवर्ती क्षेत्रों पर आक्रमण के लिए भेज दिया। कैण्टन पर ब्रिटेन का अधिकार हो गया किन्तु चीनियों द्वारा साठ लाख पौण्ड की रकम अदा करने पर वहां से ब्रिटिश सेनाएँ वहाँ से हटा ली गयीं। चीनियों ने यह रकम ब्रिटिश अफीम के हर्जाने के तौर पर दी थी लेकिन ब्रिटेन ने इसे युद्ध का हर्जाना समझ लिया। अब ब्रिटिश सेनाएँ उत्तर की तरफ बढ़ते हुए अमोय, तिंघाई, चिंहाई, निंग–पो पर अधिकार करते हुए शि–क्यांग और नान–किंग की ओर बढीं। नान–किंग में चीन ने ब्रिटिश सेना के समक्ष आत्म–समर्पण कर दिया। और ब्रिटेन द्वारा पेश अपमानजनक संधि की शर्तों को स्वीकार कर लिया। चीनी सरकार ने लिन त्से सू को न केवल कार्यमुक्त कर दिया बल्कि उसे दण्डित भी किया।

4.4 नानकिंग की संधि (29 अगस्त 1842 ई.)

नानकिंग की संधि के द्वारा ब्रिटेन को हांगकांग जैसा महत्वपूर्ण क्षेत्र प्राप्त हुआ। यह भी तय हुआ कि चीन ब्रिटेन को 210 लाख पौण्ड हर्जाने के तौर पर देगा जिसमें से साठ लाख पौण्ड कैण्टन में छीनी गयी अफीम की भरपाई के लिए, 120 लाख पौण्ड युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिए और तीस लाख पौण्ड चीनी व्यापारियों पर अंग्रेजों के कर्ज की अदायगी के रूप में होगा। चीन के पाँच बंदरगाहों कैण्टन, अमोय, फूचो, निंग–पो और शंघाई को ब्रिटेन के व्यापार के लिए खोल दिया जाएगा। आयात और निर्यात पर चुंगी की साधारण और उपयुक्त दर निश्चित किये जाने की बात भी तय की गयी। को–हांग के हाथों व्यापार के एकाधिकार को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया। और संधि में ही इस बात का प्रावधान किया गया कि संधि की ये शर्तें दस वर्षों के बाद ही संशोधित की जायेंगी।

नानकिंग की सन्धि की सबसे बड़ी असफलता यह थी कि जिस अफीम के व्यापार को ले कर संघर्ष हुआ था उसके बारे में कोई बात नहीं की गयी। ब्रिटेन अफीम के व्यापार को कानूनी रूप देने से बचना चाहता था साथ ही अफीम के व्यापार से होने वाले भारी लाभ को छोड़ना भी नहीं चाहता था। यह संधि सार्वभौम चीन के राष्ट्रीय सम्मान के लिए एक भारी आघात थी। इस सन्धि से चीन में साम्राज्यवादी शक्तियों की लूट–खसोट का क्रम शुरू हो गया। अफीम युद्ध चीन के इतिहास का एक बड़ा मोड़ था। इस युद्ध के पश्चात चीन एक अर्द्ध औपनिवेशिक और अर्द्ध सामंती देश में रूपान्तरित होने की ओर बढ़ चला।

4.5 नानकिंग की सन्धि के परिणाम

नानकिंग की सन्धि के कुछ स्थायी परिणाम दिखाई पड़ते हैं जो इस प्रकार हैं–

चीन में ब्रिटेन की इस सफलता से अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों का भी हौसला बढ़ा। फ्रांस और अमरीका ने भी थोड़े शक्ति का प्रदर्शन कर ब्रिटेन के समान ही

रियायतें प्राप्त कर लीं। अमरीका ने चीन को 1844 ई. में 'यांगश्या की सन्धि' पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य कर दिया। यह संधि अमरीकी तस्करों के लिए वरदान साबित हुई। चीन की लाचारगी का और फायदा उठाने के उद्देश्य से ब्रिटेन ने 1847 ई. में उस पर यह दबाव डाला कि ब्रिटिश भारत और पश्चिमी तिब्बत के बीच की सीमा निर्धारित कर दी जाय। कहना न होगा कि चीन में इसे नकारने का साहस नहीं बचा था। इसी क्रम में ब्रिटेन ने अपनी इच्छानुसार बनायी गयी सीमा–रेखा को चीन के ऊपर थोप दिया। इस तरह तिब्बत में घुसपैठ करने और उसे चीन से अलग करने की मानसिकता साम्राज्यवादी विभाजन के प्रयास का ही परिणाम थी।

चीन को विदेशियों के लिए अपने जिन पाँच बंदरगाहों को खोलने के लिए बाध्य किया गया था अब वे धीरे–धीरे विदेशी बस्तियों के रूप में परिवर्तित होते गए। चीन को बाध्य किया गया कि वह विदेशी माल पर पांच प्रतिशत से ज्यादा आयात कर नहीं लगा सकेगा। इसका दुष्परिणाम यह निकला कि अब चीनी बाजार विदेशी माल से पट गया। इसका सीधा असर चीन के घरेलू उद्योग–धंधों पर पड़ा। अभी तक आत्मनिर्भर रहा चीन अब विदेशी सामानों पर आश्रित होता चला गया। इससे चीनी लोगों में बेरोजगारी बढ़ी। जीवन निर्वाह के लिए चीनी लोगों को विदेशों की शरण लेनी पड़ी। मलाया की टीन की खानों, जावा, क्यूबा और अमरीकी बाजारों में सस्ते चीनी मजदूरी की मांग बढ़ गयी।

चीन को हर्जाने की एक बड़ी रकम चुकानी पड़ी थी। इससे चीनी अर्थव्यवस्था पूरी तरह अस्त–व्यस्त हो गयी। अपनी अर्थ–व्यवस्था को संभालने के लिए चीन को विदेशों से भारी कर्ज लेना पड़ा। यही नहीं कर्ज चुकाने का प्रयास चीनी सरकार ने विदेशी माल आमद के लिए खुली छूट दे कर किया। कर्ज के भुगतान के लिए चीनी सरकार ने जनता से धन वसूली शुरू कर दिया। इससे चीनी जनता अपनी सरकार से असंतुष्ट हो गयी और यही चीनी इतिहास के सबसे बड़े क्रांतिकारी किसान आन्दोलन का कारण बना। नानकिंग संधि की शर्तों के अनुसार अब चीन की सरकार अपने ही देश में चुंगी की दर भी नहीं बढ़ा सकती थी। इस शर्त को चीन पर थोप कर ब्रिटेन ने उसकी वित्तीय प्रणाली पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया।

4.6 द्वितीय आंग्ल–चीनी युद्ध या अफीम युद्ध (1856–1860 ई.)

नानकिंग की संधि से कोई भी पक्ष संतुष्ट नहीं था। विदेशी शक्तियां अभी और अधिक अधिकार पाने के लिए लालायित थीं जबकि चीनी सरकार इस अपमानजनक सन्धि की शर्तों का पालन करने से यथासंभव बचना चाहती थी। चीन को ऐसा लग रहा था कि प्रथम अफीम युद्ध में उसने अपनी पूरी शक्ति के साथ विदेशी हमले का सामना नहीं किया था। उसे अब भी अपनी शक्ति पर गुमान था और अब वह विदेशी तत्वों का जोरो–शोर से जबाव देना चाहता था। इसी बीच स्थानीय जनता में ब्रिटिश सैनिकों के खिलाफ रोष फैल गया और उनके साथ बुरा बर्ताव किया गया। ऐसे में धीरे–धीरे फिर दोनों पक्षों में तनाव बढ़ने लगा और युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार होने लगी।

चीनियों के उद्धत व्यवहार के कारण चीन के सभी बंदरगाहों जहां से विदेश–व्यापार होता था, विशेषकर कैण्टन में विदेशी–विरोधी झगड़े शुरू हो गए। इसी बीच लोर्चा एरो की घटना ने युद्ध की स्थिति पैदा कर दिया। 1856 ई. में ब्रिटिश झंडा लगाए एक चीनी नौका अफीम लाते हुए पकड़ ली गयी। वस्तुतः इस जहाज का मालिक एक चीनी व्यापारी था लेकिन इस जहाज का पंजीकरण

हांगकांग में कराया गया था जिस पर ब्रिटेन का अधिकार था। चीन की सरकार ने इस जहाज के नाविकों को गिरफ्तार कर लिया। ब्रिटेन ने कहा कि इस नौका के नाविकों को चीनी न्यायालय सजा नहीं दे सकता जबकि चीन इन्हें दण्डित करने के लिए प्रतिबद्ध था। इस घटना से दोनों पक्षों के बीच तनाव बहुत अधिक बढ़ गया।

इसी समय एक फ्रांसीसी पादरी एबी चौप्डीलेन (।इइम बैंचकमसंपद) की हत्या ने आग में घी का काम किया। वस्तुतः फ्रांस और चीन के बीच हुए एक समझौते के अनुसार फ्रांसीसी पादरियों को चीन में धर्म प्रचार का अधिकार मिला हुआ था। इसी का लाभ उठाते हुए फ्रांसीसी पादरी एबी चौप्डीलेन चीन के काफी अन्दर तक चला गया और कुछ आपत्तिजनक काम करते हुए पकड़ लिया गया। उस पर मुकदमा चला कर अंततः उसे प्राणदंड दे दिया गया। इसी बात से कुपित हो कर फ्रांस और ब्रिटेन ने संयुक्त रूप से चीन पर 1856 ई. में हमला कर दिया। संयुक्त सेना आगे बढ़ते हुए पीकिंग तक पहुँच गयी। मांचू सम्राट राजधानी छोड़ कर भाग गया। विजयी सेना ने चीन के सर्वश्रेष्ठ कला संग्रहालय और अपूर्व ग्रीष्म महल को जी भर कर लूटा और फिर उसे आग के हवाले कर दिया। विवश मांचू सम्राट ने विजयी शक्तियों के समक्ष घुटने टेक दिए और सन्धि की याचना की। इसी क्रम में 1860 ई. में पीकिंग की सन्धि हुई।

4.7 पीकिंग की सन्धि (1860 ई.)

पीकिंग की सन्धि चीनी सरकार के लिए अपमान का दूसरा घूँट था जिसे उसे अनिच्छापूर्वक स्वीकार करना पड़ा। इस सन्धि के अनुसार चीन को विदेश व्यापार के लिए अपने ग्यारह नए बंदरगाह खोलने पड़े। इस तरह अब कुल सोलह बंदरगाहों से विदेशियों को व्यापार करने की अनुमति मिल गयी। इन सभी बंदरगाह शहरों में विदेशी लोगों को अपनी बस्तियां बसाने और स्वतंत्र रूप से व्यापार करने का अधिकार मिल गया। अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस आदि देशों को यांगत्सी नदी में आवागमन का अधिकार मिल गया। पासपोर्टधारी विदेशी पूरे चीन में कहीं भी घूम–फिर सकते थे। चीनी सरकार को राजधानी में विदेशी राजदूतों को रहने की अनुमति देनी पड़ी। ईसाई धर्म का प्रचार और चर्च के लिए जमीन खरीदने का अधिकार ईसाई धर्म–प्रचारकों को प्राप्त हुआ। उन्हें पूरे चीन में चर्च और भवन निर्माण की अनुमति दे दी गयी। ब्रिटेन को सर्वाधिक प्रिय देश घोषित किया गया। चुंगी की स्थायी दर पाँच प्रतिशत के हिसाब से निश्चित की गयी। अफीम के व्यापार को कानूनी दर्जा देते हुए उसका आयात कर तय कर दिया गया। तट कर वसूल करने का काम एक ब्रिटिश अधिकारी को सौंप दिया गया। युद्ध के हर्जाने के तौर पर चीन ने ब्रिटेन और फ्रांस को एक बड़ी रकम अदा किया।

पीकिंग की संधि ने चीनी सरकार की दुर्बलता और अयोग्यता को पूरी तरह उजागर कर दिया। शताब्दियों से निष्कंटक शासन कर रहे साम्राज्य की नींव हिल गयी और उसका पतन सन्निकट दिखाई पड़ने लगा। इस सन्धि के द्वारा चीन पूरी तरह से साम्राज्यवाद के शिकंजे में जकड़ गया। विदेशियों के लिए चीन का दरवाजा पूरी तरह खुल गया और अब उन्हें चीन में हर तरह की सुविधाएं प्राप्त हो गयीं। पश्चिमी देश चुंगी के लिए अपने देशों के कर्मचारियों को नियुक्त करने लगे। इसके फलस्वरूप चीन का समस्त व्यापार विदेशियों के हाथों में जाने लगा। समुद्री रास्ते से आने वाले जहाजों का निरीक्षण, उनके सामानों की ढुलाई और करों की वसूली विदेशी ही करने लगे। इसका चीन की आर्थिक व्यवस्था पर

अत्यंत बुरा प्रभाव पड़ा। विदेशी माल का आयात बढ़ जाने से चीनी कला–कौशल और उद्योग–धंधों को भारी क्षति पहुँची। अब हर शहर में विदेशियों की बस्ती अलग बसने लगी जहाँ सरकार, पुलिस और न्याय व्यवस्था विदेशियों का ही होने लगा। हजारों वर्षों से चली आ रही चीनी आत्म–निर्भरता समाप्त हो गयी। इसी के साथ चीन का स्वाभिमान भी समाप्त हो गया।

8 अक्टूबर 1863 ई. को तोगो नामक स्थान पर एक अन्य पूरक सन्धि हुई। इस सन्धि में यह व्यवस्था की गयी कि यदि चीनी सम्राट किसी कारण या अपनी मर्जी से किसी विदेशी राष्ट्र के लोगों को कोई अधिकार या छूट देंगे तो वे सारे अधिकार व छूट ब्रिटेन को भी मिलेंगे। इसी संधि के एक अन्य अनुच्छेद में देशोत्तर अधिकार (म्जतं ज्मततपजवतपंस त्पहीजे) की व्यवस्था की गयी जिसके अनुसार ब्रिटिश लोगों को चीनी जमीन पर भी अपने देश के कानून के अनुसार ही दण्डित किया जा सकता था।

अफीम युद्धों के परिणाम चीन के लिए बड़े घातक साबित हुए। चीन में अब बाकायदा पश्चिमी साम्राज्यवाद की नींव पड गयी। चीन में विदेशियों की संख्या काफी बढ़ गयी और अब साम्राज्यवादी देशों की सेनाएँ चीन में ही रहने लगीं। चीनी जनता मांचू शासकों से घृणा करने लगी। चीन की प्रभुता चीन में ही सीमित हो गयी। चीनी सरकार ने स्वीकार कर लिया कि आमूर नदी के उत्तर के चीनी प्रदेश रूस को दे दिए जायेंगे। उसूरी नदी के पूर्व के चीनी प्रदेश पर भी रूस का अधिकार कायम हुआ और इस तरह चीन में रूस का प्रादेशिक विस्तार होने लगा। अफीम युद्धों के परिणामस्वरूप चीन के आर्थिक शोषण का युग आरम्भ हो गया। अब चीन की भूमि पर पश्चिमी देशों की आपसी होड़ शुरू हो गयी जिसका खामियाजा अंततः चीन को भी भुगतना पड़ा। को–हांग का विघटन कर दिया गया। इस प्रकार अब चीन में कोई भी ऐसा व्यापारिक संघ नहीं बचा जो पश्चिमी शोषण के विरुद्ध आवाज उठा सके। इस तरह विदेशी तत्व अब खुले तौर पर मनमानी करने के लिए स्वतन्त्र हो गए।

4.8 बॉक्सर आन्दोलन (Boxer Movement) 1899–1900 ई.

चीन में अपने पाँव जमाने के बाद अब साम्राज्यवादी शक्तियाँ अफ्रीका की तर्ज पर चीन के बँटवारे की साजिश रचने लगीं। इस साजिश का पता चलते ही आम चीनी जनमानस में रोष व्याप्त हो गया। देश के किसानों ने संकट का सामना करने के लिए 1899–1900 ई. एक व्यापक देशभक्तिपूर्ण आन्दोलन की शरुआत की जिसकी प्रकृति साम्राज्यविरोधी थी। इस आन्दोलन को चीन में 'ई–हो–श्वान' आन्दोलन कहा जाता है। विदेशी लोग इसे ही बॉक्सर आन्दोलन की संज्ञा देते हैं। दरअसल इस नामकरण के पीछे इस आन्दोलन से जुड़े सदस्यों का वह शारीरिक अभ्यास था जो प्रायः बॉक्सिंग से मिलता जुलता था। आन्दोलन की गंभीरता को इससे भी समझा जा सकता है कि युवक और युवतियों ने 'लाल कन्दील' नामक गुप्त संगठन बना कर इस संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग लिया। आरम्भ में यह आन्दोलन ईसाई विरोधी था। दरअसल अपना धर्म परिवर्तन करने वाले चीनी अपने प्राचीन रीति–रिवाज और परम्पराओं को छोड़ देते थे और अपने को और श्रेष्ठ समझने लगते थे। विदेशी लोग इन नव–ईसाईयों की ही हिमायत करते थे। चीनी लोग पहले ही साम्राज्यवाद के शोषण से परेशान थे अब इस व्यापक धर्म–परिवर्तन से वे अपने–आप को रोक न सके। चीन के विभाजन की योजना ने आग में घी का काम किया।

4.9 बॉक्सर आन्दोलन के कारण

1860 ई. के बाद पश्चिमी शक्तियों ने चीन में खुले–आम लूट–खसोट मचानी शुरू कर दी। इन शक्तियों ने चीन की बेवशी का फायदा उठा कर उसके साथ कई असमान संधियाँ कीं और अपने लिए चीनी क्षेत्र में अनेक तरह के विशेषाधिकार प्राप्त किये। चीनी लोग इन विशेषाधिकारों को अनुचित मानते थे। विदेशी लोग इन विशेषाधिकारों का अनुचित लाभ उठा कर चीनी लोगों को उत्पीड़ित करना शुरू कर दिए। इससे चीनी लोगों में रोष फैलना स्वाभाविक था।

ईसाई मिशनरियों ने अब व्यापक पैमाने पर चीनी लोगों का धर्म–परिवर्तन कराने का अभियान शुरू कर दिया। इसमें इन लोगों ने चीनी लोगों की धार्मिक भावनाओं का तनिक भी ख्याल नहीं किया और आक्रामक रुख अपनाया। इसी बीच 1894 ई. में चीन का जापान के साथ युद्ध हुआ जिसमें चीन की शर्मनाक पराजय हुई। चीन की जापान के साथ 1895 ई. में शिमोनसेकी की संधि (Treaty Of Shimonoseki) करनी पड़ी। इस सन्धि के द्वारा जापान ने चीन से कोरिया, फारमोसा और लियो–तुंग (Liauo-tung peninsul) प्रायद्वीप जबरन प्राप्त कर लिया। जापान की इस विजय से पश्चिमी शक्तियाँ चौंकी। इस क्रम में चीन का शोषण अब और अधिक बढ़ गया। साम्राज्यवादी शक्तियां अब और आक्रामक तरीके से चीनी शोषण और उत्पीडन को अंजाम देने लगीं।

चीन–जापान युद्ध के बाद चीन को सुधार कार्यक्रम लागू करने के लिए पश्चिमी शक्तियों ने कर्ज देना शुरू किया। इसका उद्देश्य किंचित भी यह नहीं था कि चीन का आधुनिकीकरण हो बल्कि उनके दिमाग में यह बात थी कि चीन का अधिकाधिक शोषण करना है। कर्ज देने वाले देशों में फ्रांस अग्रणी था। इसका फायदा उठाते हुए फ्रांस ने चीन के कुछ बंदरगाहों का उपयोग करने की छूट प्राप्त कर ली। फ्रांस ने क्वांग–चाऊ (Kwang&Chow) को पट्टे पर ले लिया साथ ही टो–किन से युव–नान (Yunan) तक रेलवे लाइन बनाने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। 1897 ई. में शांतुंग प्रदेश में हुई दो जर्मन पादरियों की हत्या को बहाना बना कर जर्मनी ने चीन के किया चाऊ (ज्ञपंव बेवू) क्षेत्र को 99 वर्ष के पट्टे पर ले लिया। यही नहीं शांतुंग प्रान्त, जहाँ जर्मन धर्म–प्रचारकों की हत्या की गयी थी, पर जर्मनों के अतिरिक्त आवास के अधिकार को चीन को स्वीकार करना पड़ा एशियाई शक्ति रूस भला कैसे पीछे रहता। चीन से और अधिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए रूस ने 1897 ई. में पोर्ट आर्थर और ते–लिन–वाल पर कब्जा कर लिया। साथ ही रूस ने मंचूरिया में रेलवे लाइन बिछाने के अधिकार को भी प्राप्त कर लिया। ब्रिटेन भी अवसर का फायदा उठाने से नहीं चूका। उसने वे–हे–वे (Wei-Hai-Wei) को पट्टे पर प्राप्त करने के साथ–साथ हांगकांग की सीमा का विस्तार किया। यही नहीं ब्रिटेन ने वर्मा–चीन सीमा को जबरन निश्चित कराया साथ ही ब्रिटिश नागरिक को ही चुंगी अधिकारी नियुक्त करने का अधिकार चीन से प्राप्त कर लिया। इसी समय अमरीका ने जब यह देखा कि यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियाँ चीन को जल्द ही आपस में बाँट लेंगी और उसे कुछ भी नहीं मिल पायेगा तो उसने 'खुले दरवाजे की नीति' (Open Door Policy) का प्रतिपादन करते हुए सभी विदेशी शक्तियों के लिए चीन में एक समान व्यापारिक सुविधा की मांग की। आपसी संघर्ष से बचने के लिए यूरोपीय शक्तियों विशेषकर ब्रिटेन ने अमरीका की माँग को मान लिया क्योंकि चीन में रूस और जापान की बढती हुई शक्ति से वह पहले से ही चिन्तित था। इस तरह चीन की लूट में अब अमरीका भी अप्रत्यक्ष रूप से शामिल हो गया। इस तरह पश्चिमी शक्तियों ने चीन में अपने अलग–अलग

प्रभाव क्षेत्र स्थापित करने शुरू कर दिए। उनके अवचेतन में कहीं न कहीं अफ्रीका की पृष्ठभूमि थी जिसकी निर्मम लूट–खसोट उन्होंने अभी हाल ही में पूरी की थी। चीन अब अपनी भूमि पर ही बेगाना होता जा रहा था।

4.10 बॉक्सर आन्दोलन रू घटनाक्रम

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में चीनी जनता का आक्रोशित होना स्वाभाविक था। विदेशियों के प्रति जो उग्र–आक्रोश अभी तक उनके मन में था अब वह बाहर आने के लिए उद्वेलित होने लगा। इसी क्रम में प्रान्तों में विदेशी विरोधी प्रदर्शन शुरू हो गए। धीरे–धीरे विरोध–प्रदर्शन की ये आग पूरे चीन में फैल गयी। मई 1900 ई. में चीन की विभिन्न सुधारवादी संस्थाओं ने मिल कर प्रतिरोध करने का फैसला किया और एक नए संगठन 'ई–हो–चुवान' की स्थापना की गयी। ई–हो–चुवान का शाब्दिक अभिप्राय है– व्यवस्थित मुक्केबाजी। इसीलिए इस संगठन का नाम 'Order Of Literary Patriotic Hormanious Fists' बन्द मुट्ठियों की समिति या बॉक्सर पड़ा। प्रारम्भ में इस संगठन का नारा था– 'मांचू राज को हटाओ और विदेशियों का नाश करो।' शांतुंग प्रांत के चिह–ली नामक स्थान से यह बॉक्सर आन्दोलन शुरू हुआ। विदेशियों द्वारा निर्मित चर्च, रेलवे लाईनें, विदेशी बैंक और कम्पनियाँ चीन के लोगों की आँखों में कांटे की तरह चुभ रहीं थीं। इसलिए ये प्रतिष्ठान ही चीनियों के हमले के शिकार बने। ईसाई पादरी, ठेकेदारों और इंजीनियरों पर हमले किये गये। सैकड़ों विदेशियों को मार डाला गया। इससे विदेशी राजदूतों में खलबली मच गयी। चीन की महारानी त्जू हसी ने इस अवसर पर राजनीतिक चातुर्य का परिचय दिया। रानी ने बड़े कौशल से ईसाई विरोधी आन्दोलन को विदेश विरोधी आन्दोलन में बदल दिया। इससे चीनी लोगों में जो मांचू विरोधी भावनाएं थीं अब वे विदेशी विरोधी भावना में परिवर्तित हो गयीं। मांचू वंश को कुछ समय की मोहलत और मिल गयी। जून 1900 ई. में बॉक्सर आन्दोलन पीकिंग में शुरू हो गया। आन्दोलनकारियों ने पीकिंग पर अधिकार कर लिया और वहां पर रह रहे विदेशियों को घेर लिया। यातायात के सभी साधनों को अवरुद्ध कर दिया गया। विद्रोहियों ने विदेशी दूतावासों को घेर लिया और विदेशी इंजीनियरों को मार डाला।

इस घटना की सूचना मिलते ही यूरोपीय देश अपनी रक्षा के लिए सन्नद्ध हो गए। ब्रिटेन, अमरीका, जर्मनी, रूस, फ्रांस, जापान, इटली और आस्ट्रिया–हंगरी की टुकड़ियों ने टीट–सीन में मिल–जुल कर एक संयुक्त सेना का गठन किया और राजधानी पीकिंग पर धावा बोल दिया। इस सेना का प्राथमिक उद्देश्य विदेशी राजदूतों को बचाना था। विद्रोहियों ने इस विदेशी सेना को रोकने के लिए टीटसीन–पीकिंग रेलमार्ग को नष्ट कर दिया। मांचू सरकार ने भी बॉक्सरों का साथ दिया और विदेशियों को 24 घंटे के अन्दर राजधानी छोड़ने का आदेश दिया। विद्रोहियों ने जनरल राजदूत को मार डाला। विदेशी नौसेना ने समुद्र–तट पर गोलीबारी शुरू कर दी और अनेक मुख्य नगरों और किलों पर कब्जा कर लिया। विदेशी सेना ने ताकू के किले पर गोलीबारी शुरू कर दी। इस विदेशी हमले से बॉक्सर आन्दोलन को व्यापक क्षति पहुँची। विदेशी सेना ने उन स्थानों जहां पर मिशनरियों और देशी ईसाईयों की हत्या की गयी थी, बहुत अत्याचार किया और लूट–पाट की। इस घटना के एक प्रत्यक्षदर्शी वील ने शहर के हर मकान में की गयी लूट मार का सजीव वर्णन करते हुए कहा है कि 'विदेशी सैनिक लुटेरों के असमाप्त लगने वाले जुलूस की तरह थे।' जिन गाँवों को बॉक्सर योद्धाओं ने अपने मुख्य अड्डे के रूप में इस्तेमाल किया था और जहां से भी हथियार बरामद हुए उन

गाँवों और जगहों के निवासियों को जान से मार डाला गया या भगा दिया गया। विद्रोह के मुख्य गढ़ टिटसिन को रौदते हुए विजयी सेना राजधानी पीकिंग की ओर बढ़ी। वहाँ पहुँच कर 12 अगस्त 1900 को वहाँ की किलेबन्दी को तोड़ दिया और शहर को जी भर कर लूटा। राजमाता त्जू–हसी और उनके सहयोगी जे–होल राजधानी से भाग कर सिआन चले गये। अब चीन पूरी तरह से विदेशी प्रभाव में आ गया था। युद्ध में लगभग पंद्रह हजार चीनी मारे गये। इस प्रकार बॉक्सर आन्दोलन का बड़ी कड़ाई से दमन कर दिया गया।

4.11 बॉक्सर आन्दोलन के परिणाम

बॉक्सर आन्दोलन असफल रहा। पश्चिमी देश चीन में अपना विशेषाधिकार बनाए रखने में कायम रहे। इस आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात 7 सितम्बर 1901 ई. को एक समझौता हुआ जिसमें निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गयीं।

चीनी शासकों को इस बात के लिए मजबूर किया गया कि वे उन शहरों में पाँच वर्षों के लिए सरकारी परीक्षाएँ बन्द करा दें जहां पर विदेशियों की हत्या की गयी थी या उनके साथ बुरा बर्ताव किया गया था। यही नहीं विदेशी शक्तियों ने चीनी शासकों को यह आदेश भी जारी करने के लिए बाध्य किया कि विदेश–विरोधी संगठनों की सदस्यता के लिए मृत्युदण्ड का ऐलान कर के उनपर हमेशा के लिए प्रतिबन्ध लगा दिया जाय। दो वर्षों के लिए चीन में हथियारों के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। विदेशी शक्तियां चाहें तो इस प्रतिबन्ध को आगे भी बढ़ा सकती हैं।

चीन पर अब तक का सबसे बड़ा हर्जाना थोप दिया गया। हर्जाने की यह राशि पचास करोड़ अमरीकी डालर थी। यह हर्जाना मुख्य शक्तियों समेत इटली, नीदरलैंड, आस्ट्रिया, बेल्जियम, स्पेन, पुर्तगाल और स्कैंडिनेवियाई देशों को चुकाया जाना था। चीन हर्जाने की इस रकम को चालीस वर्षों की अवधि में किश्तों में चुकता करेगा। राजधानी पीकिंग में विदेशी बस्तियों और दूतावासों की रक्षा के लिए स्थायी रूप से सेना रखने की व्यवस्था की गयी। पीकिंग से समुद्र तट जाने वाले समूचे रेल मार्ग पर विदेशी सैनिकों को तैनात कर दिया गया। इसके फलस्वरूप अनेक देशों ने पीकिंग, थ्येनचिन और शांगहाए जैसे शहरों पर लगभग चालीस वर्षों तक अपना अधिकार बनाए रखा।

बॉक्सर आन्दोलन की असफलता के साथ चीन एक बार फिर पराजित हुआ लेकिन इस आन्दोलन का एक सकारात्मक पक्ष भी था। अभी तक जो विदेशी शक्तियाँ चीन को अपने बीच विभाजित करने का सपना देख रहीं थीं अब उन्होंने यह सपना देखना बन्द कर दिया। चीनी आम जनता की उग्रता का उन्हें अच्छी तरह से पता चला गया। वे यह तथ्य जान गए कि राष्ट्र के नाम पर चीनी लोग आसानी से एकत्रित हो जाते हैं और मरने–मारने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। इसलिए जनता को न उकसाने में ही उनकी भलाई है। बॉक्सर आन्दोलन का दूसरा सकारात्मक पहलू यह था कि इसने भविष्य में उन शक्तियों को प्रभावित किया जिन्होंने चीन की सार्वभौमिकता की रक्षा को ही अपना पुनीत कर्तव्य समझा। चीनी जनता में राजनैतिक चेतना का जागरण हुआ जिससे की विदेशियों के मंसूबे अधूरे ही रह गए। बॉक्सर आन्दोलन का तीसरा सकारात्मक पक्ष यह था कि इसने जनता के बीच सरकार के सम्मान को खत्म कर दिया। चीनी जनता यह समझने लगी कि राष्ट्र के अपमान और बेइज्जती के लिए मांचू शासन ही उत्तरदायी है। अतः इसका विनाश आवश्यक है। इस विचार ने मांचू राजवंश के पतन को

अवश्यम्भावी बना दिया। आगे चल कर चीन में जिस गणतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना हुई उसमें इस आन्दोलन का परोक्ष हाथ था। चीनी प्रजा का आक्रोश और विदेश विरोधी भावनाएं ही आगे चल कर चीनी क्रान्ति का कारण बनीं।

4.12 बॉक्सर आन्दोलन की असफलता के कारण

बॉक्सर आन्दोलन के पास अपरिमित शक्ति थी लेकिन इसके बावजूद उसे दबा दिया गया। यह विद्रोह जिस तेजी के साथ आरम्भ हुआ था उसी गति से इसका दमन भी कर दिया गया। इस तरह के देशों में ऐसे आन्दोलनों की जो कमी होती है बॉक्सर जैसा आन्दोलन भी उसका शिकार हुआ। आन्दोलन के दौरान सम्पूर्ण चीनी लोग एकजुट नहीं हो पाए। यांग्त्जी क्षेत्र और दक्षिणी प्रान्त के पदाधिकारियों ने आन्दोलन में कोई भी सहयोग नहीं किया। कई प्रान्तों के अधिकारियों ने विदेशी शक्तियों का साथ दिया। चीन के कुछ प्रान्तों के सूबेदार तटस्थ बने रहे जबकि कुछ ने निजी स्वार्थवश विदेशियों का साथ दिया। शाही पदाधिकारियों ने विदेशी राष्ट्रों से युद्ध करने का कोई लाभ नहीं समझा और वे भी बॉक्सरों की राह में अवरोध बन कर खड़े रहे।

मांचू शासन की अवसरवादी नीतियाँ भी बॉक्सर आन्दोलन की असफलता के लिए उत्तरदायी थीं। घटनाक्रम के दौरान जब तक पलड़ा आन्दोलनकारियों की तरफ झुका था तब तक तो मांचू वंश उनका सहयोग करता रहा। लेकिन जैसे ही परिस्थितियाँ बदलीं और विद्रोहियों की स्थिति कमजोर हुई, मांचू राजवंश विदेशियों के पक्ष में चली गयी। यही नहीं मांचू सरकार ने जनता को विद्रोहियों का साथ न देने की हिदायत दी और यह आह्वान किया कि विद्रोह को कुचलने में जनता सरकार का साथ दे।

दुर्भाग्यवश बॉक्सरों के पास ऐसा कोई भी योग्य नेता नहीं था जो उन्हें सफल नेतृत्व प्रदान कर सके। यही नहीं उनके पास कोई ठोस रचनात्मक कार्यक्रम भी नहीं था। बॉक्सरों का तात्कालिक उद्देश्य विदेशियों को नष्ट करना था लेकिन इसके बाद वे क्या करेंगे और देश की नयी सूरत क्या होगी इसके बारे में भी कुछ स्पष्ट नहीं था। इन सब कारणों के चलते बॉक्सर आन्दोलन अंततः असफल रहा और विदेशियों द्वारा बहुत जल्द ही दबा दिया गया।

4.13 जापान

चीन के ठीक पूरब में द्वीपीय देश है जापान। जापानी खुद को 'निहोन' अथवा 'उदीयमान सूर्य का देश' भी कहते हैं। जापानी परम्परा में सैनिक गुणों का उच्च सम्मान किया जाता था और जापानियों के अन्दर उत्कट देशभक्ति की भावना थी। चीनियों की तरह ही जापानी लोगों ने भी बहुत समय तक अकेलेपन की नीति का अनुसरण किया और बाहरी दुनिया के लिए अपने दरवाजे प्रायः बन्द रखे। डैशिमा के प्रायद्वीप पर केवल एक व्यापारिक केन्द्र था जो डच लोगों के साथ थोड़ा–बहुत व्यापार करता था। आगे चल कर कमोडोर पेरी के अधीन जहाजी बेड़े ने जापानी अकेलेपन की नीति को बुरी तरह झकझोर दिया। इसका नतीजा यह निकला कि जापानी बंदरगाह अमरीकी जहाजों के लिए खोल दिए गए। दो शताब्दियों के एकान्त जीवन के पश्चात जापान का किसी विदेशी शक्ति के साथ संपर्क कायम हुआ। जापान बड़ी तेजी से आधुनिकीकरण की राह पर बढ़ चला। इस घटना का जापानी विकास पर असाधारण प्रभाव पड़ा। जापान ने इस कालावधि में पर्याप्त शक्ति अर्जित कर लिया जिसका परिणाम था चीन और रूस

के साथ उसका युद्ध। जापान ने इस दोनों दैत्याकार देशों को पराजित किया और विश्व बिरादरी में महाशक्तियों की पांत में शामिल हो गया।

4.14 चीन–जापान युद्ध (1895–96 ई.) (First Sino-Japanease War)

युद्ध के कारण

जिस युद्ध के जरिये जापान की अहमियत स्थापित हुई वह चीन–जापान युद्ध था जो १८९४ ई. में प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध के मूल में कोरियाई प्रायद्वीप था। चीन कोरिया को अपना अधीनस्थ राज्य समझता था और इसी हैसियत के चलते प्रजा की तरफ से जब भी कभी विद्रोह होता तो चीन इसे दबा दिया करता था। कोरिया में 1882 और 1884 ई. में भयानक विद्रोह हुए जिसमें जापानी लोगों का भी उत्पीड़न हुआ। इसी क्रम में चीन से जापान ने 1882 ई. में एक सन्धि किया जिसमें जापान को यह अधिकार मिला कि अपनी प्रजा की रक्षा के लिए वह कोरिया में सेना रखे। 1885 ई. में यह निश्चय किया गया कि चीन या जापान एक–दूसरे को सूचना दिए बिना कोरिया में कोई दल न भेजे। आतंरिक विकास के मुद्दे को लेकर 1894 ई. में कोरिया में एक भयानक विद्रोह हुआ जिसे दबाने के लिए चीन और जापान दोनों देशों ने अपनी सेनाएँ भेंजी। लेकिन स्थिति सामान्य नहीं हो पायी। स्वतंत्रता के लिए हो रहे विद्रोह के बावजूद चीन ने कोरिया को स्वतंत्र करने से इनकार कर दिया। जबकि जापान 1875 ई. की संधि के अनुसार कोरिया को एक स्वतंत्र राज्य मान चुका था। इन्हीं परिस्थियों में चीन और जापान के बीच तनाव बढ़ा।

यूरोपीय साम्राज्यवादियों ने कोरिया को चारो तरफ से घेर रखा था। चीन इस स्थिति को नियन्त्रित कर पाने में खुद को अक्षम पा रहा था। इसी समय ईसाई मिशनरियों ने कोरिया में प्रवेश कर धर्म–परिवर्तन का काम व्यापक पैमाने पर शुरू कर दिया। इससे जापान बहुत चिंतित हुआ और उसने कोरियाई प्रदेश में दखल देना शुरू किया। चीन को जापान का हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं था। ऐसे में चीन–जापान संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार हो गयी।

रूस अपना विस्तारवादी क्रम शुरू कर चुका था। उसकी नजर भी कोरिया पर थी। इसी के मद्देनजर रूस ने कोरिया की उत्तरी सीमा के निकट ब्लाडिवास्टक का बन्दरगाह स्थापित किया। धीरे–धीरे उसने कोरिया पर अपना प्रभाव स्थापित करना भी शुरू कर दिया। जापान कोरिया को किसी भी यूरोपीय शक्ति के हाथ में पड़ने देना नहीं चाहता था।

कोरिया में इस समय दो मुख्य दल थे। पहला दल रुढ़िवादी दल था जो चीन समर्थक था जबकि दूसरा दल सुधारवादी दल था जो जापान समर्थक था। ये दल आपस में संघर्षरत रहते थे। जून 1894 ई. में जापान ने कोरियाई सरकार को शासन–प्रशासन में सुधार करने के लिए बाध्य कर दिया। आना–कानी करने पर जापान ने 23 जुलाई 1894 को कोरिया के राजा को बन्दी बना कर सुधारों की घोषणा कर दी। अब कोरिया की नयी सरकार ने चीनी सेनाओं को देश से निकालने का प्रयास किया जिसमें जापान ने उसकी मदद की। कोरिया की तरफ आ रहे एक चीनी जहाज को जापानियों ने पकड़ कर अगस्त 1894 ई. में डुबो दिया और जहाज पर सवार समस्त चीनियों को मार डाला। क्रुद्ध चीन ने अगस्त 1894 ई. में जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

जापान की प्रशिक्षित और एवं संगठित सेना ने चीन के जहाजी बेड़े को पूरी तरह नष्ट कर दिया। जापानी सेना ने अनेक चीनी चौकियों पर अधिकार कर लिया। 1895 ई. तक जापानी सेना कोरिया के दूसरे किनारे स्थित शां–तुंग तक पहुँच गयीं। 15 फरवरी 1895 ई. को वेई हाई–वेई पर अधिकार कर जापानी सेनायें पीकिंग की ओर बढ़ चलीं। हताश चीन ने अंततः अपने एक अधिकारी ली–हुंग–चांग को जापानी प्रधान मन्त्री इतो से सन्धि करने के लिए भेजा। 17 अप्रैल 1895 ई. को शिमोनोसेकी की सन्धि के द्वारा चीन–जापान युद्ध का अंत हुआ।

4.15 शिमोनोसेकी की सन्धि (17 अप्रैल 1895)

शिमोनोसेकी की संधि के अनुसार कोरिया को पूरी तरह से स्वाधीन राज्य स्वीकार कर लिया गया और चीन ने कोरिया पर से अपने सारे दावे छोड़ दिए। हर्जाने के तौर पर जापान ने चीन से लियाओ तुन नदी के पूर्व का मंचूरियाई भाग, एनपिंग और यालू नदी के दक्षिण का भाग, फारमोसा और पैस्कोड़ेर्स द्वीप समूह ले लिया। जापान को पोर्ट–आर्थर भी प्राप्त हो गया। यही नहीं युद्ध हर्जाने के तौर पर चीन ने जापान को बीस करोड़ तायल जापान को देना स्वीकार किया। हर्जाना अदा न होने तक वेई हाई वेई क्षेत्र पर जापान का अधिकार बना रहेगा। चीन के चार नए बंदरगाह शासी, चुंग–किंग, सू–चो, और हैंग–चो जापान के खोल दिए गये। यह भी तय हुआ कि अब जापान चीन के सभी बंदरगाहों से व्यापार–वाणिज्य का काम कर सकेगा।

4.16 जापान की विजय के परिणाम

क्षेत्रफल और आबादी के हिसाब से देखा जाय तो जापान चीन के सामने कहीं भी नहीं ठहरता। फिर भी इस बौने से देश ने दैत्याकार देश को युद्ध में आसानी से पछाड़ दिया। इसके पीछे कुछ कारण थे जिसके बिना पर जापान ने चीन को आसानी से पराजित कर दिया था। जापान ने जब से अपने यहाँ आधुनिकीकरण की शुरुआत की उसके बाद उसकी सेना प्रशिक्षित, सुगठित और राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत सेना के रूप में परिवर्तित हो गयी थी। इन सब कारणों से धीरे–धीरे उसमें प्रसारवादी भावना का विकास होने लगा। अगर जापान की तुलना में चीनी सेना को देखा जाय तो चीनी सेना उसी पुराने ढर्रे पर अब भी चलती चली आ रही थी जो अब बदलते समय के साथ अनौचित्यपूर्ण हो गयी थी। जापानी सेनापति बड़े योग्य, अनुभवी और सैन्य संचालन में प्रवीण थे जबकि चीन में इस समय ऐसे उत्कृष्ट सेनापतियों का पूरी तरह अभाव था। बदलते समय के साथ कदम मिलाते हुए जापानी सेना ने अपने मजबूत नौ–सैनिक बेड़े का विकास कर लिया था जबकि चीन इसमें भी बहुत अधिक पिछड़ गया था। जापानी विजय की एक और महत्वपूर्ण वजह थी। जापान एक लम्बे अरसे से अपनी सैनिक तैयारियों में जुटा हुआ था जबकि चीन युद्ध के लिए बिलकुल भी तैयार नहीं था। युद्ध के लिए रणनीति बनाना महत्वपूर्ण होता है। जापान ने लड़ने के पहले अपनी पूरी रणनीति बना ली थी। वह अपनी रणनीति के अनुसार चला और कहना न होगा कि इसी दमखम पर उसने अपने से कहीं बहुत बड़े देश चीन को युद्ध के मैदान में आसानी से पराजित कर दिया।

4.17 चीन–जापान युद्ध के परिणाम

चीन–जापान युद्ध एशिया की एक युगांतरकारी घटना साबित हुई। इस युद्ध ने जहां एक तरफ चीन की कमजोरी और और उसके राष्ट्रीय पतन को विश्व के सामने स्पष्ट कर दिया। वहीं दूसरी तरफ जापान की शक्ति के बारे में दुनिया को पता चल गया। जापान ने खुले मैदान में चीन को पराजित कर यह दिखा दिया कि वह किसी भी यूरोपीय शक्ति से कम नहीं है। ध्यातव्य है कि अभी तक यूरोपीय शक्तियों ने जापान के साथ असमान सन्धियाँ कर रखीं थीं। जापान की मांग पर यूरोपीय देशों को न केवल इन संधियों को रद्द करना पड़ा बल्कि उन्हें जापान में अपने सारे अधिकार छोड़ने पड़े। अंतरराष्ट्रीय राजनीति में जापान अब यूरोपीय शक्तियों के समकक्ष हो गया। इससे जापानी साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन मिला। उत्साहित जापान अब अन्य राज्यों को भी चुनौती देने लगा और इसी क्रम में उसका रूस से युद्ध हुआ जिसमें रूस की पराजय हुई। कोरिया पर नियंत्रण स्थापित करने के पश्चात चीन द्वितीय विश्व युद्ध तक किसी न किसी तरह घुसपैठ करता रहा।

चीन– जापान युद्ध ने चीन की कमजोरी को विश्व स्तर पर उजागर कर दिया। इस विजय के साथ ही जापान ने सुदूर पूर्व की महान शक्ति होने का गौरव प्राप्त कर लिया। यह गौरव पहले चीन को प्राप्त था। इस युद्ध में चीन एक ऐसे देश से हारा था जो एशियाई होने के साथ–साथ चीनी लोगों की दृष्टि में एक हीन देश था जिसे वे घृणा से 'बौनों का देश' कहा करते थे। इस युद्ध के फलस्वरुप चीन को अपने अधीनस्थ प्रदेश तो गंवाने ही पड़े उसकी प्रादेशिक अखंडता भी भंग हो गयी।

यद्यपि चीन के लिए यह पराजय एक अभिशाप की तरह थी फिर भी इसका परिणाम यह निकला कि चीनियों का अपनी शक्ति के सन्दर्भ में भ्रम टूटा और अपनी कमजोरी का पता चला। अब चीनी लोग सतर्क हुए। उन्होंने इस बात को समझ लिया कि उनकी कमजोरी शासक की कमजोरी की वजह से है और अगर चीन को अपना अस्तित्व कायम रखना है तो उसे अपनी शासन व्यवस्था में सुधार करने के साथ–साथ इस शासक वर्ग से भी निजात पाना होगा। कहना न होगा कि इस युद्ध के परिणाम के आलोक में मांचू शासन की जड़ें बुरी तरह हिल गयीं और थोड़े ही समय पश्चात मांचू राजवंश का पतन हो गया।

चीन–जापान युद्ध की पृष्ठभूमि ही 1902 ई. के आंग्ल–जापान संधि का कारक बनी। इस समय ब्रिटेन की प्रतिद्वंदिता रूस के साथ चल रही थी। जापान को सुदूर–पूर्व की शक्ति के रूप में मान्यता दे कर ब्रिटेन इस क्षेत्र में रूस की गतिविधियों पर नियंत्रण स्थापित करना चाहता था। इसी कड़ी में आंग्ल–जापान सन्धि हुई। यह सन्धि करके ब्रिटेन ने फ्रांस और रूस पर श्रेष्ठता कायम कर लिया।

चीन–जापान युद्ध में ही आगे चल कर होने वाले रूस–जापान युद्ध के बीज छुपे हुए थे। शिमोनोसेकि की सन्धि में परिवर्तन करने के लिए रूस ने जो आक्रामक रवैया अपनाया उससे जापान बड़ा क्षुब्ध हुआ। विजयी होते हुए भी जापान इसका स्वाद महसूस न कर सका जिसकी पूरी जिम्मेदारी रूस पर थी। इसी कारण जापान रूस को अपना शत्रु मानने लगा और उसे सबक सिखाने के अवसर खोजने लगा। कुछ ही वर्षों में जापान ने इस तरह की स्थिति उत्पन्न कर

दी जिससे कि रूस के साथ उसका युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। और अंततः 1905 ई. में रूस–जापान के बीच युद्ध छिड़ गया।

4.18 मंचूरिया संकट

चीन के उत्तरी भाग में स्थित है मंचूरिया। इसका क्षेत्रफल 365000 वर्गमील है। मंचूरिया एक प्रमुख सोयाबीन उत्पादक क्षेत्र था जिसका आयात जापान 1890 ई. से ही करने लगा था। राजनीतिक रूप से मंचूरिया चीनी साम्राज्य का अंग था। मांचू राजवंश भी वस्तुतः मंचूरिया का ही था इसलिए वे इस क्षेत्र में विशेष रूचि रखते थे। 1900 ई. के बाद चीन के विभिन्न क्षेत्रों से लोग यहाँ आकर बसने लगे थे। धीरे–धीरे इनकी संख्या मंचूरियाई लोगों से अधिक हो गयी। 1895 ई. के पश्चात् जापान ने एशिया में अपने साम्राज्यवादी विस्तार का अभियान प्रारम्भ किया। इसी सिलसिले में उसकी नजर मंचूरिया पर भी पड़ी। रूस ने जब मंचूरिया में प्रवेश प्राप्त कर लिया तब जापान अपने को असुरक्षित महसूस करने लगा। लेकिन इसी समय छिड़े रूस–जापान युद्ध के कारण जापान मंचूरिया की तरफ ध्यान न दे सका।

आधुनिकीकरण के पश्चात जापान की स्थितियों में काफी बदलाव आया था। अब अपने नवीन उद्योगों के लिए उसे कच्चे माल की जरूरत थी। अब अपने तैयार माल के लिए उसे बाजार की जरूरत थी। यही नहीं उसकी बढती हुई जनसंख्या के लिए भी उसे भू–भाग की जरूरत महसूस हो रही थी। इन सभी कारणों के मद्देनजर जापान की मंचूरिया में रूचि बढ़ी। प्रथम विश्व युद्ध में सक्रियता के पश्चात जापानी गतिविधियाँ शांत पड़ गयीं और 1920 के दशक में जापान ने साम्राज्यवादी नीति को लगभग छोड़ दिया था लेकिन चीनी एकीकरण की संभावना और महान आर्थिक मन्दी ने जापानी साम्राज्यवाद को एक बार फिर से भड़का दिया। इस समय जापानी शासन में सैनिकवादी तत्वों का ज्यादा प्रभाव था। 1928 ई. के पश्चात चीन के प्रति जापान की नीति आक्रामक होती चली गयी। इसी समय इस क्षेत्र में ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत रूस की घुसपैठ ने भी जापान के इस मंतव्य को और हवा दे दिया।

मंचूरिया को जापानी प्रभाव से बचाने के उद्देश्य से चीन की सेना 1917 ई. में पीली नदी तक पहुँच गयी। मंचूरिया का शासक चीन से सन्धि करने के लिए तैयार हो गया। यह जापान को पसंद नहीं था। इसी समय बम विस्फोट की एक घटना में मंचूरिया का शासक मारा गया। इसके बाद उसका पुत्र चोंग सुएह लियांग गद्दी पर बैठा। लियांग चीन का समर्थक था। जापान ने 12 जुलाई 1928 ई. को उसे चेतावनी दी कि मंचूरिया अगर चीन में मिल गया तो यह जापानी हितों के प्रतिकूल होगा। जापान की चेतावनी के बावजूद दिसंबर 1928 में मंचूरिया विधिवत चीन का अभिन्न अंग बन गया। इस घटना से जापान का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। जापान किसी भी तरह मंचूरिया को चीन से अलग करने के प्रयत्न में लग गया। 17 अगस्त 1931 को जापान ने सैनिक विमानों से देश भर में ऐसे पर्चे गिराए जिनमें लिखा था कि सम्पूर्ण राष्ट्र मंचूरिया में जापानी सुविधाओं से सचेत रहे। चीन भी आत्म–रक्षा की तैयारियों में जुट गया।

जापान को यह भय था कि पश्चिमी देश उसके मंचूरिया विजय का विरोध कर सकते हैं। लेकिन सैनिक अधिकारियों को इसकी भी काट मिल गयी। सैनिक अधिकारियों ने यह शिगूफा छेड़ा कि जापान का अंतिम लक्ष्य चीन नहीं अपितु सोवियत संघ है। और वे चीन के विरुद्ध जो भी कारवाई कर रहे हैं उसका अंतिम

उद्देश्य एशिया को साम्यवाद से बचाना है। सैनिक अधिकारियों ने जैसे सोचा था ठीक वैसे ही पश्चिम के देशों ने उसके इस पवित्र कार्य में सहायता प्रदान किया।

मंचूरिया के मुकडेन नामक स्थान पर 18 सितम्बर 1931 ई. की रात को एक रहस्यमय धमाका हुआ और उसके बाद गोलियाँ चलीं। चूकि इस जगह पर जापानी सैनिक कुछ दिन पहले ही सैनिक युद्धाभ्यास के क्रम में गोलीबारी कर रहे थे अतः किसी का भी ध्यान इस घटना की तरफ नहीं गया। लेकिन जब 19 सितम्बर 1931 की सुबह मुकडेनवासियों ने अपनी आँखें खोलीं तो उन्होंने खुद को जापानी सैनिकों के कब्जे में पाया। जापानी सैन्याधिकारियों ने इसका कारण यह बताया कि चीनी सेना की एक टुकड़ी उस रात को मुख्य रेलवे लाइन उड़ा देने का प्रयत्न कर रही थी। अपने बैरकों में सो रहे दस हजार चीनी सैनिकों को तितर–बितर करके निःशस्त्र कर दिया गया और पूरे क्षेत्र में जापानी सेना तैनात कर दी गयी। बिना किसी रक्तपात के समूचा मुकडेन जापानियों के कब्जे में चला गया। चार दिनों के अन्दर ही मुकडेन के उत्तर में 290 मील के घेरे में स्थित सभी चीनी नगरों पर अधिकार कर लिया। जापानी सेनापति के आदेश पर प्रांतीय चीनी सरकार जिसका नेतृत्व सुए हलियांग कर रहा था, खदेड़ दी गयी। मध्य नवम्बर तक उत्तर मंचूरिया का विशाल भू–भाग जापानियों के कब्जे में आ गया। जापानी सेना अब दक्षिण की तरफ बढ़ी और फरवरी 1932 ई. को चीन–चोप पर कब्जा कर लिया। जापानी सेना चीन की महान दिवार के संगम पर स्थित शान–हाई–क्वान में पहुँच गयी और इस प्रकार समस्य दक्षिण मंचूरिया पर उसका अधिकार हो गया।

मंचूरिया पर जापानी हमले की चीन में तीखी प्रतिक्रिया हुई। जगह–जगह पर दंगे हुए और जापान बहिष्कार बहिष्कार आन्दोलन चलाया गया। जापान से सहानुभूति रखने वाले लोगों का न केवल सामाजिक बहिष्कार किया गया बल्कि कुछ को कैद, जुर्माना और कुछ को तो मौत की सजा तक दी गयी। जापानी हमले ने चीन को राजनीतिक रूप से एकजुट कर दिया था।

शान्ति स्थापना के प्रयासों में लगे हुए नेताओं को इस जापानी हमले से जबरदस्त धक्का लगा। राष्ट्र–संघ के विधान का यह उल्लंघन तो था ही, वाशिंगटन की नौ–राष्ट्रों की संधि का भी यह घोर अतिक्रमण था। दुर्भाग्यवश कोई भी इस अंतरराष्ट्रीय अराजकता को रोकने के लिए आगे आना नहीं चाहता था। चीन को अकेले ही इस संकट का सामना करना था जहाँ शुरू से ही उत्तेजना फैली हुई थी। इसी बीच 18 जनवरी 1932 को शंघाई में पाँच जापानी बौद्ध भिक्षुओं पर चीनियों ने हमला कर दिया जिसमें एक भिक्षु की मृत्यु हो गयी। इस घटना से चीन को सबक सिखाने का एक बहाना मिल गया। जापानी सैनिकों ने 29 जनवरी 1932 ई. को शंघाई में सैनिक कारवाई चालू कर दी। बम बर्षा करके शंघाई के एक भाग को बिलकुल तबाह कर दिया गया। ब्रिटेन की मध्यस्थता के फलस्वरूप जापान ने शंघाई को खाली कर दिया। लेकिन इस सेना को जापान वापस भेजने की बजाय मंचूरिया भेज दिया गया ताकि मंचूरिया में जापानी आधिपत्य को मजबूत किया जा सके। अब जापानियों ने मंचूरिया के लिए एक प्रांतीय सरकार स्थापित करने का उपक्रम किया। 19 फरवरी 1932 ई. को यह निश्चय किया गया कि चीन के पदच्युत प्राचीन राजवंश के अंतिम राजा यू–ची के नेतृत्व में 'मंचू–काओ' नामक गणराज्य स्थापित किया गया। 9 मार्च 1932 को यह राज्य स्थापित कर दिया गया और जापान ने तुरंत ही इस राज्य को अपनी मान्यता प्रदान कर दिया। मंचू–काओ नाम–मात्र का पृथक और स्वतन्त्र राज्य था। वस्तुतः यह जापानियों की कठपुतली सरकार थी।

चीन जापान के विरुद्ध राष्ट्र–संघ में गया। जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण को आत्म–रक्षा में की गयी कारवाई बताया। राष्ट्र संघ ने मंचूरिया में लिटन आयोग को भेजा जिसने जापान को आक्रामक कारवाई का दोषी पाया। 2 अक्टूबर 1932 ई. को लिटन रिपोर्ट प्रकाशित की गयी जिसमें यह कहा गया कि मंचूरिया में चीन के विरोध में कोई जन–आन्दोलन नहीं है और मंचूरिया को चीन से अलग कर देना घातक होगा। चीन–जापान के सम्बन्ध बहुत खराब हो गए हैं और इसे सुधारने के लिए राष्ट्र संघ को प्रयास करना चाहिए। 6 दिसंबर 1932 को लिटन आयोग की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए राष्ट्र संघ की विशेष बैठक आयोजित की गयी जिसमें चीन–जापान के बीच समझौता कराने का प्रयास किया गया। लेकिन जब 1 जनवरी 1933 को जापान ने मंचूरिया पर पुनः आक्रमण कर दिया तब शान्ति के प्रयासों को गहरा आघात लगा। राष्ट्र संघ की असेम्बली ने इस सारे मामले को 19 व्यक्तियों की एक समिति को सौंप दिया जिसे समझौते के लिए एक योजना तैयार करने का काम सौंपा गया। समिति ने यह सिफारिश की कि चीन और जापान राष्ट्र–संघ समिति के तत्वावधान में जापानी सेना को हटा लेने और चीनी प्रभुसत्ता के अंतर्गत मंचूरिया में स्वायत्त शासन की स्थापना के लिए बातचीत शुरू कर दे। राष्ट्र संघ ने अपने सदस्य राष्ट्रों से अनुरोध किया कि वे मंचू–कुओ सरकार को मान्यता न दे। चीन और जापान ने एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता का सम्मान करने का वादा किया। लेकिन हकीकत में जापान इसका उल्टा कर रहा था और चीनी प्रदेशों पर अपना आधिपत्य जमाने की कोशिश अब भी कर रहा था।

17 फरवरी 1933 को समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। और इसे राष्ट्र संघ की असेम्बली ने बहुमत से स्वीकार कर लिया। इसके विरोध में जापानी प्रतिनिधि यह कहते हुए सदन छोड़–कर चला गया कि जापान के लिए अब राष्ट्र संघ का सदस्य बने रहना असंभव है। जापान ने राष्ट्र संघ की सदस्यता का परित्याग कर अपनी नाराजगी का खुलेआम इजहार कर दिया।

अब जापान की नजर चीन के सामरिक महत्त्व के क्षेत्र लुकाओ–चियाओ पर पड़ी और इस पर अधिकार करने के लिए जापानी सेना ने 8 जुलाई 1937 ई. को हमला कर दिया। इसके साथ ही चीन–जापान के बीच युद्ध का दूसरा चरण शुरू हो गया। जापानी सेना आगे बढती गयी और 1937 ई. के अंत तक नानकिंग पर जापान का अधिकार स्थापित हो गया। अब चीन के समूचे पूर्वी हिस्से पर जापान काबिज हो चुका था। इस तरह इस समय का चीन दो भागों में बंट गया। स्वतन्त्र चीन और जापान अधिग्रहित चीन। एक बार फिर चीन ने राष्ट्र संघ में अपील की लेकिन शक्तिहीन राष्ट्र संघ कुछ भी कर पाने में सक्षम नहीं था। जापानी सेना निरंतर आगे बढती चली गयी। चीन ने अपना संघर्ष जारी रखा। इसी समय द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो गया था और और चीन–जापान के बीच का युद्ध इस विश्व युद्ध का एक हिस्सा बन गया। चीन जापान के बीच युद्ध की यह स्थिति 1945 ई. तक चलती रही। 1945 ई. में जापान के पराजित होने के पश्चात ही चीन को अपने भू–भागों पर अधिकार स्थापित करने का अवसर मिल पाया।

4.19 मंचूरिया काण्ड का महत्त्व

मंचूरिया की घटना केवल चीन जापान के बीच की न हो कर पूरे विश्व की प्रमुख घटना बन गयी जिसने आगे चल कर फासीवादी ताकतों को काफी बल प्रदान किया। इतिहासकार प्रोफेसर ई. एच. कार ने इस घटना को प्रथम विश्व युद्ध के बाद की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना माना है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद यह ऐसा

पहला मामला था जिसमे आक्रामक कारवाई का सहारा लिया गया और जिसमें आक्रान्ता शक्ति को अपूर्व सफलता भी हासिल हुई। अगर दुनिया के सभी राष्ट्र मिल कर जापान की कारवाई का विरोध करते तो जापान के लिए ऐसा कर पाना नामुमकिन होता। लेकिन यूरोप के कुछ शक्तिशाली राष्ट्र जापान के इस झांसे में फँस गए कि उसका अंतिम लक्ष्य सोवियत संघ और साम्यवाद को रोकना है। जापानी आक्रमण को रोकने में राष्ट्र–संघ की असफलता से सता की राजनीति (च्वूमत च्वसपजपबे) की शुरुआत हुई। इसी समय महान आर्थिक मन्दी से विश्व के प्रायः सभी राष्ट्र दुष्प्रभावित थे और वे तत्काल ही दूसरा विश्व युद्ध नहीं चाहते थे। वे यथासंभव उससे बचना चाहते थे। एक और बात थी चीन एक एशियाई देश था और जापान भी। इस तरह यूरोपीय शक्तियों की नजर में यह एशिया का अंदरूनी मामला था। इससे भला उनको क्या क्षति थी। जापान की आर्थिक नाकेबंदी कर उसपर लगाम लगाई जा सकती थी लेकिन भयावह आर्थिक मन्दी के दौर में ऐसा करना एक और संकट को बुलावा देना होता। ऐसे में जापान को कोइ भी दण्ड नहीं दिया गया। जापान खुलेआम मनमानी करता चला गया और यूरोपीय देश उसके प्रति तुष्टिकरण की नीति अपनाए रहे। इससे उसका हौंसला बढ़ता चला गया और अब उसने इटली और जर्मनी के साथ मिलकर 'रोम–बर्लिन–टोकियो धुरी' का निर्माण किया और पश्चिमी शक्तियों खासकर ब्रिटेन के लिए चुनौती बन गया।

4.20 रूस–जापान युद्ध (1905 ई.)

4.21 युद्ध के कारण

जापान और रूस के बीच तनाव की वजह बना मंचूरिया और कोरिया। रूस आर्थिक रूप से समृद्ध मंचूरिया को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाना चाहता था। 1894 ई. के चीन–जापान युद्ध के पश्चात रूस जापान की साम्राज्यवादी शक्ति से चिंतित हुआ और चीन का पक्ष लेने लगा। इसी क्रम में उसने लियाओ तुंग प्रदेश पर से जापानी अधिकार को हटाने के लिए जापान को बाध्य किया था। कुछ समय पश्चात ही रूस और चीन में एक संधि हुई जिसके अनुसार रूस को मंचूरिया में ब्लादिवास्तक तक एक हजार मील लम्बी रेलवे लाइन बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ। पोर्ट आर्थर और उसके समीप का क्षेत्र पचीस वर्ष के लिए रूस को पट्टे पर मिला था जिसे रूस ने अब प्रशांत महासागर का सबसे बड़ा नौसैनिक अड्डा बना दिया था। इससे इस क्षेत्र में रूस की स्थिति काफी मजबूत हो गयी थी। मंचूरिया में रेल लाइन के निर्माण के लिए बहुत से रुसी इस क्षेत्र में आ रहे थे। यही नहीं इन रेलवे लाईनों की सुरक्षा के लिए रूस की एक सेना भी इस क्षेत्र में स्थायी रूप से रहने लगी थी।

चीन के बॉक्सर विद्रोह के पश्चात रूस ने इस क्षेत्र में अपने नियंत्रण को और अधिक मजबूत करना शुरू कर दिया। इसी क्रम में उसने अपनी और सेनाओं को मंचूरिया में भेज दिया और इस तरह इस क्षेत्र में रूस ने एक तरह से अपना सैनिक शासन स्थापित कर लिया। हांलाकि बढ़ते अंतरराष्ट्रीय दबावों के मद्देनजर रूस ने यह कहा कि मंचूरिया में शान्ति स्थापित होते ही वह अपनी सेनायें वापस बुला लेगा लेकिन बॉक्सर विद्रोह के पश्चात भी रूस ने अपना सैनिक जमावड़ा बनाये रखा। और अपने राजनीतिक एवं सैनिक प्रभाव को और अधिक बढाने में संलग्न हो गया।

निकटवर्ती देश होने के नाते जापान मंचूरिया में रूस के बढ़ते प्रभाव से चिन्तित हुआ। जापान स्वयं मंचूरिया पर अपना आधिपत्य जमाने के मंसूबे बना रहा था। वह अपनी बढती हुई आबादी को मंचूरिया में ही बसाना चाहता था। चीन–जापान युद्ध के बाद जापान ने चीन के जिस लियाओ–तुंग प्रदेश पर कब्जा जमाया था उसके मूल में भी यही बात थी लेकिन रूस के प्रबल प्रतिरोध के चलते जापान को इस क्षेत्र से पीछे हटाना पड़ा था। जापान इस बात को भूल नहीं पाया था और अब वह रूस से बदला लेने के बहाने तलाशने लगा।

मंचूरिया के बाद कोरिया वह जगह थी जिसे लेकर जापान और रूस के बीच मनो–मालिन्य बढ़ा। चीन से युद्ध के पश्चात जापान ने कोरिया पर अधिकार जमाने की कोशिश की, जिसका प्रतिवाद कोरिया के राजा ने किया। जापान ने राजा की हत्या का षडयन्त्र रचा। लेकिन राजा को इसकी भनक लग गयी और वह रुसी सेना की मदद से पलायन करने में सफल रहा। इससे जापान रूस से बहुत अधिक नाराज हुआ। लेकिन समय की नजाकत को देखते हुए जापान ने कोरिया के प्रश्न पर 1896 ई. में रूस से एक समझौता कर लिया। इस समझौते के अनुसार यह तय हुआ कि दोनों देश कोरिया से अपनी सेनाएँ वापस बुला लेंगे और कोरिया के आर्थिक विकास के लिए दोनों देश मिल–जुल कर कोरिया की मदद करेंगे। लेकिन इस समझौते के बावजूद दोनों के बीच शंका निरन्तर बनी हुई थी।

1903 ई. में जापान ने रूस के सामने सन्धि का एक दूसरा मसौदा रखा। इसमें निम्नलिखित प्रस्ताव किये गए।

1. रूस और जापान दोनों मिल कर कोरिया और चीन की स्वतन्त्रता की गारंटी देंगे।

2. रूस इस बात को स्वीकार करे कि कोरिया में जापान का विशेष स्वार्थ है और इस कारण उसे कोरिया में अपने आर्थिक हितों को विक्सित करने का अधिकार मिले।

3. जापान मंचूरिया में रूस के विशेष प्रभाव क्षेत्र को स्वीकार करे और उसे वह सब कुछ वहां करने दे जो वह स्वयं कोरिया में करना चाहता है।

रूस कोरिया में जापान के आर्थिक हितों को स्वीकार करने के लिए तो सहमत था लेकिन वह जापान के राजनीतिक और सैनिक प्रभुत्व स्थापित करने के खिलाफ था। इसके साथ ही रूस चाहता था कि जापान मंचूरिया में उसके आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक प्रभाव को बिना किसी हीला–हवाली के स्वीकार करे। दोनों के बीच मतभेद कुछ इस तरह के थे जिसका निर्णय युद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय के जरिये संभव नहीं हो सकता था। जापान ने अपने आधुनिकीकरण के पश्चात दुनिया की एक बेहतरीन सेना संगठित कर ली थी। उसका उत्साह अब अपने चरम पर था और वह बेखौफ होकर युद्ध के जरिये रूस से फैसला कर लेना चाहता था। दुनिया की इस समय की महान हस्ती ब्रिटेन का हाथ पहले से ही जापान की पीठ पर था। इन्हीं परिस्थितियों में फरवरी 1904 ई. में दोनों देशों के बीच की कूटनीतिक बातचीत स्थगित हो गयी। और बिना युद्ध की घोषणा किये ही जापान ने रूस पर 5 फरवरी 1905 ई. को आक्रमण कर दिया।

पहले तो ऐसा लगा कि बौने से देश जापान ने दैत्याकार रूस पर आक्रमण कर अपनी शामत बुला ली है। दोनों के बीच कोई समानता हो भी नहीं सकती थी। लेकिन जापान ने सोच–समझ कर अपने कदम उठाये थे। जापान युद्ध के लिए

भलीभांति तैयार था। रूस और जापान के बीच जहाँ भी जहाँ–जहाँ लड़ाई हुई प्रायः हरेक जगह पर जापान की सेनाएँ जीतती चली गयी। रूस हर जगह बुरी तरह पराजित होता चला गया। अंततः अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट की मध्यस्थता के फलस्वरूप इस युद्ध का समापन हो गया। रूस किसी भी तरह लड़ाई रोकना चाहता था। अन्ततः 5 सितम्बर 1905 को पोर्ट्समाउथ की संधि के द्वारा युद्ध का अन्त हो गया।

4.22 पोर्ट्समाउथ की सन्धि (5 सितम्बर 1905)

पोर्ट्समाउस की सन्धि के द्वारा निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गयी।

1. कोरिया में जापान के प्रधान राजनीतिक, सैनिक तथा आर्थिक हितों को मान्यता प्रदान की गयी।
2. रूस ने अपने अधीनस्थ लियाओ–तुंग प्रदेश के पट्टे को जापानियों को हस्तान्तरित कर दिया और दक्षिण मंचूरिया की अपनी रेल व्यवस्था और खानों के विकास का विशेषाधिकार जापान को दे दिया।
3. रूस को अपने सखालीन क्षेत्र के दक्षिणी आधे भाग काराफूतो को जापान को दे दिया।
4. रूस ने अपने द्वीपों के उत्तरी और पश्चिमी समुद्रों में मछली पकड़ने के कुछ विशेषाधिकार जापान को सौंप दिया।
5. दोनों देश परस्पर युद्धबंदियों पर व्यय की गयी धनराशि देने पर सहमत हो गए, जिसमें जापान को रूस की अपेक्षा लगभग दो करोड़ डालर अधिक प्राप्त हुए।
6. मंचूरिया को दो प्रभाव क्षेत्रों में बाँट दिया गया। उत्तरी मंचूरिया पर रूस और दक्षिण मंचूरिया पर जापान का प्रभाव स्थापित हो गया।
7. यह तय हुआ कि रूस और जापान मंचूरिया में अपनी–अपनी रेलवे लाईनों का उपयोग केवल व्यावसायिक और व्यापारिक प्रयोजन के लिए करेंगे, सैनिक प्रयोजनों के लिए नहीं।

4.23 रूस–जापान युद्ध के परिणाम और महत्त्व

जापान को इस युद्ध में उम्मीद से अधिक प्राप्त हुआ। इस युद्ध के बाद जापान की गणना दुनिया के शक्तिशाली राष्ट्रों में की जाने लगी। जापान के उत्साह और सामरिक दक्षता का प्रदर्शन दुनिया में हो चुका था। इस युद्ध में उसने अपने प्रमुख दुश्मन को पराजित कर अपना लोहा मनवा लिया था। रूस बिलकुल पस्त हो चुका था। पराजय के चलते वहाँ आन्तरिक कलह उत्पन्न होने लगे और राजनीतिक क्रान्ति की तैयारी होने लगी। अपने बढ़ते हुए प्रभाव का इस्तेमाल कर जापान ने ब्रिटेन से आंग्ल–जापानी समझौते में संशोधन करने की माँग की जिसे ब्रिटेन ने स्वीकार कर लिया। इससे जापान की स्थिति और भी मजबूत हो गयी। इस विजय से उसके साम्राज्यवादी दर्शन का उभार हुआ और इसे हकीकत में बदलते हुए जापान ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर लिया।

जापान को इस युद्ध से इतने अधिक फायदे हुए जिसके बारे में उसने कभी सोचा तक नहीं था। इसके फलस्वरूप पूर्वी एशिया में रूस का विस्तार रुक गया। मंचूरिया पर उसका नाम–मात्र का अधिकार रह गया। कोरिया पर से रूस के प्रभाव का अन्त हो गया। इसका लाभ उठा कर 1910 ई. में कोरिया के उत्तरी हिस्से को जापान में अपने साम्राज्य में मिला लिया।

रूस–जापान युद्ध के फलस्वरूप साम्राज्यवादी शक्तियों के चीन के बँटवारे के मंसूबे पर रोक लग गयी। चीन को आपस में बाँटने को लेकर साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। रूस–जापान युद्ध इसी की परिणति था। इस युद्ध के पश्चात साम्राज्यवादी शक्तियों ने अब चीन में उन्मुक्त द्वार की नीति अपनाया। इस प्रकार रूस जापान युद्ध ने चीन के बँटवारे को परोक्ष रूप से तो रोका ही साथ ही उन्मुक्त व्यापार की नीति को पर्याप्त प्रोत्साहन भी दिया।

रूस–जापान युद्ध प्रकारान्तर से चीन के लिए वरदान साबित हुआ। इस युद्ध में पराजय ने चीन की आँखें खोल दीं। चीनियों का मिथ्या अभिमान चूर–चूर हो गया। उन्हें यह सबक मिला कि अगर आधुनिकीकरण का सहारा लेकर जापान जैसा छोटा सा देश ऐसी विजय प्राप्त कर सकता है तो फिर वे क्यों नहीं कर सकते। अब चीनी लोग जापान की तरह अपने देश को भी उन्नत और शक्तिशाली राज्य बनाने की बात सोचने लगे। चीनी देशभक्त यह जानते थे कि मंचू राजवंश के रहते चीन में परिवर्तन नहीं हो सकता। इसलिए चीन में एक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ और 1911 ई. की चीनी क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार हुई। इसी आलोक में मांचू राजवंश का अन्त भी नजदीक आ गया।

जापान की इस विजय से एशियावाद के नारे का जन्म हुआ। एशिया में 'एशिया एशियावालों के लिए है' का नारा बुलन्द हुआ। इससे एशियाई लोगों में राष्ट्रवाद की भावना का संचार हुआ। अभी तक एशिया पर यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों का आधिपत्य था। यूरोपीय शक्तियाँ खुद को सभ्य राष्ट्र बताते हुए यह घोषित करते नहीं चूकती थीं कि उनके कन्धों पर असभ्य एशियाई राष्ट्रों को सभ्य बनाने का भार है। एशियाई लोगों की मानसिकता एवं मनोबल पूरी तरह से पस्त हो चुकी थी। पश्चिमी शिक्षा और सभ्यता के आगे एशियाई लोग अपने को हीन महसूस करने लगे। उन्हें भी अब यह लगने लगा था कि वे यूरोपीय शक्तियों का सामना नहीं कर पायेंगे। इस हताशा और निराशा भरी स्थिति में जापान की रूस पर विजय ने एशियाई लोगों में आशा और उम्मीद का सूत्रपात कर दिया। एशिया के लोग भी यह अनुभव करने लगे कि पाश्चात्य देशों की नवीन सभ्यता एवं संस्कृति को अपना कर वे भी पश्चिमी शक्तियों का भलीभांति सामना कर सकते हैं और उनकी गुलामी से मुक्ति पा सकते हैं। जापान की विजय ने एशियाई लोगों की यह धारणा कि पश्चिमी शक्तियाँ अपराजेय हैं, को खण्डित कर दिया। भारत जैसे देश में भी जापानी विजय से नवचेतना का संचार हुआ और यहाँ के निवासी जोरो–शोर से ब्रिटिश शक्ति का प्रतिरोध करने लगे। हर गुलाम एशियाई देश में स्वतंत्रता के लिए लोग आगे आकर प्रयत्न करने लगे। इतिहासकार हंस कोहेन ने अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ नेशनलिज्म इन द ईस्ट' में जापानी विजय के बारे में उचित ही लिखा है दृ 'जापान जैसे छोटे से देश ने सैनिक शक्ति में रूस जैसे अत्यंत शक्तिशाली राष्ट्र को भी पराजित कर दिया, जो सदियों से निरंतर एक के बाद एक दुसरे एशियाई राष्ट्र को पराजित करने में संलग्न था। इस वास्तविकता ने एशिया की राजनीतिक विचारधारा में एक ऐसी क्रान्ति उत्पन्न कर दी क्योंकि पहली बार ही तो ऐसा आभास मिला कि यूरोपीय देशों की विजयपूर्ण प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो गया।'

4.24 सारांश

आपने इस इकाई में यह जाना कि सुदूर पूर्व की समस्या क्या है? इसी क्रम में हुए दो अफीम युद्धों के बारे में आपने जानकारी प्राप्त की। इसी इकाई में हमने बॉक्सर आन्दोलन के बारे में भी पढ़ा जिसके चलते साम्राज्यवादी शक्तियों के चीन को विभाजित करने के मंसूबे का खात्मा हो गया। इसी अध्याय में हमने चीन जापान युद्ध और रूस–जापान युद्ध के बारे में भी अध्ययन किया। इसी इकाई में मंचूरिया संकट ने किस तरह राष्ट्र संघ के निकम्मेपन को उजागर कर दिया और पूरी दुनिया में जापान का उग्र साम्राज्यवादी चेहरा सामने आया इसके बारे में भी हमने विस्तार से जानने का प्रयत्न किया।

4.25 बोध प्रश्न

(1) द्वितीय अफीम युद्ध कब हुआ?

(अ) 1856–1860 ई. (ब) 1840– 1842 ई.

(स) 1850–1852 ई. (द) 1860–1862 ई.

(2) बॉक्सर आन्दोलन की असफलता के सन्दर्भ में निम्नलिखित में से क्या एक सत्य नहीं है?

(अ) यह विद्रोह जिस तेजी से शुरू हुआ उसी तेजी से दबा दिया गया।

(ब) बॉक्सर विद्रोहियों को सम्पूर्ण चीनी जनता का समर्थन नहीं मिला।

(स) मांचू राजवंश ने अवसरवादिता का परिचय नहीं दिया।

(द) चीनी प्रान्तों के अनेक सूबेदारों ने विद्रोहियों का साथ दिया।

(3) चीन में खुले दरवाजे की नीति का प्रतिपादन किस देश ने किया?

(अ) रूस (ब) जापान

(स) ब्रिटेन (द) अमरीका

(4) मंचूरिया समस्या पर एक आलेख लिखिए?

(5) रूस–जापान युद्ध के क्या परिणाम निकले?

4.26 कठिन शब्दावली

कैण्टन–ट्रेड – 1757 ई. तक कैण्टन ही विदेशी व्यापार का एकमात्र केन्द्र था। चीनी आदेशों के अनुसार व्यापारी यहाँ वर्ष भर नहीं ठहर सकते थे। व्यापार का समय समाप्त होने पर उन्हें मैकाय लौट जाना पड़ता था। कैण्टन में विदेशी अपना परिवार नहीं ले जा सकते थे जिससे कि वे यहाँ पर स्थायी रूप से बस न सकें। व्यापार की शर्तें चीनियों द्वारा ही तय की जाती थीं। विदेशी व्यापारियों के ऊपर चुंगी, यातायात कर तथा आयात–निर्यात आदि कर अधिक और अनिश्चित थे। इस आय का अधिकाँश भाग प्रान्तीय अधिकारियों की निजी सम्पत्ति बन जाता था। राजधानी पीकिंग तक बहुत ही कम हिस्सा पहुँच पाता था।

को–हांग – व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने और उससे विशेष लाभ प्राप्त करने के लिए 1702 ई. में चीनी दलाल 'एम्परर मर्चेंट' कायम किया गया। इसी क्रम में 1720 ई. में को–हांग की स्थापना की गयी जो 1842 ई. तक जारी रही। वस्तुतः को–हांग तेरह चीनी व्यापारियों की एक संयुक्त संस्था थी जो विदेशी व्यापारियों तथा चीनी पदाधिकारियों के बीच मध्यस्थ का काम करती थी। विदेशी फैक्ट्रियों, चीनी वायसराय, गवर्नर और मजिस्ट्रेट के बीच समस्त बातचीत इसी के माध्यम से होती थी। चीन के दूसरे व्यापारी भी को–हांग के मार्फत ही व्यापार कर सकते थे। इस प्रकार चीन के समस्त आयात–निर्यात पर को–हांग का ही पूर्ण अधिकार था। सरकारी अधिकारियों को ये लोग रिश्वत दे कर संतुष्ट कर लिया करते थे।

मांचू राजवंश – इसे चिंग राजवंश भी कहा जाता था। इस राजवंश ने १६४४ ई. से 1911 ई. के बीच चीन में राज्य किया।

देशोत्तर अधिकार (Extra Territtorial Rights) : चीन की भूमि पर रहने वाले लोग (व्यापारी) चीनी कानून के अधीन थे। उनके किसी भी अपराध के निर्णय और दण्ड के लिए वे चीनी न्यायालय के निर्णयों के अनुसार दण्ड भोगते थे। विदेशी लोग चीनी कानून को अमानवीय मानते थे। चीन में प्रत्येक व्यक्ति के सामूहिक दायित्व का सिद्धांत प्रचलित था जबकि पश्चिमी देशों में व्यक्ति के व्यक्तिगत अधिकारों की मान्यता थी। ब्रिटिश व्यापारी हमेशा इस बात पर बल देते थे कि उनके अपराध का फैसला उनके देश की न्याय प्रणाली के अनुसार होना चाहिए। इसी मुद्दे पर चीन और विदेशियों के बीच कई बार तनाव की स्थिति व्याप्त हुई। किन्तु चीन हमेशा अपनी बात पर अटल रहा। अंततः चीनी सरकार ने देशोत्तर व्यवस्था को स्वीकार कर लिया जिसके अनुसार ब्रिटिश लोगों को चीन की भूमि पर भी अपने देश इंग्लैंड की कानून–व्यवस्था के अनुसार दण्ड मिलने लगा। इसी अधिकार को 'देशोत्तर अधिकार' की संज्ञा दी गयी।

4.27 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (अ), 2. (स), 3. (द)

4.28 आवश्यक पुस्तकें

- Brinton, Christopher Wolff Winks, A History Of Civilization] New Jersy, 1984
- Chamberlain, Japan Over China
- Lattourette, K- S-, A Short History Of For East, The History Of Japan
- Stimson, H- W-, The Far Eastern Crisis
- Vinacke, H-, The United States In The Far East, A History Of The Far East In The Modern Times
- क्लाईड, पॉल हिबर्ट, (अनु.– यतेन्द्र भटनागर),सुदूर पूर्व, नयी दिल्ली, 1987
- वर्मा, दीना नाथ, अंतरराष्ट्रीय सम्बन्ध, नयी दिल्ली, 1991य विश्व इतिहास का सर्वेक्षण (1500–1950), पटना, 1991
- हेजन, (अनु.–सत्यनारायण दुबे), आधुनिक यूरोप का इतिहास, दिल्ली, 1979

इकाई–5 स्पेन का गृहयुद्ध

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 स्पेन के गृह युद्ध के कारण

5.3 स्पेन की राजनीतिक स्थिति

5.4 मोरक्को का विद्रोह

5.5 प्रीमो दि रिवेरा का आधिपत्य

5.6 फ्लांज आन्दोलन

5.7 राजनीतिक अस्थिरता और गणतन्त्र की स्थापना

5.8 सोशलिस्ट दल का विद्रोह

5.9 पापुलर फ्रंट का गठन और सेना का विद्रोह

5.10 अधिनायकवादी शक्तियों द्वारा विद्रोही फ्रैंकों का सहयोग

5.11 गणतान्त्रिक सरकार को अपेक्षाकृत मदद का न मिल पाना

5.12 जनरल फ्रैंको की महत्वाकांक्षा

5.13 फ्रैंको का सत्तासीन होना

5.14 स्पेन के गृह युद्ध के परिणाम

5.15 सारांश

5.16 बोध प्रश्न

5.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.18 उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे कि

- ❖ स्पेन के गृह युद्ध के कारण क्या थे?
- ❖ जनरल फ्रैंको किस तरह स्पेन की गद्दी पर सत्तासीन हुआ?
- ❖ स्पेनिश गृह युद्ध के क्या परिणाम निकले?
- ❖ स्पेनिश गृह युद्ध के अंतरराष्ट्रीय आयाम क्या थे?

5.1 प्रस्तावना

प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के बीच स्पेन का गृह युद्ध ऐसा मामला था जो स्पेन से जुड़े होने के बावजूद अंतरराष्ट्रीय महत्व का था। स्पेन की तरफ फासीवादी शक्तियों की जो नजर लगी थी उसका एक वैश्विक प्रतिरोध किया गया जिसमें विभिन्न देशों के स्वयंसेवकों ने स्वतःस्फूर्त ढंग से भाग लिया। लेकिन पश्चिमी देशों की तुष्टिकरण की नीति के चलते गणतांत्रिक सरकार की पराजय हुई और विद्रोही फ्रांसिस्को फ्रैंको सत्तासीन हो गया। फ्रैंको की विजय को फासीवादी ताकतों ने अपनी विजय माना और अब ये ताकतें निडर हो कर द्वितीय विश्वयुद्ध की तैयारी में लग गयीं। इस इकाई में हम इन्हीं बिन्दुओं पर विस्तार से दृष्टिपात करने का प्रयास करेंगे।

प्रथम विश्व युद्ध ने जाने–अनजाने दुनिया के सभी देशों को अत्यन्त गहराई से प्रभावित किया था। स्पेन एक ऐसा ही देश था। यूरोपीय महाद्वीप के इस देश का एक शानदार अतीत रहा है और एक तरह से यूरोप में महाशक्ति बनने की शुरुआत इसी देश ने की थी। प्रथम विश्व युद्ध में स्पेन सक्रिय नहीं था। युद्ध के दिनों में बढ़ी हुई जरूरतों के अनुरूप स्पेन का माल पूरे यूरोप में बिकता था जिससे कि यह देश आर्थिक रूप से लगातार समृद्ध होता चला गया। लेकिन युद्ध समाप्त होने के बाद दुनिया में धीरे–धीरे जो आर्थिक मन्दी छाई उसकी धुंध का शिकार स्पेन भी हुआ। कहना न होगा कि यूरोप के अपने पड़ोसियों और अमरीका की तरह स्पेन भी आर्थिक संकट में पड गया। युद्ध समाप्त होने के साथ ही कारखानों के सामानों की खपत कम हो होने लगी जिससे मजदूर बेकार हो गए। कार्यरत मजदूरों की मजदूरी भी घटायी गयी जिससे उनमें असंतोष फैलने लगा। इसी समय रूस में साम्यवादी सरकार की स्थापना से मजदूरों का हौंसला बढ़ा और वे अपने अधिकारों के प्रति और सन्नद्ध हो गए। स्पेनिश मजदूरों ने भी हड़ताल और प्रदर्शन शुरू कर दिया। मजदूरों में साम्यवादी विचारधारा का प्रसार होने लगा और वे बड़ी तेजी से साम्यवाद की तरफ आकर्षित होने लगे। पूंजीपतियों और साम्यवादियों के बीच तनाव बदने लगा। बड़ी तेजी से स्पेन गृहयुद्ध की तरफ बढ़ता जा रहा था। दूसरी तरफ इसी समय के यूरोप के कुछ देशों में फांसीवादी सरकारों की स्थापना हुई। फांसीवादी विचारधारा लोगों को ऐसे सपने दिखाती थी जो देखने–सुनने में आकर्षक तो लगती थी लेकिन वह एक ऐसे मुकाम पर देश को ले जा कर खड़ा कर देती थी जहां तबाही के मंजर के अलावा और कुछ भी नहीं होता था। यह सपना ऐसा होता था जो सुखद लगता था और देश की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने के झूठे दावे रचता था। इसीलिए लोगों को तेजी से आकृष्ट करता था। लेकिन जिस सपने की बुनियाद में ही असमानता हो, जिस सपने की बुनियाद में ही कट्टर श्रेष्ठता बोध हो वह कैसे और कहाँ यथार्थ की सख्त जमीन पर दूर तक जा पाता है। इस समय का स्पेन भी फांसीवाद के इस सुहाने लेकिन भ्रामक सपने से आप्लावित हुआ।

5.2 स्पेन के गृहयुद्ध के कारण

जब भी किसी देश में राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति होती है, वह देश अपने को गृह युद्ध के मुहाने पर खड़ा पाता है। स्पेन ऐसे ही मुहाने पर खड़ा था। स्पेन की तत्कालीन सरकार आर्थिक मन्दी से उत्पन्न स्थिति से कारगर तरीके से निपटने में असफल रही। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों का भरोसा वर्तमान राजनीतिक

नेतृत्व पर से पूरी तरह से उठ गया। इसी समय मजदूरों की हड़ताल और धरना–प्रदर्शनों से भी स्पेन में तनाव का वातावरण बन गया था। इसी क्रम में देश में दंगे शुरू हो गए और अस्थिरता व्याप्त हो गयी। इस समय के यूरोप में इटली, जर्मनी, और पुर्तगाल फासिस्ट विचारधारा से अधिक प्रभावित थे। ऐसे में इसका प्रभाव स्पेन पर भी पड़ा। स्पेन में साम्यवादी और फासिस्ट शक्तियों के बीच तकरार बढ़ी और देश गृह युद्ध की तरफ बढ़ चला। स्पेन के गृह युद्ध के लिए अनेक कारक समवेत रूप से उत्तरदायी थे जो इस प्रकार हैं।

5.3 स्पेन की राजनीतिक स्थिति

कहने के लिए स्पेन में इस समय वैध राजतन्त्र था जिसका नेतृत्व स्पेनिश सम्राट अलफांसो तेरहवां कर रहा था। लेकिन सत्ता और शासन में सम्राट की ही मनमानी चलती थी। सम्राट के समर्थक अधिकारी और नौकरशाह सत्ता को अपने हित का साधन बनाने में तनिक भी नहीं हिचकते थे। वैध राजतंत्र के बावजूद लोकतन्त्र का नामो–निशान तक नहीं था। इससे इस समय के स्पेन में अतिक्रान्तिकारी तत्वों का विकास हुआ जो स्पेन में राजसत्ता के खात्मे के लिए प्रयास करने लगे। दूसरी तरफ प्रतिक्रयावादी तत्व राजा के हाथों में सत्ता को अधिकाधिक केन्द्रित किये जाने के पक्षधर थे। प्रथम विश्व युद्ध के समय स्पेन एक तटस्थ राष्ट्र था जिसका फायदा भी उसे मिला। एक ओर व्यावसायिक रूप से स्पेन ने इस समय काफी प्रगति की तो दूसरी ओर उसका युद्ध खर्च बिलकुल भी नहीं था। लेकिन युद्ध खत्म होते ही हालात तेजी से बदलने लगे। लड़ाई के सामानों की मांग काफी हद तक घट गयी जिसका असर कारखानों पर पड़ा। कारखाने के मालिक मजदूरों की छंटनी करने के साथ–साथ मौजूदा मजदूरों के पारिश्रमिक में भी कटौती करने लगे। मजदूरों को ऐसा लगा कि उनके साथ अन्याय हो रहा है। साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित मजदूर हड़तालें और धरना प्रदर्शन करने लगे। स्पेन में बड़ी तेजी से साम्यवादी विचारों का प्रसार होने लगा। इसके प्रतिरोध के लिए फांसीवादी ताकतें सामने आयीं जिसके फलस्वरूप दोनों के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा हो गयी।

5.4 मोरक्को का विद्रोह

अफ्रीकी महाद्वीप के उत्तरी हिस्से में मोरक्को नामक देश अवस्थित है। इस मोरक्को के एक बड़े भाग पर स्पेन का अधिकार था। मोरक्को के लोग स्पेनी शासन से मुक्ति के लिए समय–समय पर प्रतिरोध किया करते थे। इसी क्रम में 1921 ई. में मोरक्को में स्पेनी शासन के विरोध में एक भयंकर विद्रोह हुआ। इस विद्रोह से स्पेन की अंतरराष्ट्रीय छवि बहुत खराब हुई। इससे स्पेन के लोगों का बेचैन होना स्वाभाविक था। मोरक्को की स्थिति लगातार बद से बदतर होती चली गयी। स्पेन के लोगों ने इस बदतर हालात के लिए अपने सम्राट अलफांसो तेरहवें को उत्तरदायी ठहराया जिसके निकम्मेपन से ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई थी। इसी समय उद्‌भूत हुए फांसीवाद ने, झूठे ही सही, स्पेनी लोगों में उम्मीद की एक किरण जगा दी। फासीवाद राष्ट्रीय सम्मान की स्थापना के साथ–साथ आर्थिक संकट के समाधान का भी बढ़–चढ़ कर दावा करता था। हताश स्पेन के लोग ऐसी स्थिति में फांसीवाद की तरफ तेजी से आकृष्ट हुए।

5.5 प्रीमो दी रिवेरा का एकाधिपत्य

स्पेन के सम्राट अलफांसो के सामने समस्या यह थी कि विद्रोह से कैसे निपटा जाय। इसके लिए सम्राट ने एक कुलीन सरदार और लोकप्रिय सेनापति प्रीमो दी रिवेरा की मदद लिया। रिवेरा ने 13 सितम्बर 1923 को विद्रोह को कुचल कर स्पेन में अधिनायकवाद की स्थापना कर दिया। संसद को भंग कर शासन–विधान को निलंबित कर दिया गया। देश में सैनिक शासन की घोषणा कर दी गयी। अब शासन की समस्त शक्तियाँ सम्राट और प्रीमो दी रिवेरा के हाथों में आ गयी। रिवेरा ने इटली का अनुकरण करते हुए स्पेन में एक पार्टी और एक व्यक्ति के प्रभुत्व के लिए प्रयत्न किया और इसमें सफल भी रहा। 1923 से 1930 ई. तक यानी पूरे सात वर्षों तक रिवेरा ने स्पेन पर एकछत्र शासन किया। इस अवधि में उसने इटली की फासिस्ट व्यवस्था की तर्ज पर एक राष्ट्रीय दल का गठन किया और पूँजीपतियों और मजदूरों के बीच के झगड़े को निपटाने के लिए उसने सरकार के अधीन सिंडिकेटो का गठन किया। मोरक्को की समस्या से भी वह सफलतापूर्वक निबटा। फ्रांसीसी सेना की मदद से रिवेरा ने मोरक्को के विद्रोह को पूरी तरह कुचल दिया। मोरक्को के विद्रोही नेताओं ने उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिए।

रिवेरा ने अब स्पेन का नया शासन विधान तैयार कराने की तरफ ध्यान दिया। इसी के तहत संसद की पुनः स्थापना की गयी। लेकिन रिवेरा ने बड़ी चालाकी से इस बात की व्यवस्था कर दी कि संसद में हमेशा राष्ट्रीय दल का प्रभुत्व बना रहे जिससे कि रिवेरा को शासन चलाने में कोई दिक्कत न आये। लेकिन हर देश की अपनी स्थितियां होती हैं जिसके अनुसार वहां की घटनाएँ संचालित होती हैं। स्पेन की स्थितियाँ इटली और जर्मनी से बिलकुल अलग थीं। एक और बात थी रिवेरा में वह जादू या बात नहीं थी जो मुसोलिनी या हिटलर में हुआ करती थी। इधर गोपनीय रूप से स्पेन में इस समय साम्यवादी प्रवृत्तियाँ जोर पकड़ रही थीं। इस क्रम में जगह–जगह पर हड़ताल, धरना–प्रदर्शन, दंगे और विद्रोह होने लगे। सम्राट भी इस समय रिवेरा से असंतुष्ट था और किसी तरह उसे उसके पद से हटाना चाहता था। इसके लिए सम्राट खुद षड़यंत्र करने लगा। इसी बीच रिवेरा का स्वास्थ्य खराब होने लगा। विपरीत हालात को देखते हुए रिवेरा ने जनवरी 1930 में अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। 1930 ई. में ही रिवेरा का निधन हो गया। उसके उत्तराधिकारी राष्ट्रीय दल के नेता न तो उसके समान योग्य थे न पार्टी पर अपना प्रभाव बनाये रखने में सफल थे। फिर भी स्पेन में गणतन्त्र की घोषणा कर दी गयी। राजा को देश छोड़ना पड़ा और वह फ्रांस चला गया। फ्रांस पहुँच कर अलफांसो ने कहा कि उसने औपचारिक रूप से गद्दी नहीं छोड़ी है बल्कि सम्राट के अधिकारों के उपभोग का कुछ समय के लिए निलंबन मात्र किया है। उसने कहा कि देश की जनता सामूहिक रूप से अपने भविष्य के विषय में अपने मत को अभिव्यक्त कर सकती है। वे राजतन्त्र के पक्ष में मतदान करें अथवा गणतन्त्र के पक्ष में, यह उनका कार्य था।

5.6 फ्लांज आन्दोलन

स्पेन में राजनीतिक अस्थिरता और और कड़वाहट भरे इस माहौल में रिवेरा के पुत्र जोस एन्तोनियों ने फासीवाद से मिलते–जुलते एक आन्दोलन, जिसे फ्लांज आन्दोलन कहा गया, की नीव रखी। इस आन्दोलन में शामिल होने वाले सदस्य

नीली वर्दी पहनते थे और अभिवादन के लिए फासी तरीके का सैल्यूट करते थे। जाहिरा तौर पर फ्लांज आन्दोलन का सम्पर्क इससे मिलते–जुलते जर्मनी के नात्सीवाद और इटली के फासीवाद से हुआ। एन्तोनियों आन्दोलन को सफल बनाने के लिए हर संभव कोशिशें करने लगा। जनता पर उसके लुभावने और मोहक वादों का असर भी पड़ा। 1936 ई. में जब पापुलर फ्रंट की सरकार बनी तो एतोनियो को गिरफ्तार जेल में डाल दिया गया। और जब स्पेन में गृह युद्ध आरम्भ हुआ तो गणतंत्रीय सरकार ने जेल में ही एंटोनियों की हत्या करा दी। गणतान्त्रिक सरकार की इस अनुचित कारवाई का लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ा। एंटोनियो के अनुयायाईयों ने उसकी मृत्यु के पश्चात एक वीर नायक के रूप में पूजा आरम्भ कर दी। अपने जीवन काल में एंटोनियो भले ही उतना सफल न रहा हो मृत्यु के पश्चात उसका व्यक्तित्व जरूर प्रभावी बन गया। स्पेन एंटोनियो के मृत्युपर्यन्त भी उसके असर से मुक्त न हो सका। गृह युद्ध आरम्भ होने के पश्चात फ्लांज आन्दोलन जनरल फ्रैंको के व्यापक आन्दोलन का हिस्सा बन गया।

5.7 राजनीतिक अस्थिरता और गणतन्त्र की स्थापना

रिवेरा की अनुपस्थिति, प्रभावहीन नेतृत्व और अयोग्य सम्राट के चलते स्पेन में राजनीतिक अस्थिरता का दौर शुरू हो गया। इस दौर में साम्यवादी रुझान वाले दलों का प्रभाव बढ़ा। इन दलों को निकेटो अलकाला जमोरा नामक एक साहसी और सुयोग्य नेता का नेतृत्व प्राप्त हुआ। जमोरा ने स्पेन में गणतन्त्र के स्थापना की घोषणा कर दी। एक सामयिक सरकार की स्थापना की गयी जिसका नेतृत्व जमोरा ने संभाला। एक संविधान परिषद् की स्थापना के लिए चुनाव की घोषणा की गयी और नए शासन विधान को तैयार किया गया। जिसके मूल में लोकतान्त्रिक शासन पद्धति थी। नागरिकों के मूलभूत अधिकार अलग से प्रतिपादित किये गए। साम्यवादी भावना के अनुरूप राज्य को चर्च से पूरी तरह अलग कर दिया गया। यह भी व्यवस्था की गयी कि चर्च की सारी संपत्ति छीन कर राज्य के अंतर्गत कर दी जायेगी। नयी संसद में रेडिकल और साम्यवादी दलों का बहुमत था। इन दलों ने मिलकर नयी सरकार बनायीं जिसका प्रधान मन्त्री अजाना बना। जमोरा को स्पेन के पहले गणतन्त्र का राष्ट्रपति निर्वाचित किया गया। 1932 ई. में एक कानून के द्वारा जेसुइट सम्प्रदाय को गैरकानूनी घोषित करते हुए उसकी सारी संपत्ति जब्त कर ली गयी। यह भी नियम बनाया गया जिससे कोई कैथोलिक पादरी किसी राजकीय पद पर नियुक्त न हो सके। 1933 ई. में एक कानून द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि कैथोलिक चर्च की धार्मिक सभाओं पर कर लगाए जायँ और कैथोलिक संस्थाएं शिक्षा, व्यापार और व्यवसाय का कोई कार्य न कर सकें।

गणतांत्रिक सरकार का धर्म के प्रति जो रुख था वह भले ही प्रगतिशील और साम्यवादी मूल्यों के अनुरूप हो, तत्कालीन स्पेन के लोगों की सोच के अनुरूप तो कत्तई नहीं था। इससे जनता का एक बड़ा वर्ग, जो धर्मभीरु था, असंतुष्ट हो गया। इस जनाक्रोश का खामियाजा इस सरकार को अगले चुनावों जो 1933 ई. में सम्पन्न हुए, में भुगतना पड़ा। इस चुनाव में रेडिकल और साम्यवादी दल बहुमत प्राप्त नहीं कर सके। चुनाव के समय कैथोलिक पादरियों के प्रयत्नों से 'कैथोलिक पापुलर एक्शन पार्टी' नामक नए प्रतिक्रियावादी दल का गठन हुआ जिसका नेता रोबल्स था। लोगों की धार्मिक भावनाओं को भड़का कर इस पार्टी ने आम चुनावों में काफी बड़ी संख्या में सीटें जीत लीं। इस चुनाव में वे दल बहुमत में आ गए जो साम्यवाद के विरोधी थे। अब गंणतन्त्रवादियों और प्रतिक्रियावादियों के बीच तनाव बढ़ने लगा। इसका असर देश की राजनीतिक स्थिरता पर पड़ा। चारो तरफ

अस्थिरता और अराजकता व्याप्त होने लगी। अंततः गिल रोबल्स के सहयोग से रिपब्लिकन दल के नेता लेरू के नेतृत्व में एक नये मंत्रिमंडल ने सरकार की कमान संभाल ली।

5.8 सोशलिस्ट दल का विद्रोह

नयी सरकार ने उम्मीद के मुताबिक उन सभी कानूनों को स्थगित कर दिया जो पिछली सोशलिस्ट सरकार ने रोमन कैथोलिक चर्च के खिलाफ बनाए थे। लेरू की सरकार ने चर्च की संपत्ति अभी जब्त न करने का निश्चय किया। इससे समाजवादी विचारों में आस्था रखने वाले दल सरकार के खिलाफ आन्दोलन करने लगे। सर्वसाधारण जनता का एक बड़ा वर्ग भी, जो सरकार के इस निर्णय से आक्रोशित था, विद्रोह पर उतारू हो गया। मजदूरों ने सरकारी नीतियों के खिलाफ आम हड़ताल की घोषणा कर दिया। कुल मिलाकर स्थिति यह बनी कि यह आन्दोलन हिंसक बन गया। भूतपूर्व प्रधान मंत्री अजाना ने विद्रोहियों का नेतृत्व संभाल लिया। सरकार इन विद्रोहों को निर्ममतापूर्वक कुचलने के लिए प्रयत्न करने लगी।

5.9 पापुलर फ्रंट का गठन और सेना का विद्रोह

सरकार के दमन का विरोध करने के उद्देश्य से रेडिकल, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट पार्टी और फासीवादी विरोधी दलों ने मिल कर 'पापुलर फ्रंट' का गठन किया। इस फ्रंट को जनता का व्यापक समर्थन मिला। फरवरी 1936 ई. के संसदीय चुनावों में फ्रंट ने एकजुट हो कर चुनाव लड़ा। व्यापक जन–समर्थन के चलते फ्रंट बहुमत में आ गया। जमोरा ने राष्ट्रपति पद से इस्तीफा दे दिया क्योंकि वह उग्र वामपंथ से सहानुभूति नहीं रखता था। अजाना को देश का नया राष्ट्रपति चुना गया। लार्जो कैबलरो के नेतृत्व में पापुलर फ्रंट की नयी सरकार का गठन हुआ।

आन्दोलन, हिंसा और विद्रोह का अराजक वातावरण एक बार व्याप्त हो जाने पर उसे रोक पाना अत्यंत दुष्कर होता है। रिपब्लिकन सरकार के समय आरम्भ हुई अराजकता को पापुलर फ्रंट की सरकार भी रोक नहीं पायी। संयोगवश इस समय के यूरोप में साम्यवादी दलों का प्रभाव अधिक बढ़ रहा था। कम्युनिस्ट दलों ने अपना आन्दोलन और विद्रोह स्पेन में भी जारी रखा। इसी क्रम में चर्चों की शोषक भूमिका को देखते हुए अनेक चर्चों और मठों में आग लगा दी गयी। पादरियों और जागीरदारों पर हमले किये गए। पूरे स्पेन में अराजक स्थिति व्याप्त हो गयी। ऐसा लगा जैसे स्पेन में कोई सरकार ही न हो। इस अराजकता से स्पेन के लोग छुटकारा चाहते थे। इसका फायदा उठाया स्पेनिश सेना के युवा जनरल फ्रांसिस्को फ्रैंको ने। जनरल फ्रैंको मोरक्को की स्पेनिश सेना का प्रधान सेनापति था। कम्युनिज्म के प्रबल विरोधी फ्रैंको ने स्पेन की तत्कालीन सरकार के खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजा दिया। 16 जुलाई 1936 को फ्रैंको के नेतृत्व में स्पेनी सेना ने स्पेनिश मोरक्को के कुछ हिस्सों पर कब्जा करते हुए स्पेन की मुख्य भूमि की ओर बढ़ी। मुख्य स्पेन की सेना के एक बड़े धड़े ने फ्रैंको का साथ दिया। अगले दिन स्पेन के प्रायः प्रत्येक नगर में सेना ने विद्रोह कर दिया।

5.10 अधिनायकवादी शक्तियों द्वारा विद्रोही फ्रैंको की सहयोग

सैनिक विद्रोह से पापुलर फ्रंट की सरकार अपने को संकट में घिरा महसूस कर रही थी। इसी समय उसका संकट तब और बढ़ गया जब इस समय के फासिस्ट देशों इटली और जर्मनी ने विद्रोही जनरल फ्रैंको की मदद के लिए अपने हाथ आगे बढ़ाये। इटली और जर्मनी द्वारा फ्रैंको के मदद के कुछ कारण थे। एक तो ये दोनों तानाशाह साम्यवाद के प्रखर विरोधी थे। दूसरे इन फासिस्ट देशों को कुछ ऐसे देशों और सरकारों की भी जरूरत थी जो उनकी विचारधारा का समर्थन कर सके जिससे कि ये अपनी शक्ति को मजबूत कर ब्रिटेन, फ्रांस और साम्यवादी देश रूस को चुनौती दे सकें। इटली और जर्मनी को फ्रैंको में ये दोनों बातें दिखाई पड़ी। इस तरह ये अधिनायकवादी देश फ्रैंको की मदद के लिए खुल कर आगे आ गए जिससे कि पापुलर फ्रंट सरकार की दिक्कतें और बढ़ गयीं जबकि फ्रैंको की और हौसला–अफजाई हुई।

5.11 गणतांत्रिक सरकार को अपेक्षाकृत मदद का न मिल पाना

गणतांत्रिक सरकार की मदद इंग्लैंड, रूस और फ्रांस जैसे देश कर रहे थे, जबकि विद्रोही जनरल फ्रैंको की मदद इटली और जर्मनी जैसे देश कर रहे थे। जर्मनी ने तो दो कदम आगे बढ़ कर फ्रैंको को अपने हवाई जहाज तक मुहैया करा दिए जिससे वह त्वरित गति से अपनी सेना को ढो सके। जनरल फ्रैंको मोरक्को से एक सेना ले कर 1936 ई. में स्पेन में घुस आया था। फ्रैंको के स्पेन आते ही स्पेन की तीन–चौथाई स्थल सेना और नौसेना का आधा भाग उसके साथ हो गया था। इटली का मनोबल अबीसीनिया विजय के बाद काफी बढ़ गया था और अब उसने भी खुलेआम अपनी सेना स्पेन में फ्रैंको की मदद के लिए भेज दी। विद्रोही फ्रैंको का मनोबल इससे बहुत अधिक बढ़ गया। यह एक वास्तविकता थी कि फ्रैंको को जिस तुलना में केवल इटली और जर्मनी ने मदद की, पापुलर फ्रंट की सरकार को अपने तमाम ऐसे सहयोगी देशों से, जो लोकतन्त्र के पहरुए और झंडाबरदार बना करते थे, सहायता नहीं मिल पाई। चुकि इतिहास में अगर–मगर के लिए कोई जगह नहीं होती इसलिए हम इस बात का कयास नहीं लगायेंगे कि ऐसा न हो कर वैसा हुआ होता तो क्या होता? गणतांत्रिक सरकार को अपेक्षाकृत मदद न मिल पाने से वह कमजोर पड़ी और फासिस्ट जनरल फ्रैंको की सेना का सामना न कर सकी।

5.12 जनरल फ्रैंको की महत्वाकांक्षा

स्पेन में नए चुनाव जो कि फरवरी 1936 में संपन्न हुए, के बाद लेरू की सरकार बनी। इस समय फ्रैंको स्पेन की सेना में था। देश में फैली अराजकता और आंतरिक अव्यवस्था पर नियंत्रण पाने के उद्देश्य से फ्रैंको ने तत्कालीन सरकार को आपात काल लागू करने का सुझाव दिया, जिसे लेरू की तत्कालीन सरकार ने एक सिरे से खारिज कर दिया। यही नहीं उसे दण्ड के तौर पर पदावनति करते हुए केनारी द्वीप भेज दिया गया। महत्वाकांक्षी फ्रैंको ने अपमान का यह घूँट तो पी लिया लेकिन वह ऐसे अवसर की तलाश करने लगा जिसमें वह कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके। स्पेन के हालात जब ज्यादा बिगड़ गए तब वह सही समय महसूस कर फ्रैंको ने अपने कदम उठाये और विद्रोह का बिगुल बजा दिया। अब

परिस्थितियाँ फ्रैंको के अनुकूल होती चली गयीं। पहले उसे स्पेनिश सेना का भरपूर समर्थन मिला, जिसके बिना वह सत्ता पर काबिज होने की कल्पना भी नहीं कर सकता था। दूसरे उसे इस समय के अग्रणी फासिस्ट देशों का पूर्ण समर्थन मिल गया जिससे वह अपनी बुलंदियों के चरम पर पहुँच गया।

5.13 फ्रैंको का सत्तासीन होना

पापुलर फ्रंट की नयी सरकार ने कुछ सुधारों को लागू कर स्पेन के बिगड़ते हालात को संभालने की कोशिश की। इन सुधारों में राजनीतिक स्वतन्त्रता बहाल किया जाना, बड़े जमींदारों की जमीन को अधिग्रहित कर किसानों में वितरित करना और खान मजदूरों एवं अन्य दूसरे औद्योगिक मजदूरों की स्थिति में सुधार करना प्रमुख था। शैक्षिक विकास के लिए भी प्रयास किये गए। लेकिन फलांगे एवं दूसरे दक्षिणपंथी दल उन लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व करते थे जिन्होंने स्पेन के पिछड़ेपन को कायम रखा था। इनका साथ सेना के कुछ जनरल भी जुड़े हुए थे। ये लोग फ्रंट की सरकार को अपदस्थ कर उसकी जगह फासीवादी शासन स्थापित करना चाहते थे और इसके लिए योजनायें बना रहे थे और इसी क्रम में राजनीतिक अस्थिरता फैली हुई थी। जिस समय स्पेन में राजनीतिक अस्थिरता फैली हुई थी उस समय फासिज्म के तिलिस्म ने स्पेनी लोगों को मोहित किया। ठीक इसी समय मोरक्को की स्पेनिश सेना के मुख्य सेनापति जनरल फ्रांसिस्को फ्रैंको, जो कम्युनिज्म का प्रबल विरोधी था, आगे आया और 19 जुलाई 1936 को उसने स्पेन की गणतांत्रिक सरकार के खिलाफ विद्रोह कर दिया। मोरक्को से सेना ले कर फैंको स्पेन के लिए रवाना हुआ। फ्रैंको की सेना को स्पेन की मुख्य भूमि तक लाने में इटली के हवाई जहाजों की प्रमुख भूमिका थी। फ्रैंको ने बड़ी चालाकी से उन लोगो से इस बगावत में साथ देने का आह्वान किया जो साम्यवाद विरोधी होने के साथ–साथ वर्तमान अराजकता के कारण स्पेन की तत्कालीन सरकार से नाराज थे। मुख्य स्पेनी सेना का भी उसे बढ़–चढ़ कर साथ मिला। इससे उत्साहित हो कर जनरल फ्रैंको ने बर्गोस नामक स्थान पर खुद को स्पेन का राष्ट्राध्यक्ष घोषित कर दिया। शीघ्र ही बगावत की लहर पूरे दक्षिण–पश्चिम स्पेन में फैल गयी। इसी समय इटली और जर्मनी जैसे फासीवादी देशों का समर्थन भी फ्रैंको को बिन मांगे ही मिल गया। वास्तव में इटली और जर्मनी अपना कुनबा बढ़ाने के लिए बेचैन थे। इधर अबीसीनिया की विजय के पश्चात् पूर्वी भूमध्य सागर में इटली का प्रभाव बढ़ गया था और मुसोलिनी की हसरत थी कि भूमध्य सागर इटेलियन झील के रूप में परिवर्तित हो जाए। उसकी सोच थी कि अगर स्पेन में फासिस्ट सरकार बन जाए तो उसका सपना हकीकत में तब्दील हो सकता है। क्योंकि स्पेन का शासन यदि इटली के अनुकूल रहा तो पश्चिमी भूमध्य सागर भी उसके प्रभाव में आ जाएगा और इस तरह पूरा भूमध्य सागर इटली की झील के रूप में परिवर्तित हो जायेगा। हिटलर की इस युद्ध के बारे में यह सोच थी कि यह फासीवाद और साम्यवाद के बीच का संघर्ष है जिसमें फासीवाद की जीत होनी चाहिए। इस जीत से वह साम्यवाद और सोवियत संघ को नीचा दिखाना चाहता था। इसके अतिरिक्त वह अपने पुराने दुश्मन फ्रांस की सीमा पर अपना मित्र राष्ट्र स्थापित कर अपनी स्थिति को मजबूत करना चाहता था। दोनों देशों ने बड़ी मात्रा में अस्त्र–शस्त्र, हवाई जहाज, टैंक और सैनिक भेज कर जनरल फ्रैंको की मदद किया। विदेशी देशों की मदद से विद्रोहियों ने देश के कई हिस्सों पर अधिकार कर लिया और किसानों और उन लोगों को आतंकित

किया जिन पर पापुलर फ्रंट सरकार को समर्थन देने का संदेह था। जर्मनी ने तो फ्रैंको के पक्ष में स्पेन के शहरों और गाँवों पर हवाई हमले तक किये।

स्पेन में प्रवेश कर फ्रैंको बड़ी तेजी से आगे बढ़ता चला गया। शीघ्र ही उसने पश्चिमी स्पेन पर भी अधिकार कर लिया। फ्रैंको की सेना अब राजधानी मैड्रिड के निकट पहुँच गयी। नवम्बर 1936 में अब यह स्पष्ट हो गया कि मैड्रिड पर कुछ ही दिनों में फ्रैंको का अधिकार स्थापित हो जायेगा। इसी समय नागरिकों की मदद से पापुलर फ्रंट के लोगों ने अपनी सुरक्षा व्यवस्था संगठित की थी। इन नागरिकों ने अपनी सेना संगठित कर अनेक जबरदस्त लडाईयाँ लड़ी थीं। नवम्बर 1936 ई. में इन लोगों ने ही राजधानी मैड्रिड की बहादुरीपूर्वक रक्षा की और जनरल फ्रैंको को यहाँ तक फटकने नहीं दिया। ठीक इसी समय इटली और जर्मनी की फासिस्ट सरकारों ने फ्रैंको की सरकार को अपनी मान्यता प्रदान कर दी और अपनी सेनाएँ फ्रैंको की सहायता के लिए स्पेन में भेज दीं। जबकि गणतांत्रिक सरकार की तरफ से खुल कर आने वाला एकमात्र देश रूस था। ब्रिटेन और फ्रांस जैसे देशों ने अहस्तक्षेप के सिद्धान्त की दुहाई देते हुए गणतान्त्रिक सरकार की सहायता करने से मना कर दिया। दूसरी तरफ यूरोप के कुछ देशों और रूस में स्पेन की रिपब्लिक सरकार की मदद के मद्देनजर स्वयंसेवक सेनाएँ संगठित की जा रही थीं। स्पेनिश रिपब्लिक की रक्षा में लड़ने के लिए पचास से अधिक देशों के स्वयं–सेवकों ने अपना नाम पंजीकृत कराया था। इस तरह एक अंतरराष्ट्रीय ब्रिगेड बनाई गयी जिसमें चालीस हजार से ज्यादा स्वयंसेवक शामिल हुए थे। ये स्वयंसेवक स्पेन की धरती पर गणतन्त्र को बचाने के लिए बहादुरी के साथ लड़े। इस क्रम में हजारों स्वयंसेवक लड़ते हुए मारे गये। इन स्वयंसेवकों में जर्मनी और इटली के ऐसे लोग भी शामिल थे जो फासीवाद के प्रबल विरोधी थे। जर्मन बटालियन का नाम 'टालमान बटालियन' था। टालमान जर्मनी के प्रख्यात कम्युनिस्ट नेता थे जिनको जर्मनी के नाजियों ने यातना शिविर में कैद कर रखा था और बाद में जिनकी यातना शिविर में ही निर्मम हत्या कर दी गयी थी। अमरीकी बटालियन का नाम अब्राहम लिंकन के नाम पर था। ध्यातव्य है कि लिंकन ने ही अमरीका में दास प्रथा का उन्मूलन किया था। स्पेनिश गणतन्त्र को बचाने के लिए जो अंतरराष्ट्रीय एकजुटता दिखाई पडी वह दरअसल विश्व को फासीवादी फंदे से बचाने के लिए लोगों की जागरूकता को प्रदर्शित करता है। स्पेन के गणतन्त्र समर्थक लोगों के साथ भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन की एकजुटता दर्शाने के लिए पंडित जवाहर लाल नेहरु विशेष तौर पर स्पेन गए। दुनिया के विभिन्न हिस्सों के अनेक लेखक, कवि और कलाकार स्वतःस्फूर्त ढंग से स्पेन के गृह युद्ध में लड़े और पापुलर फ्रंट के समर्थन में विश्व जनमत तैयार करने में उनकी मदद की। महान चित्रकार पाब्लो पिकासो ने अपनी 'ग्वेर्निका' नामक मशहूर कलाकृति इसी समय तैयार की। 'ग्वेर्निका' स्पेन का वह कस्बा था जो फासीवादी हवाई हमलों से तबाह हो गया था। 'ग्वेर्निका' कलाकृति का चित्रण फासीवाद के विरुद्ध जबरदस्त प्रतिरोध का प्रतिनिधित्व करता था।

स्पेन के गृह युद्ध ने अब अंतरराष्ट्रीय रूप ले लिया था। क्योंकि एक तरफ गणतान्त्रिक सरकार की सहायता जहाँ इंग्लैंड, फ्रांस और रूस जैसे देश कर रहे थे वहीं दूसरी तरफ फ्रैंको की सहायता जर्मनी, इटली और पुर्तगाल जैसे देश कर रहे थे। 1937 के अन्त तक युद्धरत दोनों पक्ष अपने अस्तित्व के लिए निर्णायक युद्ध लड़ रहे थे। और इस समय बाहरी सहायता निर्णायक साबित हो सकती थी। इसी समय पुर्तगाल का अधिनायकवादी शासक सालाजार फ्रैंको की मदद के लिए आगे बढ़ा। इटली और जर्मनी युद्ध सामग्री पुर्तगाल भेज देते थे जिसे सालाजार विद्रोही शासक फ्रैंको को उपलब्ध करा देता था। दूसरी तरफ गणतन्त्रवादियों को युद्ध

सामग्री फ्रांस के जरिये मिल रही थी। दुर्भाग्यवश फ्रांस इस समय खुद युद्ध में फँसा हुआ था। इस स्थिति में गणतन्त्रवादियों तक हथियार पहुँचाने में उसे अनेक मुश्किलें आयीं। स्वाभाविक तौर पर गणतन्त्रवादियों की स्थिति कमजोर पड़ने लगी क्योंकि इस समय वे अकेले पड़ गए थे। इंग्लैंड की बाल्डविन सरकार स्पेन में किसी भी तरह के हस्तक्षेप के खिलाफ थी जबकि विपक्षी लेबर पार्टी गणतन्त्रवादी सरकार की मदद करने के पक्ष में थी। बाल्डविन सरकार इटली से इस बात की अपेक्षा करती थी कि वह जर्मनी को स्पेन से दूर रखे। साथ ही दूसरे देशों के स्पेन के गृह युद्ध में किसी भी तरह की दखलंदाजी से इंग्लैंड सहमत नहीं था। इस मुद्दे पर विचार के लिए सत्ताईस देशों की एक समिति भी बनायी गयी लेकिन इस समय तक फ्रैंको के पास उसकी जरूरत से ज्यादा सामग्री पहुँच चुकी थी। ऐसे में कोई अनहोनी ही फ्रैंको को स्पेन पर कब्जा करने से रोक सकती थी जिसकी दूर–दूर तक कोई उम्मीद नहीं दिख रही थी।

हताश होकर स्पेन की गणतान्त्रिक सरकार ने राष्ट्र संघ में गुहार लगाई और आक्रमण रोकने हेतु निवेदन किया। राष्ट्र संघ ने अपना कोरम पूरा करते हुए सदस्य देशों को स्पेन में हस्तक्षेप न करने का आग्रह किया। अमरीकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट ने भी स्पेन के किसी भी दल को अमरीकी युद्ध सामग्री नहीं बेचने के अपने निर्णय को दुहराया। लेकिन परिस्थितियाँ अब फ्रैंको के पक्ष में पूरी तरह चली गयीं थी। 1938 ई. के वसंत में फ्रैंको ने एक लाख इटेलियन सेना और जर्मन युद्ध सामग्री के साथ पुनः हमला किया। फ्रैंको को अब रोक पाना गणतान्त्रिक सरकार के बूते की बात नहीं थी।

1939 ई. की शुरुआत तक सम्पूर्ण कैटोलोनिया पर फ्रैंको का कब्जा हो गया। कैतोलोनिया गणतान्त्रिक सरकार का सुदृढ़ गढ़ था। यह गढ़ ढहने से एक बात तो स्पष्ट हो गयी कि गणतान्त्रिक सरकार के दिन बस गिने–चुने ही बचे हैं। गणतान्त्रिक सरकार की स्थिति इतनी कमजोर थी कि स्थिति को भाँपते हुए राष्ट्रपति अजाना ने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। 29 मार्च 1939 को राजधानी मैड्रिड पर फ्रैंको का अधिकार स्थापित हो गया और इसी के साथ पूरा स्पेन फ्रैंको के कब्जे में आ गया। फ्रैंको का उद्देश्य पूरा हो गया और अब जर्मनी और इटली के समान ही स्पेन में भी फासिस्ट सरकार स्थापित हो गयी। अपना काम पूरा कर के जर्मनी और इटली की सेनाएँ वापस लौट गयीं। स्पेन में फ्रैंको का तानाशाही शासन शुरू हो गया। तात्कालिक रूप से स्पेन में शान्ति स्थापित हो गयी। ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका जैसे प्रमुख देशों ने जनरल फ्रैंको की सरकार को अपनी मान्यता प्रदान कर दी।

5.14 स्पेन के गृह युद्ध के परिणाम

स्पेन के गृह युद्ध के परिणाम परोक्ष रूप से स्पेन और अपरोक्ष रूप से पूरे विश्व के लिए घातक साबित हुए। स्पेन के गृह युद्ध के निम्नलिखित परिणाम निकले। मुसोलिनी और हिटलर की सहायता से फ्रैंको स्पेन का शासक बन गया। इस जीत से न केवल फासीवादी कुनबा बढ़ा बल्कि इन फासीवादी देशों का मनोबल भी बहुत अधिक बढ़ गया। फासीवादी देशों को भ्रम ही सही लेकिन यह यकीन हो गया कि मित्र राष्ट्र उनसे डरते हैं और इसलिए युद्ध के मैदान में उनके सामने आने से बचते हैं।

स्पेन में फ्रैंको के नेतृत्व में अधिनायकवादी सरकार की स्थापना हो गयी। इस शासन में एक बार फिर चर्च और सेना का प्रभाव अधिक बढ़ गया। स्पेन से

समाजवादी, साम्यवादी और उदारवादी विचारों को हमेशा के लिए निष्कासित कर दिया गया। फासीवादी स्पेन में इन विचारों के लिए अब कोई भी जगह नहीं बची थी।

स्पेन के गृह युद्ध से सर्वाधिक लाभान्वित व्यक्ति हिटलर था। अपने चिर–प्रतिद्वन्दी देश फ्रांस की सीमा पर वह अपने मनोनुकूल शासन स्थापित करने में सफल रहा। स्पेन के युद्ध के जरिये हिटलर ने इंग्लैंड, फ्रांस और रूस के ऊपर नैतिक विजय प्राप्त कर तत्कालीन रूप से अपनी बढ़त बना ली। ध्यातव्य है कि इस युद्ध में इटली भी व्यस्त था। हालांकि इटली इस समय जर्मन खेमे में था फिर भी इटली की व्यस्तता का फायदा उठा कर हिटलर ने बाल्कन क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ा लिया जो इटली के लिए खतरनाक साबित हो सकता था। फासीवाद की स्वार्थपरता और संकीर्णता इससे जाहिर होती है जिसमें मित्र के लिए भी कोई स्थान नहीं होता।

स्पेन के गृहयुद्ध के दौरान पश्चिमी देशों की तुष्टिकरण की नीति एक बार फिर साफ तौर पर दिखाई पड़ी। जब इस गृह युद्ध में पूरी तरह उजागर हो गया था कि फासीवादी ताकतें एकजुट हो कर लड़ रही हैं तब भी पश्चिमी देश अहस्तक्षेप के नीति की दुहाई दे कर गणतान्त्रिक सरकार की मदद करने से बचते रहे। इसका एक परिणाम यह निकला कि फासीवादी ताकतें अब एक दूसरे के ज्यादा निकट आ गयीं और एक उद्देश्य के लिए मिल–जुल कर काम करने लगीं।

स्पेन के गृह युद्ध का एक फायदा यह हुआ कि फासीवादी देशों ने स्पेन के मैदान में अपने नए हथियारों एवं रणनीति का परीक्षण भलीभांति कर लिया। अब फासीवादी देश व्यापक स्तर पर जोरो–आजमाईश कर सकते थे। द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी ने इन्हीं हथियारों का खुल कर प्रयोग किया। इसलिए स्पेन के गृह युद्ध को 'द्वितीय विश्व युद्ध का पूर्वाभ्यास' भी कहा जाता है।

स्पेन के गृह युद्ध ने द्वितीय विश्व युद्ध के लिए गुट बनाने की शुरुआत कर दी। इटली और जर्मनी के मिलने से 'रोम–बर्लिन धुरी' का गठन हुआ। बाद में इसमें एक तीसरा साम्राज्यवादी देश जापान आ मिला और यह धुरी 'रोम–बर्लिन–टोकियो धुरी' के रूप में परिवर्तित हो गयी। अब पूरा विश्व युद्ध दो गुटों में बंट गया। एक तरफ फासीवादी देश तो दूसरी तरफ मित्र राष्ट्र हो गए।

स्पेन के गृह युद्ध में भले ही ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका जैसे लोकतन्त्र के अलमबरदार देशों ने गणतान्त्रिक सरकार की कोई मदद न की हो, पूरी दुनिया के ऐसे लोगों ने व्यक्तिगत तौर पर आगे आ कर स्वयंसेवक सेना में भर्ती हुए और स्पेन की तरफ से लड़े, जिनकी लोकतान्त्रिक मूल्यों में रूचि थी। इस घटना ने यह साबित कर दिया कि सरकारें जो कुछ भी सोचे–करें, जनता की लोकतान्त्रिक मूल्यों में गहरी आस्था है और वे इसे बचाने के लिए अपनी जान भी दे सकते हैं। एक बात यह भी स्पष्ट हो गयी कि फासीवादी मूल्य चाहे जितने भी आकर्षक लगें वे दूर तक और देर तक जनता का विश्वास हासिल नहीं कर सकता।

चूकि स्पेन गृहयुद्ध के चलते पहले से ही परेशान था इसलिए द्वितीय विश्व युद्ध में वह तटस्थ रहा और हिटलर और मुसोलिनी की मदद नहीं कर पाया। द्वितीय विश्व युद्ध में मैदान में नं उतरने का ही परिणाम था कि हिटलर और मुसोलिनी का तो पतन हो गया लेकिन फ्रैंको द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भी सत्ता में बना रहा। फ्रैंको ने अब स्पेन के विकास पर अपना पूरा ध्यान दिया इसी क्रम में स्पेन ने आर्थिक और औद्योगिक रूप से बहुत अधिक प्रगति की। फ्रैंको अपने

मृत्युपर्यंत स्पेन का शासक बना रहा। 20 नवम्बर 1975 ई. को मैड्रिड में उसकी मृत्यु के पश्चात ही स्पेन एक बार फिर जनतन्त्र की तरफ बढ़ पाया। और वहाँ एक निर्वाचित सरकार ने शासन का कार्यभार सम्भाला।

5.15 सारांश

इस इकाई में आपने यह पढ़ा कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद किन परिस्थितियों में स्पेन क्रमशः गृह युद्ध की तरफ बढ़ा। स्पेनिश गृहयुद्ध के लिए अनेक कारण समवेत रूप से उत्तरदायी थे और इन कारणों पर एक–एक कर हमने विस्तारपूर्वक बातें की हैं। इसी इकाई में आपने यह भी जाना कि किस तरह फ्रैंको स्पेनिश मोरक्को से एक सेना ले कर आगे बढ़ा और फासीवादी देशों जर्मनी और इटली की मदद से स्पेन की गद्दी पर अधिकार कर लिया। इस जीत से फासीवादी शक्तियों का हौसला बढ़ा और अब वे निर्द्वंद हो कर द्वितीय विश्व युद्ध की तैयारी में लग गयीं। इसी क्रम में हम ये भी जान सके कि इस गृह युद्ध के क्या परिणाम निकले और किस तरह इस गृह युद्ध ने अंतरराष्ट्रीय समुदाय को गहरे तौर पर प्रभावित किया।

5.16 बोध प्रश्न

(1) फ्लांज आन्दोलन का नेतृत्व किसने किया था?

(अ) प्रिमो दि रिवेरा न (ब) जोस एंटोनियो ने

(स) सालासार ने (द) जनरल फ्रैंको ने

(2) स्पेनिश गृह युद्ध के दौरान गणतान्त्रिक सरकार की खुल कर सहायता करने वाला एक मात्र देश कौन सा था?

(अ) ब्रिटेन (ब) फ्रांस

(स) अमरीका (द) सोवियत रूस

(3) स्पेन के सन्दर्भ में कौन सा कथन सत्य है?

(अ) स्पेन ने द्वितीय विश्व युद्ध में फासीवादी ताकतों की तरफ से बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया।

(ब) स्पेन ने द्वितीय विश्व युद्ध में फासीवादी ताकतों की अप्रत्यक्ष रूप से मदद की।

(स) स्पेन ने द्वितीय विश्व युद्ध में मित्र देशों की मदद की।

(द) द्वितीय विश्व युद्ध में स्पेन तटस्थ रहा।

(4) फ्रैंको के उत्थान पर एक टिप्पणी लिखिए?

(5) स्पेनिश गृह युद्ध के परिणामों पर प्रकाश डालिए?

5.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1). ब (2). द (3). द

5.18 उपयोगी पुस्तकें

- कार, ई. एच., (अनुवाद) दो विश्व युद्धों के बीच अंतरराष्ट्रीय संबंध 1919–1945, आगरा
- गुप्ता, पार्थसारथी, (संपा.) यूरोप का इतिहास, दिल्ली, 1983
- जाल, जेम्स, (अनु.) यूरोप 1870 से, दिल्ली 1991
- विद्यालंकार, सत्यकेतु, यूरोप का आधुनिक इतिहास, भाग–दो, (1871–1939),नयी दिल्ली, 1982
- हेजन (अनु.– सत्यनारायण दुबे), आधुनिक यूरोप का इतिहास, दिल्ली, 1979

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

MAHY-107 (N) Part- II

आधुनिक विश्व (1870 ई० से 2000 ई०)

खण्ड–द्वितीय : द्वितीय विश्व युद्ध एवं उसके पश्चात् की परिस्थितियाँ 97–152

इकाई 1 – द्वितीय विश्व युद्ध कारण एवं पृष्ठभूमि 99-110

इकाई 2 – मुसोलिनी तथा हिटलर 111-124

इकाई 3 – संयुक्त राष्ट्र संघ 125-134

इकाई 4 – शीतयुद्ध की उत्पत्ति एवं प्रभाव 135-146

इकाई 5 – विश्व राजनीति और भारत 147-152

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश प्रयागराज

MAHY-107 (N)

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	मा0 कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक एवं आचार्य इतिहास समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो. संतोष कुमार चतुर्वेदी	आचार्य, इतिहास महमति प्राणनाथ राजकीय महाविद्यालय, मऊ, चित्रकूट प्रथम खंड (1–5 इकाई)
डॉ. अर्चना सिंह	सह आचार्य, इतिहास काशी नरेश राजकीय महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही द्वितीय खंड (1–5 इकाई)
प्रो. अनुभा श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी तृतीय खंड (1–5 इकाई)

सम्पादक

प्रो0 पी0 एल0 विश्वकर्मा	पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज वर्ष–2022

ISBN :978-93-94487-89-5

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

इकाई–1

द्वितीय विश्व युद्ध कारण एवं पृष्ठभूमि

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1. प्रस्तावना

1.2 द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि

1.2.1 द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण

1.2.2 द्वितीय विश्व युद्ध की घटनाएँ

1.2.3 द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम

1.3 सांराश

1.4 शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई में द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि व उसके कारणों पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की गई है। साथ ही यह समझाने का प्रयास किया गया है कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद उत्पन्न परिस्थितियों ने किस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध की नींव रख दी

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे :

- द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि
- द्वितीय विश्व के कारण

1.1 प्रस्तावना

24 जुलाई 1914 को प्रारम्भ होने वाला प्रथम विश्वयुद्ध लगभग चार वर्ष के भीषण संघर्ष एवं विनाश के बाद 11 नवम्बर 1918 को समाप्त हो गया। युद्ध समाप्ति के बाद सबसे बड़ी समस्या शान्ति समझौता की थी। वास्तव में यह समस्या इतनी जटिल थी कि इसका शीघ्र समाधान होना अति आवश्यक था। यूरोप में शान्ति स्थापना के लिए पेरिस का शान्ति सम्मेलन बुलाया गया जिसमें विभिन्न सन्धियाँ की गई तथा आशा की गई कि भविष्य में पुरानी त्रुटियों को नहीं दोहराया जायेगा। लेकिन युद्ध समाप्ति के बाद यूरोपीय राजनीति में जो घटनाक्रम

चला वह विश्व को दूसरे विश्वयुद्ध की ओर ले गया। द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि व कारणों को जानने व समझने के लिए प्रथम विश्व युद्ध के बाद के घटनाक्रम के विषय में हम आगे चर्चा करेगें।

1.2 द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि

बीस वर्षों की शान्ति के बाद 1 सितम्बर 1939 को युद्ध की अग्नि ने फिर से सारे यूरोप को अपने चपेट में ले लिया। इसमें कोई शंका नहीं है कि इस युद्ध की सम्भावनाएं 1919 ई0 के पेरिस शान्ति सम्मेलन ही में शुरू हो गई थी जब वर्साय की अपमान जनक व आरोपित सन्धि पर जर्मनी के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये थे। फ्रांस द्वारा जर्मनी से क्षतिपूर्ति वसूल करने की कठोर नीति, विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी, जापान की साम्राज्यवादी नीति, मुसोलिनी की साम्राज्यवादी इच्छाऐं, जर्मनी में हिटलर की तानाशाही शक्ति का विकास आदि कुछ ऐसी घटनाएं थी जिन्होंने 1919 ई0 में स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व्यवस्था को आघात् पहुँचाया।

वास्तव में प्रथम विश्वयुद्ध ने जर्मनी की समस्या को अनसुलझा और अधिक प्रखर बना दिया और अन्ततोगत्वा इसी प्रमुख समस्या ने द्वितीय विश्व युद्ध की नींव रख दी।

फ्रांस इस तथ्य से भली–भॉति परिचित था कि जर्मनी अपने अपमान का बदला लेने के लिए पुनः आक्रमण करेगा फिर भी जर्मनी के कठोर व्यवहार किया गया। फ्रांस द्वारा जर्मनी के कठोरतापूर्वक क्षतिपूर्वक की राशि वसूलने से जर्मनी में आक्रोश बढ़ता गया। फ्रांस के साथ यह दुर्भाग्य रहा कि उसके युद्ध कालीन मित्र राष्ट्रों की नीतियों में बड़ा अन्तर आ गया था। जहाँ फ्रांस जर्मनी को हमेशा के लिए मृतप्राय बना देना चाहता था वहीं दूसरी ओर इंग्लैण्ड यूरोप में शक्ति संतुलन बनाये रखने के लिए तथा अपने व्यापार का विकास करने में जर्मनी को एक ढाल के उपयोग करना चाहता था। इग्लैण्ड और फ्रांस में जितने कूटनीतिक मतभेद बढ़ते गये उतना ही लाभ (वर्साय की सन्धि का उल्लंघन) जर्मनी को मिलता गया।

दूसरी ओर जर्मनी के साथ–साथ जापान भी पेरिस की शान्ति सन्धियों सें असन्तुष्ट था। उसने भी सैन्यवाद द्वारा अपनी प्रसारवादी नीतियों को बढ़ावा देना प्रारम्भ कर दिया। जापान ने चीन के एक प्रान्त मन्चूरिया पर आक्रमण कर दिया। चीन ने जापान के विरूद्ध राष्ट्रसंघ से अपील की किन्तु जापान ने राष्ट्रसंघ की अवहेलना करते हुए अपना विजय अभियान जारी रखा। जब राष्ट्रसंघ ने जापान को दोषी ठहराया तो जापान राष्ट्रसंघ से अलग हो गया। यह राष्ट्रसंघ व्यवस्था की प्रतिष्ठा पर गहरा आघात् था, इसके बाद ऐसी घटनाओं का क्रम आरम्भ हुआ जिसकी परिणति द्वितीय विश्वयुद्ध के रूप में हुई।

इसी समय इटली में मुसोलिनी के राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिला और उसने अबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया। मुसोलिनी अफ्रीका में अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। हालांकि प्रथम विश्व युद्ध के समय इटली मित्र राष्ट्रों की तरफ था लेकिन बाद के समय में उसका झुकाव जर्मनी की ओर होने लगा और दोनों देशों के मध्य रोम–बर्लिन टोकियों धुरी की स्थाना हुई। जिसके परिणामस्वरूप पूरे विश्व के शक्तिशाली देश दो गुट में बट गये । एक ओर धुरी राष्ट्र (Axis power) और दूसरी ओर लोकतान्त्रिक राष्ट्र (Democratic states) थे।

इसी क्रम में एक अन्य महत्वपूर्ण घटना जर्मनी द्वारा चेकोस्लोवाकिया का अन्त किया जाना था। चेकोस्लोवाकिया के एक प्रदेश सुडेटनलैण्ड में 50 प्रतिशत जनसंख्या जर्मन थी। इंग्लैण्ड और फ्रांस ने सुडेटनलैण्ड का जर्मनी में मिल जाना उचित समझा इसका अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर घातक प्रभाव पड़ा। इसी बीच हिटलर ने पोलैण्ड के प्रति कठोर नीति अपनाई तथा माँग की कि वह डेन्जिंग का बन्दरगाह तथा समुद्रतट तक पहुंचने के लिए पोलिश गलियारे को जर्मनी को सौंप दें। इसी माँग को लेकर 01 सितम्बर 1939 ई0 को प्रातः जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया और द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया।

1.2.1 द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण

द्वितीय विश्व युद्ध का तात्कालिक कारण जर्मनी द्वारा डेजिंग एवं पोलिश गलियारे की माँग के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ संकट को माना जाता है लेकिन इस युद्ध की पृष्ठभूमि प्रथम विश्व युद्ध के समय से ही तैयार हो रहे थी जिसके विषय में चर्चा की जा चुकी है। जर्मनी द्वारा डेजिंग एवं पोलिश गलियारे की माँग तो एक चिन्गारी मात्र थी जिसने उन समस्त तत्वों में आग लगा दी जो प्रथम विश्व युद्ध के बाद के 20 वर्षो में उत्पन्न हुए थे। इस महायुद्ध के मूलभूत कारण निम्न थे।

(1) वर्साय व्यवस्था की त्रुटियां :– प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी की पराजय हुई थी और उसे वर्साय की अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। जर्मनी में आरम्भ से ही वर्साय की कठोर एवं अपमान जनक सन्धि के प्रति भारी असन्तोष था। यह सन्धि जर्मनी की आत्मा पर सीधी चोट थी। जर्मनी ने इस सन्धि को 'अन्तिम' कभी स्वीकार नहीं किया। इस सन्धि से जर्मनी का अंगभंग कर दिया गया तथा उसे सोना उगलने वाले उसके प्रदेशों से वंचित कर दिया गया था और उस पर क्षतिपूर्ति की विशाल धनराशि भी थोप दी गई। वर्साय की सन्धि के समय विजयी देशों ने दूरदर्शिता से कार्य नहीं किया। अतः अवसर मिलने पर अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए जर्मनी ने पुनः मित्र राष्ट्रों के विरूद्ध हथियार उठायें।

(2) तानाशाहों का उत्कर्ष :– जर्मनी की आकाक्षाओं को नात्सी क्रान्ति से बल मिला। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद आयी आर्थिक मन्दी ने जर्मनी में हिटलर के उदय में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिटलर ने जर्मनी का अनिवार्य सैनिकीकरण कर दिया। हिटलर ने अपनी विस्तारवादी नीति के तहत 1938 ई0 में आस्ट्रिया का अधिग्रहण कर लिया और चेकोस्लाविया भी का अंग–भंग कर दिया जिससे चारों ओर युद्ध के बादल मंडराने लगे।

इसी प्रकार प्रथम विश्व युद्ध के बाद इटली में भी तानाशाही का उदय हुआ। इटली का असन्तोष दूर करने तथा साम्राज्य प्रसार के उद्देश्य से मुसोलिनी ने अपनी अधिनायकवादी सत्ता स्थापित की । उसने भी वर्साय की सन्धि का विरोध किया। राष्ट्रसंघ इटली के विरूद्ध कोई भी सकारात्मक कदम नहीं उठा सका।

दूसरी ओर जापान में भी साम्राज्यवादी भावनाऐं उत्पन्न हो चुकी थी। जापान ने भी राष्ट्रसंघ की उपेक्षा करते हुए साम्राज्यवादी नीति अपनायी और बाद में राष्ट्रसंघ से भी पृथक हो गया।

इस प्रकार जर्मनी, जापान और इटली ने किसी भी देश के उपनिवेश छीनने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ा। इन तीनों धुरी राष्ट्रों ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में

घोर संकट उत्पन्न कर दिया और विश्व के देशों को युद्ध की सीमा तक पहुँचा दिया।

(3) राष्ट्रसंघ की निर्बलता :– राष्ट्रसंघ की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढाने तथा शान्ति एवं सुरक्षा की व्यवस्था के लिए की गई थी। लेकिन महाशक्तियों के असहयोगी रूख अपनाने के कारण यह व्यवस्था अपने उद्देश्य में सफल न हो सकी तथा राजनीतिक मामलों में राष्ट्रसंघ का रवैया भी अनेक बार पक्षपात पूर्ण रहा। छोटे–छोटे राष्ट्रों को राष्ट्रसंघ से सुरक्षा पाने का विश्वास समाप्त हो गया। अमेरिका जैसे शक्तिशाली देश इसका सदस्य नहीं बना वही प्रथम विश्व युद्ध में पराजित देशों को राष्ट्रसंघ की सदस्यता से वंचित रखना इस बात का घोतक था कि राष्ट्रसंघ विजयी राष्ट्रों का गुट है।

फलस्वरूप यूरोपीय देशों ने राष्ट्रसंघ में अपनी निष्ठा खो दी तथा शक्ति संतुलन बनाए रखने के लिए विभिन्न गठबन्धन बनाना प्रारम्भ कर दिये।

(4) निःशस्त्रीकरण के सिद्धान्त की असफलता :– प्रथम विश्वयुद्ध के बाद विश्व राजनीतिज्ञों का यह मानना था कि शान्ति एवं सुरक्षा के लिए शस्त्रों की होड़ समाप्त करना आवश्यक था। इस कारण वर्साय की सन्धि में निःशस्त्रीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया, किन्तु विजित राष्ट्रों ने पराजित राष्ट्रों की सैनिक शक्ति तो कम दी किन्तु अपनी सैनिक शक्ति कम न कर उसमें वृद्धि जारी रखी। इस प्रकार अलग–अलग राष्ट्रों द्वारा जो नीति अपनायी गई उससे निःशस्त्रीकरण की बजाय शस्त्रीकरण की भावना को अधिक बल मिला। अतः पुनः शस्त्रीकरण के परिणामस्वरूप अन्य राष्ट्रों में सन्देह और भय का वातावरण फैलने लगा और सभी राष्ट्र युद्ध की तैयारी में जुट गये।

(5) ब्रिटेन और फ्रांस के दृष्टिकोण में अन्तर :– मित्रराष्ट्रों के पारस्परिक झगड़ों ने भी जर्मनी तथा इटली की शक्ति के विकास में बहुत योगदान दिया। दोनों महायुद्धों के बीच ब्रिटेन और फ्रांस में निरन्तर मतभेद विद्यमान बने रहे जहाँ ब्रिटेन यूरोप में शक्ति संतुलन बनाये रखना चाहता था वहीं फ्रांस स्वयं को हर तरह से सुरक्षित करके यूरोप का सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र बनाना चाहता था। ब्रिटेन न तो जर्मनी को एकदम पंगु बनाना चाहता था और न ही फ्रांस को एकदम शक्तिशाली देखना चाहता था। ब्रिटेन फ्रांस को नियन्त्रित रखने के लिए जर्मनी को शक्तिशाली और समृद्ध देखना चाहता था। इस प्रकार दोनों महान देशों के मतभेदों ने सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को कटु बना दिया।

इन दोनों देशों के मतभेदों का पूरा लाभ पराजित राष्ट्रों (धुरी राष्ट्रों) ने उठाया वे स्वयं को अत्याधिक शक्तिशाली बनाते गये। इस प्रकार तुष्टीकरण की नीति ने सामूहिक सुरक्षा की धारणा को धराशाही कर दिया।

(6) राष्ट्रों के विभिन्न स्वार्थ :– आर्थिक सम्पन्नता की होड़ नये बाजारों की खोज, कच्चा माल प्राप्त करने की सुविधा आदि ने विभिन्न राष्ट्रों में पारस्परिक संघर्ष को अत्याधिक प्रोत्साहन दिया। प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वार्थ से वशीभूत होकर कार्य करने लगा। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी के उपनिवेश ब्रिटेन, बेल्जियम तथा फ्रांस ने मिलकर बाँट लिये। अतः इन देशों को कच्चा माल प्राप्त होने की सुविधाएं बढ़ गई दूसरी ओर जर्मनी, इटली आदि देशों को भारी हानि होने लगी। अतः ये राष्ट्र कच्चे माल के लिए नये उपनिवेश स्थापित करने तथा विदेशी बाजार में अपने माल की खपत करने मे उपाय सोचने लगे। इसी क्रम में इटली, जापान और जर्मनी साम्राज्यवादी नीति अपनाने के लिए विवश हुए तथा अपने उद्देश्यों की

पूर्ति के लिए वे एक–दूसरे के निकट आते चले गये तथा पारस्परिक सहयोग से अपनी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं की पूर्ति करने लगे। इस तरह के विरोधी स्वार्थ द्वितीय महायुद्ध के कारण बने।

(7) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संकट :– सन् 1930 के महान आर्थिक संकट ने विश्व के प्रत्येक देश को प्रभावित किया। इस आर्थिक संकट ने जहां जर्मनी में नाजीवाद के उदय में सहायता पहुँचायी। वहीं इटली में भी फासीवाद को बढ़ावा मिला। इसी आर्थिक संकट का लाभ उठाकर जापान ने भी मन्चूरिया और इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया। वास्तव में आर्थिक संकट ने विश्व की राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिरता को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया।

(8) दो प्रतिद्वन्दी गुटों का उदय :– जिस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध के समय सम्पूर्ण विश्व दो विरोधी सैनिक गुटों में विभाजित हो गया, एक–जनतन्त्रवादी तथा दूसरा एकतन्त्रवादी। उसी प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व भी सम्पूर्ण विश्व दो परस्पर विरोधी खेमों में बँट गया, जहाँ एक तरफ जर्मनी, इटली और जापान जैसे कभी न सन्तुष्ट होने वाले राष्ट्र थे जिन्होंने मिलकर रोम–बर्लिन–टोकियो धुरी का निर्माण किया था तो दूसरी ओर इंग्लैण्ड, फ्रांस, अमेरिका जैसे मित्र राष्ट्रों ने मिलकर एक सुदृढ सन्धि स्थापित कर ली थी और जब हिटलर के नेतृत्व में जर्मन सेना ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया तब इंग्लैण्ड और फ्रांस ने पोलैण्ड का समर्थन किया और द्वितीय विश्व युद्ध भड़क उठा।

(9) युद्ध का तात्कालिक कारण :– जर्मनी का पोलैण्ड पर आक्रमण द्वितीय महायुद्ध के लिए उपर्युक्त सब कारणों से बारूद का महल खड़ा हो चुका, उसमें केवल चिंगारी लगने की देर थी। यह कार्य पोलैण्ड पर जर्मनी के आक्रमण से पूरा हो गया। 1 सितम्बर 1939 को हिटलर ने अचानक पोलैण्ड पर चढ़ाई कर दी । 3 सितम्बर को ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मनी को युद्ध बन्द करने की चेतावनी दी। जर्मनी ने इस चेतावनी की उपेक्षा कर दी। तब ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। थोड़े ही समय में युद्ध ने इतना भीषण रूप धारण कर लिया कि वह एक भयानक महायुद्ध बन गया।

बोधप्रश्न :–1

1. निम्नलिखित प्रश्नों में सही/गलत पर चिन्ह लगाओ–

   (i) प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी की पराजय हुई और उसे वर्साय की अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े।

   (ii) आर्थिक मन्दी ने हिटलर ने उदय में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

   (iii) प्रथम विश्वयुद्ध के बाद निःशस्त्रीकरण को बढ़ावा मिला।

   (iv) ब्रिटेन ने सदैव फ्रांस का साथ दिया।

2. द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने में वसार्य की सन्धि कहाँ तक सहायक थी दस पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.2.2 द्वितीय विश्व युद्ध की घटनाएँ

द्वितीय विश्व युद्ध की घटनाओं को सुविधा की दृष्टि से हम 4 अवस्थाओं में बांट सकते है।

(1) प्रथम चरण :– इसमें 1सित0 1939 से 21 जून 1941 तक की घटनाएं शामिल है जिसमें जर्मनी ने पोलैण्ड, नीदर लैण्ड, बेल्जियम, वक्जेमवर्ग, फ्रांस, ब्रिटेन और यूनान पर आक्रमण किये।

(2) द्वितीय चरण :– 22 जून 1941 से 6 दिस0 1941 तक धुरी राष्ट्रों द्वारा अफ्रीका पर आक्रमण पर आक्रमण तथा जर्मनी का रूस पर आक्रमण।

(3) तृतीय चरण :– 7 दिस0 1941 से 7 नवम्बर 1942 तक इसमें जापान पर पर्ल हार्बर पर आक्रमण तथा मित्र राष्ट्रों के सैन्य बल का नीदरलैण्ड, ईस्टइण्डीज और काकेशस पर अधिकार।

(4) चतुर्थ अवस्था :– 8 नवम्बर 1942 से 6 मई 1945 तक। इसमें फ्रेंच उत्तरी अफ्रीका पर अमेरिका का आक्रमण तथा जर्मनी की आत्मसमपर्ण। 14 मई, 1945 तक जापान का आत्मसमर्पण।

1. पोलैण्ड पर आक्रमण और महायुद्ध का आरम्भ :– पोलैण्ड पर हिटलर का आक्रमण द्वितीय विश्वयुद्ध का तात्कालिक कारण था। 1सितम्बर 1939 को जब पूरा यूरोप सोया था हिटलर की सेना पोलैण्ड की सीमा पार कर गई। यह असल विद्युत प्रहार (Blitz krieg) था। बिजली की तरह जर्मन सेना पोलैण्ड पर टूट पड़ी। और 27 सित0 को पोलैण्ड ने आत्मसमपर्ण कर दिया।

इसी बीच 3 सितम्बर को ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । रूस भी अधिक दिनों तक इस युद्ध को दूर से नहीं देख सकता था। क्योंकि सम्पूर्ण पोलैण्ड पर जर्मनी का अधिकार हो जाने से जर्मनी की सीमाएं रूस से मिल जाती जिससे रूस की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो सकता था।

2. रूसी आक्रमण :– दूसरी ओर जर्मनी ब्रिटेन और फ्रांस के साथ युद्ध में व्यस्त था। इस अवसर का लाभ उठाकर रूस ने पोलैण्ड के पूर्वी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। लेकिन इससे रूस की समस्या का समाधान नहीं हो सकता था। अतः उसने तीन वाटिटक राज्यों इस्टोनिया, लेटविया, लिंथुएनिया पर अपना प्रभाव बड़ाना शुरू कर दिया। लेकिन रूस इतने से सन्तुष्ट नहीं था वह फिनलैण्ड में भी अपने सैनिक अड्डे स्थापित करना चाहता था। अतः 29 नवम्बर 1939 में सोवियत रूस ने फिनलैण्ड पर आरोप लगाया कि उसके सीमान्त सैनिकों ने रूस के सैनिकों पर गोलियां चलायी और फिनलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। फिनलैण्ड ने रूस की शिकायत राष्ट्रसंघ से अपील की रूस को राष्ट्रसंघ से निष्कासित कर

दिया लेकिन फिनलैण्ड को इससे कोई लाभ नहीं हुआ। रूस ने पुनः फरवरी 1940 में फिनलैण्ड पर आक्रमण उस पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार रूस ने उन सभी प्रदेशों पर अधिकार जमा लिया जो प्रथम विश्व युद्ध के बाद उसके हाथ से निकल गये थे।

डेनमार्क और नार्वे का पतन :– पोलैण्ड पर अधिकार करने के पश्चात हिटलर ने एक कूटनैतिक चाल चली। उसने इंग्लैण्ड और फ्रांस से कहा कि वह युद्ध बन्द करने का इच्छुक है, किन्तु मित्रराष्ट्रों से उसका अविश्वास किया अतः जर्मनी ने अप्रैल 1940 में नार्वे और डेनमार्क पर आक्रमण कर दिया। डेनमार्क और नार्वे पर जर्मनी का अधिकार हो गया। इन दोनों देशों की पराजय से ब्रिटेन की चेम्बरलेन सरकार को त्याग पत्र देना पड़ा और चेम्बरलेन के स्थान पर चर्चिल ब्रिटेन की प्रधानमंत्री बना।

हालैण्ड और बेल्जियम पर जर्मन आक्रमण :– 10 मई 1940 को जर्मनी ने लक्जेम्बर्ग, बेल्जियम और हालैण्ड पर आक्रमण कर दिया। इन देशों पर हिटलर ने आरोप लगाया कि ब्रिटेन और फ्रांस से सहयोग कर अपनी तटस्थता को भंग किया है। यद्यपि बेल्जियम की सहायता के लिए ब्रिटिश सेनाऐं गई लेकिन वे स्वयं जर्मन सेनाओं से घिर गई तथा स्वयं मुश्किल से बच सकी।

फ्रांस का आत्मसमपर्ण :– बेल्जियम पर आक्रमण करने का अर्थ ही यह था कि जर्मनी अब फ्रांस पर विद्युत प्रहार करने की तैयारी कर रहा है इसलिए फ्रांस अपने बचाव की तैयारी करने लगा। 10 मई को हिटलर ने फ्रांस पर आक्रमण कर दिया तथा शीघ्र ही जर्मन सेनाओं ने कुछ फ्रांसीसी क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया जिससे उत्तर की ब्रिटिश, बेल्जियम और फ्रेंच सेनाओं का दक्षिण की फ्रांसीसी सेनाओं से सम्बन्ध विच्छेद हो गया परिणामस्वरूप फ्रांस और मित्र राष्ट्रों की स्थिति कमजोर हो गई। 19 मई को फ्रांस की राजनीति में परिवर्तन आया और मार्शल पेंता को उप प्रधानमन्त्री बनाया गया। इस समय तक जर्मन सेनाएं 'डंकर्क' के बन्दरगाह तक पहुँच गई थी। 05 जून को जर्मनी की सेनाओं ने पुनः आक्रमण किया तथा जर्मन सेना के सामने फ्रांस की सेनाएं टिक नहीं सकी।

इटली का युद्ध में प्रवेश :– फ्रांस की कमजोर स्थिति को देखकर उसका पतन असम्भावी लगने लगा। मई 1940 के अन्त तक इटली की सैनिक तैयारी पूरी हो चुकी थी अतः मुसोलिनी ने हिटलर को सूचित किया किया कि वह जून के आरम्भ में युद्ध की घोषणा कर देगा। 10 जून को इटली ने भी फ्रांस तथा ब्रिटेन के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । इस घोषणा से फ्रांस का मनोबल समाप्त हो गया तथा 14 जून को जर्मन सेनाएं पेरिस पहुंच गयी। 19 जून को फ्रांस और जर्मनी के बीच युद्ध विराम सन्धि हुई जिसमें फ्रांस को आधे से अधिक भू–भाग जर्मनी को देने पड़े तथा इटली को भी वे क्षेत्र देने पड़े जो फ्रांस ने इटली से जीते थे। लेकिन को भी वे क्षेत्र देने पड़े जो फ्रांस ने इटली से जीते थे। लेकिन कुछ देशभक्त फ्रांसीसियों ने जर्मनी के विरूद्ध युद्ध जारी रखा। उस समय समूचे फ्रांस में केवल एक ही व्यक्ति था 'दीगाल' जो आत्मसमपर्ण के पक्ष में नहीं था। उसने फ्रांसीसी राष्ट्रीय समिति का संगठन कर युद्ध जारी रखा।

ब्रिटेन का जर्मनी पर आक्रमण :– फ्रांस की पराजय से ब्रिटेन की स्थिति कमजोर हो गई। 18 जून 1940 को जर्मनी ने इंग्लैण्ड पर भी आक्रमण कर दिया। लगभग पांच माह तक जर्मन हवाई जहाज इंग्लैण्ड पर बम वर्षा करते रहे लेकिन चर्चिल सरकार ने बड़े साहस से जर्मन सेनाओं का मुकाबला किया। इसी बीच अप्रैल 1941 में यूनान पर जर्मनी ने अधिकार कर लिया। जापान भी इस अवसर का लाभ

उठाकर सुदूर पूर्व में 'बृहत्तर पूर्वी एशिया' का निर्माण करना चाहता था इसलिए उसने जर्मनी तथा इटली से समझौता कर सित0 1941 ई0 में धुरी राष्ट्रों के साथ युद्ध में प्रवेश किया और फरवरी 1942 ई0 में जर्मन सेनाओं ने लीबिया, और 9 अप्रैल 1941 को यूगोस्लाबिया पर आक्रमण कर उसे जीत लिया।

जर्मनी का रूस पर आक्रमण :– यद्यपि रूस और जर्मनी के मध्य अगस्त 1941 में अनाक्रमक समझौता हो चुका था किन्तु हिटलर रूस को पराजित कर पूर्वी सीमा के खतरे को समाप्त करना चाहता था। वास्तव में दोनों देश बाल्कन क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहते थे अतः दोनों देशों के मध्य प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो गई। अतः 22 जून 1941 ई0 को जर्मन सेनाओं ने रूस पर आक्रमण कर यूक्रेन, एस्टोनिया, लिथुआनिया, फिनलैण्ड और पूर्वी पोलैण्ड पर अधिकार कर लिया किन्तु हिटलर मास्को पर अधिकार करने में असफल रहा।

जापान का अमेरिका पर आक्रमण :– जापान एशिया और प्रशान्त महासागर में अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था अतः फ्रांस के पतन का लाभ उठाकर जापान ने फ्रेंच, इण्डोचीन में अधिकार स्थापित कर लिया। जापान की इस गतिविधि से इंग्लैण्ड और अमेरिका चौकन्ने हो गये। अमेरिका ने जापान को चेतावनी दी कि यदि उसने इन द्वीपों में हस्तक्षेप किया तो प्रशान्त महासागर की शान्ति के लिए संकट उत्पन्न हो सकता है।

जापान ने देखा कि रूस हार रहा है इग्लैण्ड निर्बल है तथा संयुक्त राज्य युद्ध के लिए तैयार नहीं है। प्रशान्त महासागर में अपने एकमात्र प्रतिद्वन्दी अमेरिका को चुनौती देने का यही सुअवसर है। जापान ने 7 सित0 1941 ई0 को अमेरिका के पर्ल हार्बर पर हवाई हमला कर दिया। इस घटना के अगले दिन ही अमेरिका और इंग्लैण्ड ने जापान के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और इस प्रकार युद्ध ने वास्तविक विश्वयुद्ध का रूप धारण कर लिया।

जापान का सैनिक अभियान :– पर्ल हार्बर पर आक्रमण करने के बाद जापान दक्षिण पूर्वी एशिया और प्रशान्त महासागर में यूरोपीय साम्राज्य तथा अमेरिकी द्वीपों की ओर तीव्र गति से बढ़ने लगा और 6 माह के भीतर ही उसने पूर्वी एशिया और प्रशान्त महासागर से यूरोपीय और अमेरिकी साम्राज्य नष्ट कर दिया।

रूसी मोर्चा :– मार्च 1942 ई0 तक जर्मन सेनाऐं समस्त पश्चिमी प्रदेशों द्वारा दक्षिण में यूक्रेन तथा क्रीमिया आदि स्थानों पर अधिकार प्राप्त कर चुकी थी। चर्चिल ने अगस्त 1942 ई0 में रूस जाकर जर्मनी के विरूद्ध प्रबल प्रत्याक्रमण आरम्भ कर दिया और शीघ्र ही 22 जर्मन डिवीजनों को घेर लिया इससे जर्मनी की सैनिक शक्ति तथा हिटलर की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचा और साथ ही जर्मनी की रूस पर अधिकार करने की आशा सदा के लिए समाप्त हो गई।

महायुद्ध में नया मोड़, अफ्रीका व यूरोप में धुरी राष्ट्रों की पराजय :– वर्ष 1942 ई0 के पूर्वाद्ध तक यूरोप, अफ्रीका और पूर्वी एशिया में धुरीराष्ट्रों का विजय अभियान सफलतापूर्वक चला और ब्रिटेन, अमेरिका तथा रूस को सभी स्थानों पर पीछे हटना पड़ा, लेकिन 1942 ई0 के अन्त में धुरी राष्ट्रों की प्रगति रूक गई जब नवम्बर 1942 ई0 में ब्रिटेन और अमेरिका की सेनाओं ने संयुक्त रूप से उत्तरी अफ्रीका से जर्मन और इटली की सेनाओं को खदेड़ना प्रारम्भ कर दिया।

इटली की पराजय :– 10 जुलाई 1943 में मित्र राष्ट्रों ने सिसली पर आक्रमण किया, इटली की सेनाऐं पराजित हुई। इसी मध्य इटली का जनमत मुसोलिनी के विरूद्ध होने लगा और 18 जुलाई को मित्रराष्ट्रों की संयुक्त सेना ने इटली पर

आक्रमण किया, विवश होकर 3 दिसम्बर 1943 ई0 को इटली ने आत्मसमर्पण कर दिया। इस बीच मुसोलिनी को गिरफ्तार कर लिया गया। मुसोलिनी ने जर्मनी की सहायता से पुनः इटली को अपने प्रभाव में लाने का प्रयास किया किन्तु असफल रहा। अन्ततः 4 जून 1944 ई0 को रोम पर मित्रराष्ट्रों का अधिकार हो गया।

जर्मनी की पराजय :– रूसी सेना ने जर्मन सेना को चारो ओर से घेर लिया। ग्रीष्मकाल में रूसी सेना ने जर्मन सेना को पराजित कर दिया। रूस के इतिहास में यह बड़ी घटना मानी जाती है। शीघ्र ही रूसी सेना ने पोलैण्ड, रूमानिया, फिनलैण्ड और बुल्गारिया को जीत लिया तथा फ्रांस की सीमा पर जर्मन किलेबन्दी को ध्वस्त कर दिया। 25 अगस्त 1944 ई0 को जर्मन अधिकृत पेरिस का भी पतन हो गया और जर्मन सेनाओं ने आत्मसमर्पण कर दिया।

फ्रांस के बाद मित्रराष्ट्रों ने यूरोप में जर्मनी के अधीन राज्यों को मुक्त कराया। नवम्बर 1944 ई0 में मित्रराष्ट्रों की सेना ने हॉलैण्ड की ओर से जर्मनी में प्रवेश किया। जर्मन जनता भी धीरे–धीरे हिटलर के विरूद्ध होने लगी थी और उसकी हत्या का षडयन्त्र रचा जाने लगा। 2 मई 1945 ई0 को मित्रराष्ट्रों की सेना ने बर्लिन पर अधिकार कर लिया और 4 मई को जर्मन सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया। हिटलर ने अपनी पत्नी इवाब्रान सहित आत्महत्या कर ली और इटली में भी मुसोलिनी की उसकी पत्नी सहित गोली मारकर हत्या कर दी गई। दोनों तानाशाहों की मृत्यु के बाद 8 मई 1945 ई0 को यूरोप में युद्ध बन्द हो गया।

जापान की पराजय और विश्व युद्ध का अन्त :– अब केवल जापान ही ऐसा राष्ट्र बचा था जिसने आत्मसमर्पण नहीं किया था। ब्रिटिश सेना सुदूरपूर्व में तेजी से बढ़ने लगी और उन्होंने वर्मा को मुक्त करवा लिया। तत्पश्चात मलाया, फिलीपीन्स, व सिंगापुर मुक्त कराये गये। अन्त में जापान पर आक्रमण किया गया। 6 अगस्त 1945 ई0 को जापान के हिरोशिमा पर अमेरिका ने अणुबम गिराया तथा इसके 3 दिन पश्चात नागासाकी पर भी अणुबम गिराया। अणुबमों के प्रलयकारी विनाश से भयभीत होकर 10 अगस्त को जापान से आत्मसमर्पण कर दिया। 14 अगस्त को युद्ध बन्द हो गया। इस प्रकार 6 वर्ष के विनाश के बाद द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हो गया।

1.2.3 द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम

द्वितीय विश्वयुद्ध लगभग 6 वर्ष तक चला। यह मानव इतिहास का सर्वाधिक विनाशकारी युद्ध था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप में अनेक प्रवृत्तियों का उदय हुआ। राष्ट्रीयता की भावना क्षीण होने लगी तथा उसका स्थान अब नयी विचारधारायें लेने लगी जो समाज को एक नये रूप में संगठित करना चाहती थी। विश्व में द्वितीय विश्वयुद्ध के निम्न प्रभाव पड़े।

(1) परमाणु युग का सूत्रपात :– यह युद्ध पूर्व के युद्धों से भिन्न था। हिटलर के विद्युतवेगीय युद्ध ने संसार को चकित कर दिया। इस युद्ध में जल व थल सेना का उतना महत्व नहीं था जितना कि वायुसेना का। जापान के हिरोशिमा व नागाशाकी पर अणुबम से हमला के साथ ही परमाणु युग का सूत्रपात हुआ और जन–धन का अत्यधिक विनाश हुआ।

(2) औपनिवेशिक साम्राज्य का अन्तः– द्वितीय विश्वयुद्ध ने स्वतन्त्रता की भावना को बढ़ा दिया। अभी तक यह विश्वास किया जाता था कि यूरोपीय शक्तियाँ अजेय है उनके उपनिवेश स्वन्त्र नहीं हो सकते लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध ने यह विश्वास समाप्त कर दिया। परिस्थितियों से विवश होकर साम्राज्यवादी राष्ट्रों को झुकना

पड़ा और अपने अधीनस्थ देशों को स्वतन्त्रता प्रदान करनी पड़ी। इस क्रम में भारत, वर्मा, मलाया, लंका, मिस्र आदि अनेक देश ब्रिटेन के अधिपत्य से मुक्त हो गये। हॉलैण्ड के उपनिवेश जावा, सुमात्रा आदि भी स्वतन्त्र हो गये। इस प्रकार दूसरे विश्व युद्ध के बाद यूरोपीय साम्राज्यवाद या औपनिवेशिक साम्राज्य का सूर्य डूब गया तथा ब्रिटिश, फ्रांसीसी और डच साम्राज्य के बहुत बड़े भाग का अन्त हो गया। वास्तव में एशिया के पुनरूत्थान की घटना अणुबम से भी अधिक विस्फोटक थी।

(3) शक्ति संतुलन का हस्तान्तरण :– विश्व के महान राष्ट्रों की तुलनात्मक स्थिति को द्वितीय विश्वयुद्ध ने अत्यधिक प्रभावित किया। इस युद्ध से पूर्व विश्व का नेतृत्व इग्लैण्ड के हाथों में था, किन्तु इसके पश्चात् नेतृत्व की बागडोर इंग्लैण्ड के हाथों से निकलकर अमेरिका व रूस के अधिकार में पहुँच गयी। विश्वयुद्ध में जर्मनी, जापान व इटली के पतन के फलस्वरूप रूस पूर्वी यूरोप का सर्वाधिक प्रभावशाली व शक्तिशाली राष्ट्र बन कर उभरा।

दूसरी ओर पश्चिम के देशों का ध्यान अमेरिका की तरफ आकर्षित हुआ। फ्रांस, इटली, तथा स्पेन, अमेरिका के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिए। इस प्रकार सम्पूर्ण यूरोपीय महाद्वीप दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं में विभाजित हो गया। एक विचारधारा का नेतृत्व अमेरिका कर रहा था, जबकि दूसरी विचारधारा की बागडोर रूस के हाथों में थीं। इस प्रकार शक्ति सतुलंन रूस एवं अमेरिका के नियन्त्रण में आ गई।

(4) शीत युद्ध का प्रारम्भः– द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के राजनीतिज्ञों को यह आशा थी कि संसार में अब दीर्घकालीन शान्ति स्थापित हो जायेगी किन्तु यह आशा पूर्ण न हो सकी। युद्ध के बाद अर्न्तराष्ट्रीय मंच पर दो महाशक्तियों का उदय हुआ– रूस व अमेरिका। ये दोनों देश दो अलग–अलग विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते थे। अतः दोनों देशों के मध्य विभिन्न समस्याओं पर शीघ्र मतभेद उत्पन्न हो गये। इन मतभेदों ने इतना तनाव उत्पन्न कर दिया कि आगे चल कर दोनों देशों के मध्य वैचारिक युद्ध प्रारम्भ हो गये जो शीतयुद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। सोवियत संघ के विघटन के बाद ही शीतयुद्ध समाप्त हुआ। शीत युद्ध के बाद दो ध्रुवीय अवस्था का स्थान धीरे–धीरे एक ध्रुवीय व्यवस्था में बदल गया जो अमेरिका में केन्द्रित हो रहा है।

(5) अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास (संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना :– द्वितीय विश्वयुद्ध के विनाशकारी परिणामों ने विभिन्न देशों की आँखें खोल दी वे इस बात का अनुभव करने लगे कि परस्पर सहयोग, विश्वास तथा मित्रता के बिना शान्ति व व्यवस्था की स्थापना नहीं की जा सकती है। ऐसी ही बात का अनुभव प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भी हुआ था और राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई थी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पुनः इसी भावना का उदय हुआ और विश्व शान्ति की स्थापना के लिए सन् 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई थी। इस संस्था का आधारभूत लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की भावना कायम करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं मैत्री भावना का विकास करना था।

1.3 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद फ्रांस द्वारा जर्मनी से क्षतिपूर्ति वसूल करने की कठोर नीति, विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी, जापान की

साम्राज्यवादी नीति, जर्मनी में हिटलर की तानाशाही तथा इटली में मुसेलिनी की लिप्सा ने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व्यवस्था को आघात पहुचाँया जिसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति भयावह हो गयी जिससे द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

1.4 शब्दावली

(1) मित्रराष्ट्र एवं धुरीराष्ट्र :– प्रथम विश्व युद्ध के समय विश्व दो खेमों में बँट गया। लोकतन्त्र का समर्थन करने वाले देश मित्र राष्ट्र तथा एकतन्त्र का समर्थन करने वाले देश धुरी राष्ट्र कहलाये।

(2) निःशस्त्रीकरण– शान्ति व सुरक्षा के लिए शस्त्रों को समाप्त करना निःशस्त्रीकरण कहलाता है।

(3) तानाशाही :– व्यक्ति विशेष की निरंकुश सत्ता की स्थापना जिसमें आम जनता के विचारों की कोई भूमिका न हो।

1.5 बोध प्रश्न–2

1. निम्नलिखित प्रश्नों पर सही या गलत का चिन्ह लगाकर बताइयें

   (i) प्रथम विश्व युद्ध के बाद मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी के साथ मधुर व्यवहार किया।

   (ii) जर्मनी का निःशस्त्रीकरण कर दिया गया।

   (iii) फ्रांस जर्मनी का सदैव सहयोगी बना रहा।

   (iv) जर्मनी ने वर्साय की सन्धि को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

2. द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामों पर 10 पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

(i) √ (ii) √ (iii) × (iv) ×

बोध प्रश्न–2

(i) × (ii) √ (iii) × (iv) ×

इकाई–2

मुसोलिनी तथा हिटलर

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 मुसोलिनी का उदय

2.4 हिटलर का उदय

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 बोध प्रश्न

2.8 बोध प्रश्नापें के उत्तर

2.1 उद्देश्य

इस इकाई में इटली के फासीवादी विचारधारा के जन्मदाता मुसोलिनी तथा जर्मनी में नाजीवादी विचारधारा के जन्मदाता हिटलर के उदय पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की गई है। साथ ही यह भी बताने का प्रयास किया है कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद इटली को पूर्ण लाभ न प्राप्त हो सका जिससे वहाँ की साम्राज्यवादी जनता में घोर असन्तोष उत्पन्न हो गया जिसने मुसोलिनी के उदय में सहायता की। इसी प्रकार की परिस्थितियाँ जर्मनी में उत्पन्न हो रहीं थी जिसने हिटलर के उदय में सहायता की।

इस इकाई में आप जान सकेगें–

- ❖ मुसोलिनी का उदय
- ❖ हिटलर का उदय

2.2 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध के बाद पराजित राज्यों तथा नवनिर्मित राज्यों में लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्थायें इस आशा से स्थापित की गई थी कि इन राज्यों में ये व्यवस्थायें स्थायी रूप से चलती रहेंगी किन्तु ये आशा व्यर्थ गई। जर्मनी में प्रथम विश्व के बाद वाइमर गणतन्त्र की स्थापना हुई। इस सरकार पर वर्साय की सन्धि स्वीकार करने का आरोप था। विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी ने हिटलर के उदय में महत्वपूर्ण योगदान दिया। दूसरी ओर इटली में भी तानाशाही का उदय हुआ। इटली निवासियों में असंतोष को दूर करने तथा साम्राज्यवादी उद्देश्य को लेकर

मुसोलिनी ने भी तानाशाही सत्ता स्थापित की। इस इकाई में हम इटली में मुसोलिनी के उदय तथा जर्मनी में हिटलर के उदय के विषय में विस्तृत चर्चा करेगें।

2.3 मुसोलिनी का उदय

प्रथम विश्व युद्ध में इटली ने मित्र राष्ट्रों का साथ दिया था। जब युद्ध समाप्त हुआ तो उसने अपने आप को विजेताओं की पंक्ति में खड़े पाया। पेरिस शान्ति सम्मेलन में इटली को मित्र राष्ट्रों से लाभ की पूरी आशा थी लेकिन उसकी आशा पूर्ण नहीं हो सकी। इंग्लैण्ड और फ्रांस ने जिन प्रदेशों को प्रलोभन देकर इटली को महायुद्ध में अपनी ओर से शामिल किया था, उन प्रदेशों में से कुछ को छोड़कर शेष प्रदेश इटली को नहीं दिये गये। साथ ही इटली की अफ्रीका में साम्राज्यवादी विस्तार की कामना भी अधूरी रह गयी। अतः वर्साय की सन्धि से इटली की जनता में घोर असंतोष उत्पन्न हो गया। देशभक्तों और राष्ट्रवादियों ने इसे राष्ट्रीय अपमान समझा और इसके लिए अपनी सरकार को दोषी ठहराया जो इस शान्ति सम्मेलन में अपने दावे को सही ढंग से पेश नहीं कर सकी थी। महायुद्ध के कारण इटली को जन–धन की अपार हानि हुई और उस पर विदेशी कर्ज भी लद गया। युद्ध में उसने विशाल धनराशि खर्च की थी, लेकिन मित्र राष्ट्रों ने अन्य देशों की भाँति उसे मालामाल नहीं किया था। इससे इटली को घोर निराशा हुई। इसके अतिरिक्त युद्ध के दौरान उद्योग–धन्धे तथा व्यवसाय ठप पड़ गये थे जिससे राष्ट्रीय आय में भारी कमी आयी, सिक्कों का मूल्य गिर गया और बेकारी की समस्या बहुत अधिक बढ़ गयी। इसके साथ–साथ युद्ध के बाद बहुत से सैनिक, श्रमिक बेकार हो गये थे। इस आर्थिक संकट से इटली में चारों ओर असंतोष का वातावरण था।

ऐसे अशान्त वातावरण में देशभर में जो क्रान्तिकारी संस्थायें बन रही थीं वे इस अशान्ति को और बढ़ावा दे रही थी। कार्लमार्क्स और लेनिन के विचारों का प्रभाव जनता पर पड़ने लगा और देश में कई दल उभरकर सामने आये। इन दलों ने किसानों और मजदूर वर्ग पर अपना प्रभाव छोड़ा और इटली में सर्वहारा वर्ग शासन की स्थापना का स्वप्न देखने लगा।

एक तरफ जहाँ इटली में अराजकता की स्थिति बनी हुई थी वहीं दूसरी ओर वहाँ की सरकार हाथ पर हाथ धरे हुए चुपचाप बैठी हुई थी। इसका नतीजा यह हुआ कि इटली की स्थिति बिगड़ती चली गयी। इन परिस्थितियों में इटली के अन्दर एक ऐसी पार्टी का जन्म हुआ जिसने इटली के शासन के स्वरूप को ही बदल दिया। यह पार्टी फासिस्ट कहलाती थी। आरम्भ में यह संगठन प्रभावशाली नहीं था किन्तु धीरे–धीरे इस आन्दोलन का रूप बदलता गया। इसी समय इस पार्टी को एक योग्य नेता भी मिल गया जिसका नाम था बेनिटो मसोलिनी।

जब प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ तब मुसोलिनी इटली की सेना में एक सैनिक के रूप में भर्ती हो गया और उसने इस युद्ध में अद्वितीय वीरता का प्रदर्शन किया। युद्ध की समाप्ति पर शान्ति सम्मेलन में इटली के साथ जो व्यवहार हुआ और देश के अन्दर जो अव्यवस्था फैली उसे देखकर मुसोलिनी को बड़ा दुःख हुआ। उसने देश में इधर–उधर स्थापित फासिस्ट गुटों का संगठन शुरू किया। मुसोलिनी ने अपनी पूरी शक्ति फासिस्ट के संगठन में लगा दी। 1921 ई0 के चुनाव में फासिस्ट दल के 35 सदस्य पार्लियामेन्ट के लिए निर्वाचित हुए। 1922

तक मुसोलिनी ने इटली में ढ़ाई हजार फासिस्ट गुटों का निर्माण कर लिया था। सन् 1922 तक आते–आते मुसोलिनी इटली का सर्वशक्तिशाली व्यक्ति हो गया था। सरकार भी उसका कोई विरोध नहीं कर पा रही थी। 20 अक्टूबर 1922 ई0 को राजा विक्टर इमेनुअल तृतीय ने मुसोलिनी के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल के गठन की आज्ञा दे दी और 31 अक्टूबर को मुसोलिनी को प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया गया।

मुसोलिनी के उद्देश्य एवं सिद्धान्त

प्रधानमंत्री बनते ही मुसोलिनी ने राज्य की समस्त सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित करने का प्रयत्न किया। मुसोलिनी चाहता था कि संसद में फासिस्ट पार्टी ही सर्वेसर्वा रहे। वह अन्य दलों को कुचल देना चाहता था। इस उद्देश्य के लिए उसने कार्यवाही भी करनी शुरू कर दी। उसने विरोधी दलों के विरूद्ध कठोर कार्यवाही की। स्कूल और कालेज में फासिस्ट विचारधारा के आधार पर शिक्षा देना अनिवार्य कर दिया गया। इस प्रकार अपने विरोधियों का दमन करके मुसोलिनी का अधिनायक बन बैठा अब वह इटली में सर्वेसर्वा था।

दो विश्व युद्धों के बीच में फासिस्ट विचारधारा और सिद्धान्त का अत्यन्त महत्व रहा है क्योंकि यूरोप के अनेक देशों में इसी संगठन के आधार पर राज्य का संगठन किया गया। मुसोलिनी लोकतन्त्र को हानिकारक समझता था क्योंकि उसका मानना था कि लोकतन्त्र ने निरंकुश शासन आ अन्त तो कर दिया लेकिन शासन की सत्ता केवल मुट्ठी भर लोगों के हाथ में आ जाने से इससे वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

मुसोलिनी प्रजातन्त्र और वैयक्तिक स्वतन्तत्रा दोनों का विरोध करता है। उसके विचार में देश मे ऐसी शासन व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें सभी लोगों को राष्ट्रीय, सामाजिक और सामूहिक उन्नति में समान रूप से योगदान देने का अवसर प्राप्त हो सके। कोई किसी का शोषण न करे और वर्ग संघर्ष का अवसर न मिले। पर यह व्यवस्था तभी कायम हो सकती है जब दलीय प्रथा का अन्त कर दिया जाए।

इसके साथ ही उसके अनुसार राज्य में व्यक्ति को कोई महत्व नहीं है। "राज्य व्यक्ति के लिए नहीं बल्कि व्यक्ति ही राज्य के लिए है।" इसी सिद्धान्त के आधार पर मुसोलिनी पूँजीपतियों और मजदूरों दोनों का दमन किया।

मुसोलिनी शान्ति का भी विरोध करता था और युद्ध का पक्षपाती था। युद्ध के अभाव में कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता था। चिरस्थायी शान्ति की कामना उसके अनुसार करना बेतुकी बात थी। मुसोलिनी मत्स्यन्याय में में विश्वास करता था, शान्तिपूर्ण सहजीवन में नहीं।

मुसोलिनी की गृहनीति

मुसोलिनी का कार्यकाल इटली के सर्वांगीण विकास के लिए विख्यात है। उसने प्रजातान्त्रिक सरकार के अधूरे कार्यों को पूरा करने के साथ–साथ देश के आर्थिक, औद्योगिक, धार्मिक, शिक्षा के विकास के लिए भी अथक प्रयास किया।

उसके समय व्यापार और यातायात के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई। मुसोलिनी ने गृहनीति के अन्तर्गत निम्न कार्य किये–

1. आर्थिक नीति

(a) व्यवसाय :– जिस समय मुसोलिनी इटली का अधिनायक बना उस समय देश की आर्थिक स्थिति विषम थी। अनेक आर्थिक समस्याओं का सामना मुसोलिनी को करना पड़ा। इटली के पास उत्पादन के साधनों का आभाव था न तो पूँजी थी न लोहा और न कोयला आदि। अतः देश में कोयले और पेट्रोल के आभाव को दूर करने के लिए उसने आल्पस तथा एप्पीनाइन पर्वत के झरनों से जल विद्युत को उत्पन्न करने की व्यवस्था की। इटली में जल विद्युत का उत्पादन इतना बढ़ गया कि वह अन्य देशों से आगे निकल गया। उसके समस्त कारखाने और यातायात इसी शक्ति से चलने लगे। मुसोलिनी ने इटली के उद्योगों की रक्षा के लिए आयात कर भी लगाये।

(b) कृषि :– मुसोलिनी ने कृषि की ओर भी ध्यान दिया और खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि के लिए अनेक कार्य किये। सरकार ने नेपल्स और रोम के मध्य के सभी दलदलों को सुखा दिया जिससे लाखों एकड़ जमीन जोतने योग्य हो गयी। किसानों को सरकार की ओर से तरह–तरह की सहायता दी गई।

इस प्रकार मुसोलिनी ने उद्योग और कृषि क्षेत्र में जो सुधार किये उसके फलस्वरूप इटली में समृद्धि आने लगी। बेकारी की समस्या समाप्त हो गयी और राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई।

(c) रेलवे व्यवस्था :– उस समय देश की रेलवे व्यवस्था निरन्तर पतन की ओर जा रही थी। मुसोलिनी ने रेलवे की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए पूरा ध्यान दिया और एक आयोग की नियुक्ति की और उसकी सिफारिसों के आधार पर रेलवे में सुधार किये। उसके प्रयत्नों से रेलवे बजट के घाटे को शीघ्र पूरा कर लिया।

मुसोलिनी औद्योगिक क्षेत्र में वर्ग संघर्ष का विरोधी था। इसने वर्ग संघर्ष को समाप्त करने के लिए पूँजीपतियों व श्रमिकों के प्रतिनिधियों के संघ सम्बन्ध स्थापित किये और इनके विवादों को दूर करने के लिए विशेष अदालतों का गठन किया।

2. शिक्षा सम्बन्धी नीति :– मुसोलिनी ने अपने दल को सुदृढ़ बनाने के लिए शिक्षा प्रणाली में कुछ महत्वपूर्ण सुधार किये। उसने फासिस्टवादी सिद्धान्तों के आधार पर सारे देश में शिक्षा देने की व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त लड़कियों को फासिज्म शिक्षा देने की भी पृथक व्यवस्था की गई।

3. पोप के साथ समझौता :– सन् 1870 में इटली का एकीकरण पूरा होने के बाद पोप तथा इटली की सरकार के मध्य कटुता उत्पन्न हो गयी थी जो मुसोलिनी के समय भी विद्यमान थी। मुसोलिनी की धार्मिक मामलों में रूचि नहीं थी। अतः उसने पोप और कैथोलकों की समस्याओं का हल करना उचित समझा। उसके प्रयासों से सन् 1929 में पोप के निवास स्थान *'लेटरन'* के महल में दोनों के मध्य एक समझौता हुआ। इसलिए इसे *'लेटरन समझौता'* भी कहा जाता है। इसके अनुसार :–

1. पोप का रोम से अधिकार समाप्त हो गया और रोम को इटली की राजधानी स्वीकार कर लिया गया।

2. मुसोलिनी ने पोप को कैथोलिक जगत का स्वामी स्वीकार कर लिया।

3. रोमन कैथोलिक धर्म को इटली का राजधर्म घोषित किया गया।

4. पादरियों को वेतन देने का दायित्व सरकार के ऊपर आ गया।

5. सभी विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया।

इस प्रकार पोप और मुसोलिनी के इस समझौते से इटली की जनता को बड़ा सन्तोष हुआ, लेकिन शीघ्र ही युवा वर्ग की शिक्षा को लेकर दोनों में पुनः मतभेद हो गया, जब मुसोलिनी ने युवा वर्ग के लिए फासिस्ट शिक्षा अनिवार्य कर दी। मुसोलिनी ने धीरे–धीरे शिक्षा के क्षेत्र में चर्च के प्रभाव को बिल्कुल समाप्त कर दिया।

4. **<u>मुसोलिनी की विदेश नीति</u>** :– पेरिस शान्ति सम्मेलन के निर्णय से इटलीवासियों में असंतोष व्याप्त था। मुसोलिनी इन समस्याओं को भलि–भाँति समझता था। अतः उसने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इटली की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करने का निश्चय किया। वह इटली की तत्कालीन सीमाओं से सन्तुष्ट नहीं था। वह एक विशाल साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। इसके लिए वह युद्ध को अति आवश्यक समझता था। उसकी विदेश नीति 3 सिद्धान्तों पर आधारित थी।

1. अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इटली की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करना।

2. एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करना।

3. भूमध्य सागर में इटली की स्थिति को मजबूत बनाना।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर उसने वैदेशिक क्षेत्र में निम्न मुख्य कार्य किये–

1. **<u>रोहडस एवं डोडिकानीज द्वीप समूहों पर अधिकार</u>** :– पेरिस सम्मेलन में जब मित्रराष्ट्रों के मध्य लूट का बँटवारा किया जा रहा था तो उस समय इटली की ओर से भूमध्यसागर के पूर्वी भाग में स्थित रोहडस और डोडिकानीज द्वीप समूहों को प्राप्त करने की माँग प्रस्तुत की गई थी। किन्तु इटली की इस माँग की उपेक्षा की गई। मुसोलिनी ने सत्ता में आते ही इन द्वीप समूहो पर 1923 ई0 में अधिकार कर उनकी किलेबन्दी करायी।

4. **<u>फ्यूम और अल्बानिया पर अधिकार</u>** :– पेरिस की सन्धि के दौरान फ्यूम के प्रश्न पर इटली और यूगोस्लाविया के मध्य मतभेद उत्पन्न हो गया था। सन् 1920 में दोनों के मध्य एक समझौते के द्वारा फ्यूम को एक स्वतन्त्र राज्य बना दिया गया। इटली फ्यूम पर अधिकार करना चाहता था। अतः उसने यूगोस्लाविया के साथ 1924 ई0 में एक सन्धि के द्वारा फ्यूम पर अधिकार कर लिया। यह मुसोलिनी की महान सफलता थी।

फ्यूम पर अधिकार करने के बाद मुसोलिनी का ध्यान अल्बानिया की ओर गया। इस राज्य का निर्माण द्वितीय बाल्कन युद्ध के पश्चात किया गया था। पेरिस के शान्ति सम्मेलन में इटली ने माँग की थी कि 'मेंडेट व्यवस्था' के अन्तर्गत अल्बानिया राज्य उसे सौंप दिया जाय। लेकिन इटली की माँग को ठुकराकर अल्बानिया को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया गया। उस समय अल्बानिया की

आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। अतः वहाँ की सरकार सन् 1926 में इटली के साथ समझौता कर आर्थिक सहायता प्राप्त करने लगी। यह मुसोलिनी की बड़ी सफलता मानी जाती है। धीरे–धीरे मुसोलिनी ने अल्बानिया की आर्थिक, वित्तीय और सैनिक व्यवस्था पर नियन्त्रण स्थापित कर लिया तथा सन् 1939 में मुसोलिनी ने अल्बानिया पर आक्रमण कर बड़ी सरलता से अल्बानिया पर अधिकार कर लिया।

3. **अबीसीनिया पर आक्रमण** :– मुसोलिनी ने अपनी ताकत बढ़ाने के उद्देश्य से सन् 1935 में फ्रांस के साथ अपने सम्बन्ध अच्छे बना लिये। इंग्लैण्ड और फ्रांस के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के बाद मुसोलिनी ने अबीसीनिया पर अधिकार करने के लिए सन् 03 अक्टूबर 1935 ई0 में आक्रमण कर दिया। अबीसीनिया ने यह मामला राष्ट्रसंघ में प्रस्तुत किया। लेकिन इंग्लैण्ड और फ्रांस की नीतियों के कारण इटली पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सका। अतः मित्रराष्ट्रों के सहयोग के अभाव के बिना तथा राष्ट्रसंघ की असमर्थता के कारण अबीसीनिया पराजित हुआ और 1936 ई0 में इटली का अबीसीनिया पर अधिकार स्थापित हो गया। वास्तव में अबीसीनिया का पतन राष्ट्रसंघ के पतन का स्पष्ट संकेत था।

4. **रोम–बर्लिन–धुरी का गठन** :– प्रारम्भ में मुसोलिनी और हिटलर के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे लेकिन धीरे–धीरे दोनों तानाशाहों के मध्य कटुता कम होती चली गयी। दूसरी ओर इंग्लैण्ड, फ्रांस व रूस के साथ मुसोलिनी के सम्बन्ध भी खराब होते चले गये। अतः परिवर्तित राजनीतिक परिस्थितियों में विश्व के दो महान तानाशाहों ने अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के उद्देश्य से परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना ही उचित समझा। इसी धारणा के साथ 26 अक्टूबर 1936 ई0 को एक समझौते के साथ ही 'रोम–बर्लिन धुरी' का गठन किया गया।

5. **स्पेन के गृहयुद्ध में हस्तक्षेप** :– इसी समय स्पेन में गणतन्त्र तथा राष्ट्रवादी नेताओं के मध्य संघर्ष प्रारम्भ हो गया। 18 जुलाई 1936 ई0 को स्पेन की कंजरवेटिव पार्टी ने जनरल फ्रेंकों के नेतृत्व में गृहयुद्ध की घोषणा कर दी। मुसोलिनी ने जनरल फ्रेंकों का समर्थन किया और जनरल फ्रेंकों को विजय प्राप्त हुई और मुसोलिनी का स्पेन में प्रभाव बढ़ने लगा।

6. **इटली तथा द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारम्भ** :– 01 सितम्बर 1939 ई0 को हिटलर द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण करने के साथ ही द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारम्भ हो गया। 1939 ई0 में जर्मनी और इटली के मध्य हुए समझौते के अनुसार प्रारम्भ में इटली ने युद्ध में भाग नहीं लिया लेकिन जब मुसोलिनी को हिटलर की विजय का पूर्ण विश्वास हो गया तो उसने 11 जून 1940 को मित्रराष्ट्रों के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

द्वितीय विश्व युद्ध और मुसोलिनी का अन्त :–

जर्मनी के साथ सैनिक समझौता होने पर भी पोलैण्ड का प्रश्न मुसोलिनी को परेशान कर रहा था। वह जानता था कि इटली अभी इस स्थिति में नहीं है।

मुसोलिनी ने अपनी वास्तविक स्थिति आँकते हुए हिटलर को पोलैण्ड पर आक्रमण कने से रोकने का असफल प्रयास किया तथा मुसोलिनी ने हिटलर को सूचित किया कि यदि मित्र राष्ट्रों ने पोलैण्ड के पक्ष में जर्मनी पर प्रत्याक्रमण किया तो इटली तटस्थ रहेगा। लेकिन मुसोलिनी द्वारा बार–बार रोके जाने के बावजूद हिटलर ने 1 सितम्बर 1939 ई0 को युद्ध की घोषणा कर दी। उधर फ्रांस और ब्रिटेन ने घोषणा की कि यदि जर्मन सेनायें पोलैण्ड से हटा ली जाए तो वे इटली

की मध्यस्थता स्वीकार कर लेगें। लेकिन हिटलर ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया और 3 सितम्बर 1939 को ब्रिटेन और फ्रांस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

हिटलर की घोषणा से मुसोलिनी चिन्तित हो उठा। उधर हिटलर भी मुसोलिनी से क्रुद्ध था क्योंकि उसे इटली से पर्याप्त सहयोग नहीं मिल पा रहा था। जर्मनी की प्रारम्भिक सफलताओं को देखते हुए मुसोलिनी ने जर्मनी को सहायता पहुँचाने का निश्चय किया। वह युद्ध में शामिल होने के उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। वास्तव में इटली की दृष्टि में युद्ध में शामिल होने का उचित अवसर यही था। जब मित्र राष्ट्रों की पराजय लगभग निश्चित हो चुकी हो किन्तु उन्होंने आत्मसमर्पण न किया हो। इस प्रकार पहले से ही मृतप्रायः राष्ट्र को पराजित कर विजेता होने की प्रशंसा के साथ–साथ लूट के माल में हिस्सा बंटाने का दावा भी किया जा सकता था।

हिटलर द्वारा फ्रांस को लगभग पूरी तरह पराजित कर देने के बाद 11 जून 1940 ई0 को मुसोलिनी ने युद्ध में शामिल होने की घोषणा कर दी। उसी वर्ष जापान ने पर्ल हार्बर पर बम वर्षा कर दी। इस प्रकार रोम–बर्लिन–टोक्यो धुरी देश पूर्ण सहयोग के साथ मित्रराष्ट्रों से जूझने लगे।

लेकिन प्रतिकर्ष आने में देर नहीं लगी और 1942 ई0 में जर्मनी की सेनायें पराजित होने लगी। 1943 ई0 में मित्रराष्ट्रों ने सिसली और रोम पर बम वर्षा कर दी। इसी मध्य इटली में मुसोलिनी के विरूद्ध जनता में विद्रोह की भावना फैलने लगी और 24 जुलाई 1943 को मुसोलिनी को बन्दी बनाकर पदच्युत कर दिया गया। 4 जून 1944 को मित्रराष्ट्रकी सेनाओं ने रोम पर कब्जा कर लिया और इटली को भी हार का मुख देखना पड़ा। इटली के क्रुद्ध देशवासियों ने अपने नेता मुसोलिनी को गोली से उड़ा दिया और देश में प्रजातान्त्रिक सरकार की स्थापना हुई।

<u>बोध प्रश्न</u> –1

1. **निम्नलिखित प्रश्नों में सही/गलत का चिन्ह लगाओं:–**

   (i) मुसोलिनी को प्रजातन्त्र में विश्वास नहीं था।

   (ii) मुसोलिनी ने सत्ता की सारी शक्तियाँ अपने हाथों में ले ली।

   (iii) वह द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रारम्भ से ही हिटलर का साथ दिया।

   (iv) उसने राष्ट्र को व्यक्ति से ऊपर समझा।

2. मुसोलिनी के उदय पर दस पंक्तियों में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 हिटलर का उदय

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद जर्मनी में वाइमर गणतन्त्र की स्थापना हुई किन्तु शीघ्र ही जर्मन जनता ने वाइमर गणतन्त्र के राजनीतिज्ञों को प्रतिष्ठा नहीं दी। तत्कालीन सरकार की नीतियों पर से जनता का विश्वास उठ गया था। जर्मन जनता एक ऐसे नेता की खोज करने लगी जो उनके कष्टों का अन्त कर सके। ऐसे में उन्हें हिटलर के रूप में ऐसा नेता मिल गया जिसने एक बार फिर जर्मनी का बर्चस्व स्थापित कर जर्मनी का सर्वेसर्वा बन गया। हिटलर के उदय के निम्न कारण थे–

1. **वर्साय की सन्धि** :– वास्तव में वर्साय की सन्धि को हिटलर और उसके दल (नाजी दल) के उत्थान का प्रमुख कारण बताया जाता है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद प्रत्येक दृष्टिकोण से जर्मनी की स्थिति इतनी दयनीय हो गई थी कि पूरा देश निराश हो गया। जर्मनी को तरह–तरह की यातनायें भोगनी पड़ी, राष्ट्रीय अपमान सहना पड़ा था। अब जर्मन लोग अपने पुराने गौरव को पुनःप्राप्त करना चाह रहे थे। वे ऐसे नेता की खोज में थे जो देश के अपमान को धोकर राष्ट्रीय गौरव का उत्थान कर सके। हिटलर के व्यक्तित्व में उन्हें ऐसा ही नेता मिल गया जो उनका 'फ्यूरर' (मुक्तिदाता) बन सकता था।

2. **जातीय परम्परा** :– दूसरा प्रमुख कारण यह भी था कि जर्मनी में अभी तक प्रजातान्त्रिक भावनाओं का पूर्ण विकास नहीं हुआ था। प्रथम महायुद्ध के बाद वाइमर गणराज्य की स्थापना की गई थी वह इसलिए नहीं कि जर्मन जनता को गणतन्त्र में विश्वास था। वास्तव में जर्मन जनता सोच रही थी कि यदि उन्होंने गणतन्त्र के सिद्धान्त को अपना लिया तो उन्हें अमेरिकी राष्ट्रपति विल्सन की सहानुभूति प्राप्त हो जायेगी। अतः हिटलर को अधिनायक के रूप में स्वीकारना जर्मन जनता के लिए बड़ी बात नहीं थी। तथा हिटलर जो भी विचार प्रस्तुत किये वह कोई नये नहीं थे उसने वही कहा जो हीगल, फ्रेडरिक, विस्मार्क और कैसर आदि कह चुके थे।

सच तो यह था कि हिटलर के विचार सम्पूर्ण विचारधारा का निचोड़ थे और इसीलिए जर्मन जनता इसे स्वीकार करने के लिए तैयार थी।

3. **आर्थिक संकट** :– इतना होने पर भी हिटलर को उतनी सफलता नहीं प्राप्त होती यदि जर्मनी में आर्थिक संकट (जो वर्साय की सन्धि का ही परिणाम था) नहीं हुआ होता। जर्मनी में आर्थिक संकट सब देशों से अधिक तीव्र था। जर्मन जनता जितनी तबाह थी शायद उतना किसी अन्य देश के निवासी नहीं और ऐसे समय में भी फ्रांस ने क्षतिपूर्ति की राशि कठोरता पूर्वक जर्मनी से वसूल की। बेरोजगारों की संख्या लाखों में थी वे लोग सीधे हिटलर के अनुयायी होना पसन्द कर रहे थे।

4. **यहूदी विरोधी भावना** :– जर्मनी के अधिकांश लोगों में यह भावना फैल गई थी कि जर्मनी की पराजय यहूदियों के कारण ही हुई है। महायुद्ध के समय जर्मनी के बड़े–बड़े कारखाने यहूदियों के हाथ में थे। जर्मन जनता उन्हें शोषक समझकर घृणा करती थी। हिटलर जर्मन जनता की यहूदी विरोधी भावना को अच्छी तरह जानता था। उसने कहा इन यहूदियों को देश से निकाल देना चाहिए जिससे जर्मन जाति समुचित आर्थिक स्थान प्राप्त कर सके।

हिटलर की गृहनीति :–

जर्मनी का सर्वेसर्वा बनने के बाद हिटलर ने अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अनेक प्रयास किये। गृहनीति के अन्तर्गत उसने विरोधियों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये। जर्मनी के आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक, औद्योगिक एवं धार्मिक विकास के लिए हिटलर ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये।

1. **सशक्त एकतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना :–** हिटलर को गणतन्त्र में कोई विश्वास नहीं था। उसका उद्देश्य जर्मनी में एकतन्त्र की स्थापना करना था। सत्तारूढ़ होते ही उसने जर्मनी की व्यवस्था बदलना प्रारम्भ कर दिया। उसने कानून निर्माण कर अन्य पार्टियों का संगठन अवैध घोषित कर दिया। और विरोधियों का दमन कर दिया। सब प्रकार की नागरिक स्वतन्त्रतायें छीन ली गयी। प्रेस, रेडियो, सिनेमा, स्कूल, विश्वविद्यालय आदि की स्वतन्त्रतायें नष्ट कर दी गयीं। समस्त प्रकार के आर्थिक एवं सामाजिक कार्यों पर कड़ा सरकारी नियन्त्रण लगा दिया गया। धीरे–धीरेहिटलर ने जर्मनी पर इतना आतंक स्थापित कर दिया कि लोग उसके नाम से ही काँप उठते थे।

2. **यहूदियों और रोमन कैथोलकों का दमन :–** हिटलर रक्त की शुद्धता पर विशेष बल देता था। वह यहूदियों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता था। वह यहूदियों को देशद्रोही और अनार्य समझता था। यहूदी पढ़े–लिखे व सुसंस्कृत थे। देश के व्यापार और उद्योग–धन्धों पर उनका एकाधिकार था इसके कारण नाजी दल उनसे घृणा करता था। उनका मानना था कि प्रथम महायुद्ध में जर्मनी की पराजय के लिए यहूदी पूरी तरह उत्तरदायी थे। जब हिटलर सत्ता में आया तो उसने यहूदियों को कुचलने के लिए अनेक यहूदी विरोधी नियम बनायें और उनके दमनके लिए आवश्यक कदम उठाये।

दूसरी ओर जर्मनी का रोमन कैथोलिक पादरी वर्ग हिटलर विरोधी था। रोमन कैथोलकों ने नात्सीवाद और हिटलर के विरूद्ध आन्दोलन किया था। हिटलर इस कार्य को सहन नहीं कर सका। वह उन्हें कुचल देना चाहता था। हिटलर ने बहुत से कैथोलिक पादरियों को बन्दी बना लिया और उन्हें जेल की कठोर यातनायें दी और उनकी पार्टी का अन्त कर दिया।

3. **आर्थिक नीति :–** देश की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए हिटलर ने मुसोलिनी का अनुसरण किया। मजदूरों और पूँजीपतियों के लिए अलग–अलग संगठन बनायें। उसने आर्थिक नीति के अन्तर्गत निम्न कार्य किये :–

(i) उसने स्त्रियों का कारखानों, मिलों आदि में कार्य करना वर्जित कर दिया। उसने महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर की सीमाओं के अन्दर तक ही सीमित कर दिया।

(ii) यहूदियों को सरकारी सेवाओं से मुक्तकर दिया गया और उनके स्थान पर बेरोजगारों को नियुक्त किया गया।

(iii) मजदूरों के लिए एक सप्ताह में अधिक से अधिक 40 घण्टे कार्य करना निर्धारित किया।

(iv) उत्पादन के मुख्य केन्द्रों पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण था। देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए अनेक नवीन कारखाने स्थापित किये गये।

(v) देश में निर्यात को प्रोत्साहन दिया गया। आयात को कम करने के लिए माल पर भारी कर लगाये गये।

(vi) युद्धपोत, जहाजों का निर्माण किया गया। इससे बेरोजगारी की समस्या बहुत हद तक हल हो गयी तथा बेरोजगारों की सहानुभूति हिटलर व उसके दल को प्राप्त होने लगी।

कृषि :– देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आवश्यक था कि कृषि को बढ़ावा दिया जाए। कृषि कार्य को वंशानुगत घोषित कर दिया गया। किसानों से भूमि क्रय–विक्रय सम्बन्धी अधिकारों को छीन लिया गया। लेकिन सरकार की ओर से किसानों को अनेक सुविधायें प्रदान की गई और उन्हें कृषि कार्य के लिए प्रोत्साहित किया गया।

कारखाना :– हिटलर ने पूँजीपतियों व मजदूरों के बीच सहयोग की भावना उत्पन्न करने का हर सम्भव प्रयास किया। उस समय ट्रेड–यूनियनों पर मार्क्सवाद के सिद्धान्तों का अत्यधिक प्रभाव था, इसलिए 1933 ई0 में हिटलर ने इन यूनियनों को भंग कर दिया। उसने देश के विभिन्न भागों में कई लेबर ट्रस्टों की स्थापना की ताकि मिल–मालिकों व मजदूरों के झगड़ों को सुलझाया जा सके। मजदूरों की दशा सुधारने के लिए उनके कार्य के घण्टों को निर्धारित किया गया।

शिक्षा पद्धति में परिवर्तन :– हिटलर भलि–भाँति जानता था कि शिक्षा प्रचार और विज्ञापन का प्रमुख साधन है। इसलिए उसने शिक्षा पद्धति और प्रचार के साधनों पर अपना पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया। जर्मनी के प्रत्येक नागरिक के लिए नाजीदल की सदस्यता अनिवार्य कर दी। सैनिकवाद की भावना का विशाल स्तर पर प्रचार किया गया। उसने स्कूल, कालेज स्तर के पाठ्यक्रम में अनेक परिवर्तन किये। और यह प्रचारित किया कि जर्मन जाति सर्वश्रेष्ठ है।

सैनिक संगठन :– हिटलर ने राष्ट्रीयता के आधार पर अपनी सैनिक शक्ति का गठन किया। उसने केवल जर्मन लोगों को ही सेना में स्थान दिया क्योंकि वह रक्त की शुद्धता पर विशेष बल देता था। विशाल सेना के गठन के लिए उसने जनसंख्या की वृद्धि पर विशेष बल दिया। वर्साय सन्धि द्वारा जो प्रतिबन्ध जर्मनी पर लगाये गये थे उनही अवहेलना करके वह सैन्य शक्ति बढ़ाने लगा। और कुछ दिनों में जर्मनी यूरोप की सर्वशक्तिशाली शक्ति बन गया।

हिटलर का व्यक्तित्व :– जर्मनी में हिटलर की सफलता का मुख्य कारण स्वयं हिटलर का व्यक्तित्व था। उसमें बड़ी–बड़ी भीड़ को अपने भाषण के जादू से मुग्ध करने की क्षमता थी। वह अपना कार्य संगठित रूप से करता था। हिटलर का प्रचारमन्त्री डा0 गोयुल्स का कहना था कि "झूँठी बात को भी इतना दोहराओं कि वह सत्य ही बन जाए।" प्रचार के माध्यम से हिटलर ने जर्मन जनता के दिलों में राज करना प्रारम्भ कर दिया।

हिटलर की विदेश नीति :– हिटलर ने जर्मनी में सत्ता स्थापित करने के साथ अपने उद्देश्यों को क्रियान्वितकरना प्रारम्भ कर दिया उसकी विदेश नीति उसकी आत्मकथा श्डमपद झंउचशि में दिये उसके विचारों से जानी जा सकती है।

हिटलर जर्मनी को प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व की शक्तिशाली अवस्था लाना चाहता था। वह वर्साय की सन्धि से सन्तुष्ट नहीं था। वह इस व्यवस्था को भंग करना

चाहता था। इसके लिए उसने जर्मनी का पुनः शस्त्रीकरण करना प्रारम्भ कर दिया तथा जर्मनी का विस्तार करना प्रारम्भ कर किया। और जहाँ–जहाँ भी जर्मन लोग निवास कर रहे थे वह उन क्षेत्रों को जर्मनी के अधीन लाना चाहता था।

वह जर्मनी पर थोपे गये युद्ध के उत्तरदायित्व को भी हटाना चाहता था। इन सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसने निम्न कार्य किये–

1. **वर्साय की सन्धि का विरोध एवं राष्ट्रसंघ से सम्बन्ध विच्छेद :–** हिटलर का प्रमुख उद्देश्य वर्साय सन्धि का विरोध करना था। हिटलर की नीतियाँ (जर्मन सुरक्षा परिषद व शस्त्रीकरण) राष्ट्रसंघ के प्रतिकूल थीं। राष्ट्रसंघमें न तो समानता थी और न ही समानाधिकार। अतः हिटलर ने राष्ट्रसंघ छोड़ने का निर्णय कर लिया तथा जर्मनी में पुनः शस्त्रीकरण करना प्रारम्भ कर दिया। हिटलर के इस कार्य से फ्रांस, इटली, ब्रिटेन आदि देश स्तब्ध रह गये।

2. **पोलैण्ड के साथ समझौता :–** हिटलर जर्मनी के उत्कर्ष के लिए शस्त्रीकरण के साथ–साथ अन्य देशों के साथ भी सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था जो उसकी अकांक्षाओं की पूर्ति में सहायक है। अतः उसने 1934 ई0 में पोलैण्ड के साथ एक सन्धि की जिसके अनुसार अगले दस वर्षों तक वे एक दूसरे की वर्तमान सीमाओं का किसी भी प्रकार का उल्लंघन नहीं करेगें। यह समझौता जर्मनी के शस्त्रीकरण और आस्ट्रिया पर अधिकार करने की योजना में सहायक सिद्ध हुआ।

3. **आस्ट्रिया पर अधिकार का असफल प्रयास :–** हिटलर ने आर्थिक मन्दी का लाभ उठाकर आस्ट्रिया में नात्सीदल की स्थापना की तथा वहाँ की गणतन्त्रीय व्यवस्था को असफल बनाने का प्रयास किया और वहाँ विद्रोह करा दिया। इसी समय मुसोलिनी भी आस्ट्रिया पर प्रभाव जमाने का प्रयास कर रहा था। लेकिन आस्ट्रियन सरकार ने सेना की सहायता से इस विद्रोह को दबा दिया गया। इस प्रकार हिटलर का आस्ट्रिया को जर्मन साम्राज्य में मिलाने का प्रथम प्रयास असफल हो गया।

4. **लोकार्नो सन्धि का अन्त तथा राइनलैण्ड का पुनः सैन्यीकरण :–** वर्साय की सन्धि के अनुसार जर्मनी को राइनलैण्ड में न तो सेना रखने का अधिकार था और न ही किलेबन्दी करने का। लेकिन हिटलर ने लोकार्नो सन्धि को समाप्त कर राइन प्रदेश का पुनः सैन्यीकरण कर दिया। यह अवसर उसे मुसोलिनी (इटली) द्वारा 1935 ई0 में अबीसीनिया पर आक्रमण से प्राप्त हो गया। फ्रांस और बेल्जियम ने जर्मनी के विरूद्ध सैनिक कार्यवाही करनी चाही लेकिन इंग्लैण्ड ने उनका साथ नहीं दिया और इस पारस्परिक फूट के कारण कोई हिटलर के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं हो सकी और इसका लाभ हिटलर ने उठाया।

5. **रोम–बर्लिन–टोकियो धुरी का निर्माण :–** हिटलर की आक्रामक कार्यवाही से यूरोप के अनेक देशों में भय की स्थिति उत्पन्न हो गई। ये देश जर्मनी के विरूद्ध गुटबन्दी करने लगे। इससे हिटलर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अकेला महसूस करने लगा। अतः उसने अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अपने समान विचारधारा वाले देशों से मैत्री करना आवश्यक समझा। इटली और जर्मनी दोनों ही अधिनायकवाद में विश्वास रखते थे। अतः दोनों शीघ्र मित्र बन गये और 1936 ई0 में जर्मनी और इटली के मध्य एक समझौता हुआ जो इतिहास में 'रोम–बर्लिन' धुरी के नाम से जना जाता है।

इटली का सहयोग प्राप्त करने के बाद हिटलर ने जर्मनी की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को और मजबूत करने के लिए जापान से भी मित्रता का प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया और 6 नवम्बर 1936 ई0 को जर्मनी ने जापान से और जर्मनी से समझौता कर लिया। यह गुट 'रोम–बर्लिन–टोकियो' धुरी के नाम से जाना जाता है। इटली और जर्मनी इसे "विश्व शान्ति की गारण्टी" कहते थे।

6. आस्ट्रिया का जर्मनी में विलय करना :– मित्र राष्ट्रों की आपसी फूट और दुर्बलता का लाभ उठाकर हिटलर आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया की स्वतन्त्रता का अन्त कर उन्हें जर्मन साम्राज्य का अंग बनाना चाहता था। स्पेन के गृहयुद्ध, चीन पर जापान के आक्रमण ने 1938 ई0 तक यूरोपीय राजनीति संदिग्ध बन चुकी थी। अतः हिटलर को आस्ट्रिया हड़पने का अवसर मिल गया। हिटलर ने अपने समर्थकों द्वारा आस्ट्रिया में विद्रोह करा दिया। ब्रिटेन और फ्रांस आस्ट्रिया को बचाने के लिए युद्ध का खतरा नहीं उठाना चाहते थे तथा मुसोलिनी हिटलर का दोस्त बन चुका था। मार्च 1938 ई0 को हिटलर ने सफलतापूर्वक अपनी सेनाओं के साथ 'वियना' में प्रवेश किया। यह हिटलर की महत्वपूर्ण सफलता थी।

चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार :– अब स्पष्ट होने लगा था कि आस्ट्रिया के पश्चात चेकोस्लोवाकिया ही हिटलर की साम्राज्यवादी लिप्सा का शिकार होगा। हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया के जर्मनों की असन्तुष्टता को अपनी लालसा का साधन बनाना चाहा। उसने प्रेस द्वारा चेकोस्लोवाकिया की सरकार पर जर्मनों पर अत्याचार का आरोप लगाया। ऐसी स्थिति में फ्रांस के प्रयत्नों के फलस्वरूप 29 सितम्बर 1938 ई0 को म्यूनिख समझौता हुआ जिसके अनुसार चेकोस्लोवाकिया का बहुसंख्यक प्रदेश 'स्डेटनलैण्ड' (सूडेनलैण्ड) जर्मनी को दे दिया गया तथा इंग्लैण्ड और फ्रांस ने चेकोस्लोवाकिया को विश्वास दिलाया कि उसकी शेष सीमायें सुरक्षित रखी जायेगी। हिटलर ने भी वचन दिया कि वह अन्य प्रदेशों की माँग नहीं करेगा। वास्तव में यह विभिन्न राष्ट्रों की पराजय थी।

लेकिन हिटलर ने इस समझौते के प्रति कोई आदर प्रकट नहीं किया और जल्द ही उसने चेकोस्लोवाकिया की सरकार को समस्त प्रान्त जर्मनी के हवाले करने की धमकी दी। 15 अगस्त 1939 ई0 को चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति ने देश का भविष्य हिटलर के हाथों में सौंप दिया और समस्त चेकोस्लोवाकिया जर्मन साम्राज्य का अंग बन गया।

पोलैण्ड पर आक्रमण और द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारम्भ :– 1934 ई0 में जर्मनी की पोलैण्ड के मध्य 10 वर्ष के लिए एक आक्रमण समझौता हुआ था लेकिन हिटलर का अगला उद्देश्य पोलैण्ड को हड़पना था। अतः उसने पालैण्ड के बन्दरगाह डेजिंग पर पहुँचने के लिए एक गलियारे की माँग की। पोलैण्ड ने यह माँग अस्वीकार कर दी। इसके परिणामस्वरूप 1 सितम्बर 1939 को हिटलर ने पोलैण्ड के विरूद्ध युद्ध की घोषणा किया। जर्मन सेनाओं ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। फ्रांस और इंग्लैण्ड ने हिटलर को अपनी सेनायें पोलैण्ड से तुरन्त हटा लेने के लिए कहा। जर्मनी द्वारा ऐसा न किये जाने पर 3 सितम्बर 1939 को इंग्लैण्ड और फ्रांस ने जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यह द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारम्भ था।

यह युद्ध निःसन्देह हिटलर की साम्राज्यवादी नीतियों का ही परिणाम था। इस युद्ध के आरम्भ में जर्मनी को कुछ शानदार सफलतायें प्राप्त हुई लेकिन अन्त में उसे प्रथम महायुद्ध की तरह भारी एवं विनाशकारी पराजय का मुँह देखना पड़ा। अपनी पराजय से निराश होकर 30 अप्रैल 1945 को हिटलर ने आत्म–हत्या कर ली।

2.5 सारांश

प्रथम विश्वयुद्ध में असंतुष्ट तथा आर्थिक मन्दी से प्रभावित कुछ देशों के लोगों में शासन के प्रति अविश्वास की भावना उत्पन्न हुई। अतः इस समय ऐसी सरकारों की स्थापना की जो शासन की समस्त गतिविधियाँ अपने हाथों में रखने का प्रयत्न कर रही थी। इस प्रकार की शासन प्रणाली को सर्वसत्तावादी कहा जाता था। वीसवीं शताब्दी में ऐसी सरकारों की स्थापना इटली तथा जर्मनी जैसे देशों में देखने को मिली जहाँ क्रमशः मुसोलिनी के नेतृत्व में और हिटलर के नेतृत्व में नाजीवाद का उदय हुआ तथा जिनकी नीतियों ने द्वितीय विश्व युद्ध को जन्म दिया।

2.6 शब्दावली

1. **तानाशाही या अधिनायकवाद** : किसी देश पर व्यक्ति विशेष का शासन स्थापित होना।
2. **मीन कैम्प** : हिटलर की आत्म–कथा ;डमपद झंउचद्धिण्
3. **राइख** : जर्मनी साम्राज्य के प्रदेशों को राइख के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था।

2.7 बोध प्रश्न –2

1. निम्न प्रश्नों में सही/गलत का चिन्ह लगाइयें।
   (i) हिटलर ने पुनः शस्त्रीकरण कर जोर दिया।
   (ii) हिटलर ने सभी जर्मनों को जर्मनी में मिलाने का प्रयास किया।
   (iii) हिटलर ने म्यूनिख समझौते का पूर्णपालन किया।
   (iv) हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया का अंग–भंग कर दिया।
2. हिटलर के उत्थान पर 10 पंक्तियाँ लिखो।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

(i) √ **(ii)** √ **(iii)** × **(iv)** √

बोध प्रश्न–2

(i) √ **(ii)** √ **(iii)** × **(iv)** √

इकाई–3

संयुक्त राष्ट्र संघ

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 संयुक्त राष्ट्र संघ

3.2.1 उद्देश्य

3.2.2 अंग

3.3 संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 बोधप्रश्न

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

प्रथम विश्वयुद्ध की तुलना में द्वितीय विश्वयुद्ध अधिक विनाशकारी सिद्ध हुआ। इसके अनेक विनाशकारी परिणाम हुए। इस महायुद्ध में जन और धन की बहुत हानि हुई। सम्पूर्ण संसार के लोग इस महायुद्ध के परिणामों से भयभीत थे तथा वे युद्ध से हमेशा के लिए छुटकारा पाना चाहते थे। यद्यपि यूरोप के राजनीतिज्ञ इस दिशा में किये गये अपने प्रथम प्रयास (राष्ट्रसंघ की असफलता) में असफल रहे लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी। इनके विचारों ने ही संयुक्त राष्ट्र संघ को जन्म दिया। इस इकाई में हम संयुक्त राष्ट्र संघ की उत्पत्ति, उसके अंग तथा उसके द्वारा किये गये कार्यों के विषय में जान सकेंगें।

3.1 प्रस्तावना

जापान के आत्मसमर्पण के साथ यद्यपि सैनिक संघर्ष (द्वितीय विश्वयुद्ध) समाप्त हो गया किन्तु वास्तविक शान्ति स्थापित न हो सकी। इसका मुख्य कारण विजयी राष्ट्रों का पारस्परिक संघर्ष था। युद्ध के समय इनके आपसी मतभेद दबे हुए थे वे अब पुनः प्रकट होने लगे। इस कारण शान्ति सन्धियों का कार्य बड़ी धीमी गति से चला। जापान से सन् 1951 में सन्धि हो सकी और जर्मनी से दोनों पक्ष अब तक अन्तिम रूप से कोई सन्धि न कर सके। अतः युद्ध समाप्त होने के बाद भी जो शान्ति स्थापित हुई वह बड़ी अशान्त थी। अतः विचार किया गया कि एक

ऐसी अर्न्तराष्ट्रीय शान्ति संस्था का निर्माण किया जाए जो राष्ट्र संघ की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। अतः 1 जून 1945 ई0 को ऐसी ही एक संस्था संयुक्त राष्ट्र संघ अस्तित्व में आयी जिसका उद्देश्य नये ढंग से संसार में शान्ति स्थापित करना था। संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य और उपयोगिता पर हम आगे चर्चा करेगें तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में यह संस्था कितनी कारगर रही इस पर भी हम ध्यान देगें।

3.3 संयुक्त राष्ट्र संघ

3.2.1 उद्देश्य

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व की सबसे गम्भीर समस्या स्थायी शान्ति की स्थापना थी। इस युद्ध में आधुनिकतम अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग हुआ था और इसके फलस्वरूप जो बरबादी हुई उसका अन्दाजा लगाना साधारण कल्पना के बाहर की चीज थी। अतः मानव जाति की रक्षा के लिए शान्ति स्थापित करने वाले एक अर्न्तराष्ट्रीय संगठन के निर्माण की तीव्र आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

हालांकि प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भी इस आवश्यकता को महसूस किया गया था और राष्ट्रसंघ की स्थापना इसी आवश्यकता का परिणाम था। लेकिन राष्ट्रसंघ के रहते हुए भी इस द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया। इससे स्पष्ट था कि राष्ट्रसंघ में अनेक त्रुटियां रह गयी थी। अतः अब आवश्यकता थी एक ऐसे संगठन की जो राष्ट्रसंघ से अधिक शक्तिशाली हो। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना इसी आवश्यकता का परिणाम था।

अब यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 1945 में पुराने राष्ट्रसंघ का ही पुर्नसंगठन क्यों नहीं किया गया उसकी जगह एकदम नयी अर्न्तराष्ट्रीय संस्था का निर्माण क्यों किया गया।

इस प्रश्न के कुछ कारण थे जैसे–संयुक्त राष्ट्र संघ में सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका को रखना जरूरी था और पुराने राष्ट्रसंघ के साथ दोनों के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। अमेरिका प्रारम्भ से ही राष्ट्रसंघ को अस्वीकृत था और सोवियत संघ को उससे निकाल दिया गया था इसके अतिरिक्त पुराने राष्ट्रसंघ का नाम कई असफलताओं से भी जुड़ गया था। अतः एक असफल संस्था को पुर्नजीवित करने की अपेक्षा नयी संस्था का सृजन बेहतर समझा गया।

अतः विश्व शान्ति कायम रखने के उद्देश्य से 10 फरवरी 1945 को संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म हुआ। इसका प्रथम अधिवेशन लन्दन में वेस्टमिन्सटर के सुन्दर हाल में हुआ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की व्यवस्थाऐं यह ध्यान में रखकर की गई थी कि जिन कारणों से द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ वे कारण फिर से उत्पन्न न होने दिये जाए। इसके घोषणा पत्र में मौलिक अधिकारों पर जोर दिया गया। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ के निम्न उद्देश्य थे।

1. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को कायम रखना, शान्ति के खतरों को सामूहिक प्रयासों से रोकना, तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाना।
2. व्यापक शान्ति को प्रोत्साहित करना तथा स्वतन्त्रता एवं समानता के सिद्धान्तों को बढ़ावा देना।

3. संसार की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं को हल करने हेतु अर्न्तराष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना।

4. मानव अधिकारों और मौलिक स्वतन्त्रताओं को बिना किसी भेदभाव को प्रोत्साहित करना।

5. संयुक्त राष्ट्रसंघ को ऐसा केन्द्र बनाना जहाँ इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राष्ट्रों के कार्यों में समन्वय स्थापित हो सके।

6. किसी भी देश के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप न करना।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के मूल सदस्य वे 51 राष्ट्र थे जिन्होंने सैनफ्रांसिस्को में चार्टर पर हस्ताक्षर किये थे। लेकिन दूसरे देश भी इसके सदस्य हो सकते हैं बशर्ते वे शान्तिप्रिय हो।

3.2.2 संयुक्त राष्ट्रसंघ के अंग

संयुक्त राष्ट्रसंघ के मुख्य अंग 6 हैं।

1. महासभा
2. सुरक्षा परिषद
3. आर्थिक एवं सामाजिक परिषद
4. संरक्षण परिषद
5. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
6. सचिवालय

1. महासभा :– यह संयुक्त राष्ट्रसंघ की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण संस्था है। इसे विभिन्न राष्ट्रों की संसद या संसार की नगर सभा भी कहते हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य इसके सदस्य होते हैं।

इस संस्था का मुख्य उद्देश्य अर्न्तराष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा से सम्बन्धित विषयों पर विचार करना व अन्य महत्वपूर्ण अर्न्तराष्ट्रीय समस्याओं पर विचार–विमर्श करना है। सामान्य मामलों पर साधारण बहुमत ही पर्याप्त होता है किन्तु महत्वपूर्ण प्रश्नों पर 2/3 बहुमत अनिवार्य होता है।

लेकिन इस संस्था को अन्तिम निर्णय का अधिकार प्राप्त नहीं है यह केवल सुरक्षा परिषद के सम्मुख अपनी संस्तुति प्रस्तुत कर सकती है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तिम निर्णय का अधिकार केवल सुरक्षा परिषद को प्रदान किया गया है। वर्ष में एक बार (सितम्बर माह) में इसकी बैठक होती है। महासभा का कार्य सात समितियों के माध्यम से होता है।

1. राजनीतिक तथा सुरक्षा समिति
2. आर्थिक तथा वित्तीय समिति
3. सामाजिक एवं मानवीय समिति
4. संरक्षण समिति
5. प्रशासनिक एवं बजट सम्बन्धी समिति

6. कानूनी समितियाँ

7. विशेष राजनीतिक समिति

इस प्रकार देखने से पता चलता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा के अधिकार काफी व्यापक है।

2. सुरक्षा परिषद :– सुरक्षा परिषद संयुक्त राष्ट्रसंघ का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली अंग है। चार्टर के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा का प्रधान उत्तरदायित्व इसी को सौंपा गया है। अतः यह संयुक्त राष्ट्रसंघ की मुख्य कार्यकारी संस्था है। पांच बड़े देश (रूस, चीन, अमेरिका, फ्रान्स व इंग्लैण्ड) इसके स्थायी सदस्य हैं जबकि 6 अस्थायी सदस्यों का चुनाव महासभा द्वारा किया जाता है।

यह संयुक्त राष्ट्रसंघ की सबसे शक्तिशाली संस्था है। इसकी बैठक प्रत्येक पखवारे होती है। इसका मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बनाए रखना है। यह उन परिस्थितियों पर तत्काल विचार करती है जो शान्ति के लिए खतरा उत्पन्न कर रही हो। सुरक्षा परिषद अपने निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए सदस्यों को पहले ऐसे उपायों को अपनाने के लिए कहती है जिसमें सेना के उपयोग की आवश्यकता न हों और ये उपाय यदि पर्याप्त न हो तो सुरक्षा परिषद जल, थल और वायु सेना की सहायता से आवश्यक कार्यवाही कर सकती है।

सुरक्षा परिषद के सभी बड़े 5 सदस्यों को एक विशेषाधिकार प्राप्त है। इन पाँच स्थायी सदस्यों में से यदि कोई अपनी असहमति प्रकट करे और अपना वोट प्रस्ताव के विरूद्ध दे दे तो वह प्रस्ताव अस्वीकृत समझा जायेगा इसी को सुरक्षा परिषद के मतदान प्रणाली का "वीटो" कहते हैं। यदि परिषद का कोई भी सदस्य (स्थायी अथवा अस्थायी) झगड़े से सम्बद्ध है तो वह मतदान में भाग नहीं ले सकता।

3. आर्थिक एवं सामाजिक परिषद :– इस परिषद में महासभा द्वारा चुने 18 सदस्य होते हैं। इस संस्था को संयुक्त राष्ट्रसंघ के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न कार्यों का उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

यदि सुरक्षा परिषद का कार्य विश्व को युद्ध के आतंक से रक्षा करना है तो आर्थिक और सामाजिक परिषद मानव की रक्षा, गरीबी, बीमारी और दरिद्रता से करती है। इस प्रकार युद्ध के मानसिक कारणों के उन्मूलन के लिए ये संस्था प्रयासरत है।

इसके अतिरिक्त इस परिषद का कार्य संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य देशों और विशेष एजेन्सियों की प्रार्थना पर उनके लिए महासभा द्वारा स्वीकृत सेवाऐं उपलब्ध कराना और आर्थिक व सामाजिक परिषद जिन विषयों पर विचार करती है उनसे सम्बन्धित गैर सरकारी एजेन्सियों से परामर्श करना है।

4. संरक्षण परिषद :– संरक्षण परिषद संयुक्त राष्ट्रसंघ का चौथा महत्वपूर्ण अंग है। इसकी स्थापना पुराने राष्ट्रसंघ के संरक्षण व्यवस्था के स्थान पर की गयी है। वास्तव में संरक्षण पद्धति का मूल सिद्धान्त यह है कि संसार में कुछ प्रदेश ऐसे हैं जिनके निवासी पिछड़े है, अविकसित है और उनकी उन्नति उन्नत देशों की सहायता से ही सम्भव है। अतः इन विकसित देशों का कर्तव्य है कि वे अविकसित देशों का संरक्षण करें जब तक ये देश स्वयं अपना शासन सम्भालने लायक न हो

जाऐं तथा जिन देशों को यह कार्य सौंपा जाएं वे यह कार्य संयुक्त राष्ट्रसंघ की देखरेख में करें। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सभी पराधीन देश रखे गये। यद्यपि संरक्षण परिषद संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक प्रमुख अंग है फिर भी उसे स्वतंत्र शक्तियां प्राप्त नहीं है।

5. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयरू :– यह संयुक्त राष्ट्रसंघ का न्यायिक विभाग है। इसकी स्थापना प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की गई थी, तथा इसका मुख्यालय हेग में स्थित है। केवल नाम परिवर्तन को छोड़कर नये न्यायालय में कोई नवीनता नहीं है।

इसमें 15 न्यायाधीश होते हैं, जिनकी नियुक्ति संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा और सुरक्षा परिषद द्वारा होती है। इनका निर्वाचन 9 वर्ष के लिए किया जाता है। उस देश का न्यायाधीश कार्याविधि में भाग नहीं ले सकता है जिस देश से सम्बन्धित झगड़े पर न्यायालय विचार कर रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के विविध अंगो को परामर्श देना अर्न्तराष्ट्रीय न्यायालय का दूसरा प्रमुख कार्य है। महासभा और सुरक्षा परिषद किसी वैधानिक मामले पर अर्न्तराष्ट्रीय न्यायालय से परामर्श ले सकती है पर न्यायालय के परामर्श मानने के लिए ये बाध्यकारी नहीं है।

6. सचिवालय :– संयुक्त राष्ट्र के कार्यों के सम्पादन के लिए एक सचिवालय की स्थापना की गई है। इसका संगठन प्रायः वैसा ही है जैसे राष्ट्रसंघ के सचिवालय का था।

इसके अर्न्तगत संयुक्त राष्ट्रसंघ में कार्यरत सभी कर्मचारी आते हैं। सचिवालय के मुख्य नियंत्रक अधिकारी को 'महासचिव' कहा जाता है। जिसकी नियुक्ति महासभा द्वारा सुरक्षा परिषद की संस्तुति पर की जाती है। इसका मुख्य कार्य संयुक्त राष्ट्रसंघ की अन्य समितियों की सहायता करना है। महासचिव प्रतिवर्ष संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रगति रिपोर्ट महासभा के समक्ष पेश करता है। उसे यह भी अधिकार है कि वह किसी विशिष्ट मामले के प्रति संयुक्त राष्ट्रसंघ का ध्यान आकर्षित करे जो उसकी राय के अनुसार संसार की शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरा पैदा कर सकती है।

3.3 संयुक्त राष्ट्रसंघ की उपलब्धियाँ या सफलताऐं

प्रारम्भ से ही राष्ट्रसंघ के अर्न्तराष्ट्रीय क्षेत्र में अनेक कठिनाइयों व समस्याओं का सामना करना पड़ा। लेकिन अनेक बाधाओं के बावजूद संयुक्त राष्ट्रसंघ से अनेक समस्याओं को हल करने में सफल रहा।

(1) ईरान की समस्या :– 1 जनवरी 1946 को ईरान ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के सम्मुख रूस के विरूद्ध एक शिकायत प्रस्तुत की कि रूस ने ईरान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप किया था जो उसकी अनाधिकार चेष्टा थी। संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रयत्नों से रूस को ईरान से अपनी सेनायें हटानी पड़ीं। यह संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

(2) सीरिया और लेबनान :– इसी प्रकार की शिकायत संयुक्त राष्ट्रसंघ के सामने सीरिया व लेबनान के द्वारा प्रस्तुत की गई। दोनों ने संयुक्त राष्ट्रसंघ से यह प्रार्थना की कि इंग्लैण्ड और फ्रांस को उनके देश से तुरन्त सेनाऐं हटाने का

आदेश दें। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किये और अन्ततः फ्रांस और इंग्लैण्ड की सेनाओं को सीरिया व लेबनान से हटाने में सफल रही।

(3) इण्डोनेशिया की समस्या :– द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद इण्डोनेशिया में जनतंत्रीय सरकार की स्थापना की गई। लेकिन जावा, सुमात्रा और मदुरा के उपनिवेशों में रहने वाले डचों ने इसका विरोध किया और इण्डोनेशिया में सेना भेज दी। यह मामला 1947 ई0 को संयुक्त राष्ट्रसंघ के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने डच सरकार को युद्ध बंद करने का आदेश दिया और इस प्रकार इण्डोनेशिया की समस्या का हल कर लिया गया।

(4) पैलास्टाइन की समस्या :– प्रथम विश्वयुद्ध के बाद 'मेन्डेट व्यवस्था' के अन्तर्गत पैलास्टाइन, इंग्लैण्ड को दिया गया था। लेकिन शीघ्र ही वहाँ अरबों और यहूदियों के मध्य संघर्ष प्रारम्भ हो गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह संघर्ष और अधिक उग्र हो गया। इस परिस्थिति में इंग्लैण्ड ने संयुक्त राष्ट्रसंघ से सहायता मांगी। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अनेक प्रयासों के बाद दोनों पक्ष एक युद्ध विराम सन्धि पर राजी हुए और इस प्रकार पैलाइस्टाइन समस्या का हल कर लिया गया।

(5) कश्मीर समस्या :– इसी बीच भारत और पाकिस्तान के मध्य एक समस्या उठ खड़ी हुई। कश्मीर के प्रश्न पर दोनों देशों में शत्रुता बढ़ती गयी। इस समस्या को संयुक्त राष्ट्रसंघ के सामने लाया गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ के हस्तक्षेप से दोनों देशों के मध्य युद्ध तो समाप्त हो गया लेकिन इसका स्थायी रूप से हल नहीं किया जा सका। अभी भी इस समस्या को एक शान्तिपूर्ण व स्थायी हल की आवश्यकता है।

(6) कोरिया की समस्या :– यह एक जटिल समस्या थी। द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व कोरिया पर जापान का अधिकार था लेकिन युद्ध के बाद स्थिति में परिवर्तन आ गया और रूस और अमेरिका ने एक समझौते द्वारा उत्तरी व दक्षिणी कोरिया पर अधिकार कर लिया। यह एक अस्थायी प्रबन्ध था। कोरिया के प्रशासन के स्थायी हल के लिए विभिन्न देशों के मन्त्रियों का एक सम्मेलन मास्को में बुलाया गया और इस समस्या का स्थायी हल ढूंढ लिया गया।

1.1 बोध प्रश्न :–

1. निम्न प्रश्नों पर सही/गलत का चिन्ह लगाओ–

   (1) संयुक्त राष्ट्र की व्यवस्था प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद की गई थी।

   (2) 5 देश इसके स्थायी सदस्य हैं।

   (3) जर्मनी स्थायी सदस्यों में शामिल है।

   (4) संयुक्त राष्ट्रसंघ के 6 मुख्य अंग

बोध प्रश्न–2

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के उद्देश्यों पर 10 पंक्तियां लिखो।

बोध प्रश्न :– संयुक्त राष्ट्रसंघ के अंगो के विषय में संक्षिप्त जानकारी दीजिए।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की अन्य उपलब्धियाँ :–

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में सांस्कृतिक, आर्थिक एवं मानवीय क्रियाकलापों की भी चर्चा की गई है। इसका तात्पर्य है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का कार्य केवल राजनीतिक समस्याओं का समाधान करना तथा राजनीतिक दृष्टि से विश्वशान्ति की स्थापना करना ही नहीं है अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानव मात्र को उन्नति करने के अवसर उपलब्ध कराना है। ताकि विश्व के सभी मानव परस्पर सौहार्दपूर्ण वातवरण में मैत्री भावना का अनुभव करते हुए सुख व शान्ति की सांस ले सके। इस दृष्टि से संघ की मुख्य उपलब्धियों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(A) आर्थिक उपलब्धियाँ

(B) संचार साधन सम्बन्धी उपलब्धियाँ

(C) शैक्षणिक उपलब्धियाँ

(D) स्वास्थ्य एवं कल्याण के क्षेत्र में उपलब्धियाँ

(A) आर्थिक उपलब्धियाँ– संयुक्त राष्ट्रसंघ के आर्थिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए मुख्य रूप से चार संगठन स्थापित किये।

(i) अर्न्तराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) (International Labour organization)

(ii) खाद्य एवं कृषि संगठन (Food & Agriculture organisation) (F.A.O.)

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund (I.M.F.)

(iv) अर्न्तराष्ट्रीय वित्त निगम (I.F.O.) (International Finance Corporation)

अर्न्तराष्ट्रीय श्रम संगठन संयुक्त राष्ट्रसंघ का सबसे पुराना संगठन है। इसकी स्थापना 1919 में राष्ट्रसंघ की स्थापना के समय की गई थीं। इस कार्य मजदूरों मिल मालिकों एवं सरकारों के निपक्षीय सम्बन्धों की व्याख्या करना एवं तत्सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करना है। यह संगठन श्रमिकों की स्थिति को सुधारने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की सामाजिक योजनाओं को बनाता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशों की जनता के जीवन स्तर को उठाना उत्पादन वृद्धि तथा मजदूरों की कार्यक्षमता को बढ़ाने के विषय में आवश्यक सुझाव देना भी अर्न्तराष्ट्रीय श्रम संगठन का कार्य होता है।

2. खाद्य एवं कृषि संगठन की स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने के बाद संयुक्त राष्ट

(5) संचार सम्बन्धी कार्य :– संयुक्त राष्ट्रसंघ विभिन्न राष्ट्रों के मध्य संचार, डाक एवं यातायात सुविधाओं को अधिक सरल बनाने के लिए कार्य करता है। इस उद्देश्य से अर्न्तराष्ट्रीय हवाई संगठन, सार्वभौमिक पोस्टल संघ, अर्न्तराष्ट्रीय दूर संचार संघ, विश्व ऋतु विज्ञान संगठन, तथा सरकारी यात्रा संगठनों का अर्न्तराष्ट्रीय संघ आदि अनेक संगठन स्थापित किये गये हैं। इन सभी संगठनों के माध्यम से हवाईयात्रा सम्बन्धी सुरक्षा व्यवस्था, नवीन प्राविधिक साधनों में वृद्धि

विभिन्न देशों की यात्रा करने वाले व्यक्तियों के लिए पासपोर्ट वीजा, तथा मुद्रा सम्बन्धी नियमों को सुगम बनाना आदि कार्य संयुक्त राष्ट्र द्वारा किये जाते हैं।

(c) शैक्षणिक उपलब्धियाँ :–

शैक्षणिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए राष्ट्रसंघ के तत्वाधान में संयुक्तराष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन (UNESCO) की स्थापना 4 नवम्बर 1945 को की गई थी इस संस्था का कार्यक्रम अत्यन्त विशाल और व्यापक है इसके मुख्य कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में प्रोढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में विचार गोष्ठियों का आयोजन करना, विशेष समस्याओं का समाधान करने के लिए विशेष भेजना, विज्ञान, सामाजिक विकास, शिक्ष प्रबन्ध, चित्रपट तथा रेडियो द्वारा शिक्षा आदि विषयों के अध्ययन के सम्बन्ध में छात्रवृत्तियाँ प्रदान करना आदि है।

इसके अतिरिक्त इस संस्था ने तनाव व जातीय समस्याओं, अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्ध, सांस्कृतिक आदान–प्रदान आदि समस्याओं का समाधान करने के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है।

(d) <u>स्वास्थ्य एवं कल्याण के क्षेत्र में उपलब्धियाँ–</u>

इस क्षेत्र में दो संगठन स्थापित किये गये हैं– प्रथम विश्व स्वास्थ्य संगठन, ि्द्वतीय संयुक्त राष्ट्र अर्न्तराष्ट्रीय बाल आपात कालीन कोष।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की स्थापना 7 अप्रैल 1948 को लागू की गई। इससंगठन का मुख्य कार्य अर्न्तराष्ट्रीय स्वास्थ्य के कार्यों का संचालन व समन्वय करना, महामारियों तथा बीमारियों का उन्मूलन के कार्यों को प्रोत्साहित करना, आहार पोषण, आवास, सफाई में सुधार लाना, शिशु एवं मातृ कल्याण कार्यों में वृद्धि करना, स्वास्थ्य शिक्षा एवं प्रशिक्षण के स्तर को उठाना, खाद्य पदार्थों एवं दवाइयों आदि का अर्न्तराष्ट्रीय मानक निश्चित करना है।

इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र अर्न्तराष्ट्रीय बाल आपातकालीन कोष के मुख्य कार्य मातृ एवं शिशु कल्याण की सेवाओं का आयोजन व प्रशिक्षण, संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए बच्चों के टीके लगवाने की व्यवस्था करना; बाल रोगों की रोकथाम करना, बाल पोषण की व्यवस्था करना है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का महत्व :– संयुक्त राष्ट्रसंघ एक ऐसा संगठन था जिसके माध्यम से दो विश्व युद्ध के दुष्परिणामों से भयभीत विश्व की जनता को शान्ति की एक किरण दिखायी दी थी। इसने न केवल राजनीतिक समस्याओं को शान्तिपूर्वक बातचीत के माध्यम से हल करने का प्रयास किया तथा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, स्वास्थ्य एवं कल्याण आदि के क्षेत्र में मानव जाति के उत्थान का संकल्प लेकर कुछ महत्वपूर्ण योजनाएं प्रारम्भ की। संयुक्त राष्ट्रसंघ का आकलन निम्न प्रकार से कर सकते हैं।

(1) इस संस्था ने राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में जो सफलताऐं अर्जित की, उनकी महानता पर कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता है। मानव जीवन को स्वरूप, सुखी न समृद्ध बनाने इस संस्था ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(2) यद्यपि कुछ राजनीतिक विवादों का समाधान करने में संयुक्त राष्ट्रसंघ को पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई फिर भी इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा

सकता है कि इस संस्था अनेक स्थानों पर युद्ध के संकट को टालने में सराहनीय भूमिका अदा की।

(3) साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद जैसी जटिल समस्याओं का उन्मूलन करने में संयुक्त राष्ट्रसंघ की सफलता निर्विवाद कहीं जा सकती है।

(4) इस संघ के सम्मेलनों में विश्व के सभी धर्मों के मानने वाले विभिन्न जातियों के लोग एकत्रित होते हैं इसलिए इस संस्था के माध्यम से विश्व बन्धुत्व एवं अर्न्तराष्ट्रीय संघर्षों को रोकने तथा तनाव को कम करने का उपयुक्त माध्यम सिद्ध हुआ।

3.4 सारांश

वास्तव में संयुक्त राष्ट्रसंघ का ही सुधरा हुआ रूप था। इसकी स्थापना राष्ट्रसंघ की असफलताओं और अनुभवों को ध्यान में रखकर की गई थी। राष्ट्रसंघ के पास अपनी कोई सेना नहीं थी इसलिए अपने निर्णयों को प्रभावी ढंग से वह लागू नहीं कर पाया लेकिन संयुक्त राष्ट्रसंघ, अधिक विस्तृत प्रभावशाली और यर्थाथवादी संघ था इस प्रकार कई मामलों में संयुक्त राष्ट्रसंघ, राष्ट्रसंघ से आगे था।

लेकिन इसी धाराओं के रहते हुएभी संयुक्त राष्ट्रसंघ में कई कमियां थी। पाँच बड़े देश हमेशा अपने स्वार्थों की पूर्ति में अपने अधिकारों का दुरूपयोग करते रहते हैं। और सहयोग की भावना का दिनप्रतिदिन हनन होता जा रहा है।

3.5 शब्दकोश

(1) **वीटो पावर** :– (विशेषाधिकार)– संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों में से कोई एक सदस्य भी यदि किसी निर्णय का विरोध करे तो वह निर्णय स्वतः स्थगित मान लिया जाता है।

(2) **मेन्डेट व्यवस्था** :– बड़े देशों द्वारा छोटे व अविकसित देशों की तब तक देखभाल (प्रशासनिक व आर्थिक) करना जब तक वे देश अपना शासन स्वयं चलाने लायक नहीं हो जाते हैं।

इकाई–4

शीतयुद्ध की उत्पत्ति एवं प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 शीतयुद्ध, अर्थ, उत्पत्ति और उसके कारण

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 बोध प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई में शीत युद्ध के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है। साथ ही यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि वे कौन सी बारीकियाँग थीं जिन्होंने शीत युद्ध की नींव रखी। इस इकाई में आप जान सकेगें।

- ❖ शीत युद्ध का अर्थ, उदय के कारण।
- ❖ शीत युद्ध का प्रभाव।

4.2 प्रस्तावना :–

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमेरिका तथा रूस ने परस्पर मिलकर धुरी राष्ट्रों के विरूद्ध अपनी सैनिक शक्ति का प्रयोग किया था तथा उनको धुरी राष्ट्रों को पराजित करने में सफलता भी मिली थी किन्तु युद्ध समाप्त होते ही दोनों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध शीतयुद्ध में परिवर्तित हो गये। इस इकाई में हम शीत युद्ध का अर्थ उसकी उत्पत्ति के कारण और उसकी प्रगति के विषय में जान सकेगें।

4.3 शीतयुद्ध, अर्थ, उत्पत्ति और उसके कारण

शीत युद्ध का अर्थ

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात विश्व के राजनीतिक पटल पर प्रथम श्रेणी की केवल दो शक्तियाँ शेष रह गयी थीं– ;पद्ध अमेरिका ;पपद्ध रूस। युद्ध के समय इन दोनों शक्तियों ने मिलकर धुरी राष्ट्रों के विरूद्ध महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की थी किन्तु युद्ध समाप्त होते ही दोनों के मध्य तीव्र मतभेद प्रारम्भ हो गया। इन मतभेदों के परिणामस्वरूप युद्धकालीन मैत्रीपूर्ण समाप्त हो गया और उसका स्थान पारस्परिक वैमनस्यता और तनाव ने ले लिया। इन तनावपूर्ण सम्बन्धों ने व्यापक स्तर पर किसी युद्ध को तो जन्म नहीं दिया लेकिन दोनों देशों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय

तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। राजनीतिक क्षेत्र में इस स्थिति को "शीत युद्ध"के नाम से जाना जाता है।

"शीत युद्ध" का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिका के "बर्नार्ड बारूच"ने किया था।

शीत युद्ध के अन्तर्गत युद्ध की ठण्डी आग का भावार्थ छिपा हुआ है। वास्तव में गये शीतयुद्ध हथियारों से नहीं बल्कि विचारों से लड़ा गया था। दूसरे शब्दों में यह युद्ध न होते हुए भी युद्ध जैसी परिस्थितियाँ कायम रखने की कला है। शीत को एक वैचारिक युद्ध भी कहा जा सकता है।

"शीत युद्ध शक्ति के लिए एक ऐसा संघर्ष है जो विश्व में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने तथा अपनी विचारधारा को मापने के लिए किया जाता है।"

शीत युद्ध का उद्देश्य अपनी शक्ति और प्रभाव का विस्तार करना है। शीत युद्ध में दोनों पक्ष हथियारों को छोड़कर शेष सभी साधन जैसे–आर्थिक सहायता, सैनिक गुटबन्दी, प्रचार, जासूसी आदि का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार यह एक कूटनीतिक युद्ध होता है।

शीत युद्ध का उदय

शीत युद्ध की उत्पत्ति का श्रेय दो राजनीतिज्ञों को है, प्रथम अमेरिका के राजदूत 'जार्ज केनन' तथा दूसरा ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल।

जार्ज केनन रूस में अमेरिका के राजदूत के रूप में कार्यरत थे। उन्होंने फरवरी 1946 अमेरिका के राज्य विश्राम को गुप्त सूचना भेजकर वहाँ की सरकार को रूस के प्रति कठोर दृष्टिकोण अपनाने का परामर्श दिया। इसके पश्चात ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने अमेरिका में "फुल्टन" नामक स्थान पर महत्वपूर्ण भाषण दिया। इस फुल्टन भाषण को शीतयुद्ध की वास्तविक घोषणा माना जाता है। इस भाषण के कुछ मुख्य अंश निम्न हैं–

"मित्रराष्ट्रों की विजय के द्वारा जो प्रकाश दिखायी दे रहा था उस पर छाया पड़ गयी। कोई नहीं जानता है कि रूस और उसका साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भविष्य में क्या करना चाहता है। बल्टिक में स्टेटिन से लेकर एड्रियाटिक में ट्रीस्ट तक पूरे यूरोप महाद्वीप में एक लौह आवरण छा गया है।"

इस प्रकार शीत युद्ध की उत्पत्ति अमेरिका के कारण अवश्य है लेकिन इसकी औपचारिक घोषणा का श्रेय चर्चिल के फुल्टन भाषण को जाता है।

शीत युद्ध के कारण

शीत युद्ध की उत्पत्ति के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1. **सैद्धान्तिक मतभेद :–** अमेरिका और रूस दोनों देशों के सामाजिक व नैतिक मूल्यों, जीवन पद्धतियों तथा राजनीतिक विचारों में मौलिक भिन्नता थी। अमरिका, ब्रिटेन आदि पाश्चात्य देशों की सरकारें तथा जनता रूस की साम्यवादी सरकार की नीतियों, सिद्धान्तों और कार्यप्रणाली से घृणा करती थी। जब 1917 ई0 में रूस में साम्यवादी क्रान्ति हुई तो पश्चिमी देशों ने इस क्रान्ति का दमन करने का प्रयास किया था लेकिन उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।इसके अतिरिक्त रूस के पूँजीवाद के उन्मूलन के सिद्धान्त और विश्व क्रान्ति के विचारों को पश्चिमी देश भी स्वीकार नहीं करते थे। इस प्रकार रूस और अमेरिका के मध्य सैद्धान्तिक मतभेदों ने शीतयुद्ध को जन्म दिया।

2. **पश्चिमी देशों द्वारा द्वितीय मोर्चा खोलने में विलम्ब :–** द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जब जर्मनी ने रूस पर निरन्तर आक्रमण किया और जर्मनी की सेनायें रूस के काफी अन्दर तक प्रवेश कर गयी तब रूस के प्रधानमंत्री स्टालिन ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल और अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट से माँग की कि पश्चिमी यूरोप में जर्मनी के विरूद्ध दूसरा मोर्चा खोल दिया जाय ताकि जर्मनी का स्थान भंग हो और रूस पर कुछ दबाव कम हो सके लेकिन अमेरिका और ब्रिटेन "अधूरी तैयारी" का बहाना कर टालते रहे। अतः पश्चिमी देशों द्वारा किये गये अनावश्यक विलम्ब ने रूसवासियों के मन में अविश्वास और सन्देह उत्पन्न कर दिया।

3. **विजित प्रदेशों पर अधिकार करने का विवाद :–** विश्व युद्ध समाप्त होने के पश्चात मित्रराष्ट्रों ने जो प्रदेश धुरी राष्ट्रों (जर्मनी, इटली, जापान) से जीते थे उन पर अधिकार करने के प्रश्न पर इंग्लैण्ड, अमेरिका और रूस के मध्य तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गया। वास्तव में अमेरिका और इंग्लैण्ड सभी स्थानों पर रूसी साम्यवाद का प्रभाव कम करना चाहते थे। जिसके कारण रूस और पश्चिमी देशों के मध्य कटुता, वैमनस्यता, सन्देह और अविश्वास की खाई गहरी होती चली गई।

4. **अमेरिका द्वारा अणुबम के अनुसंधान की जानकारी रूस को न देना :–** अमेरिका ने अणुबम के अनुसंधान की जानकारी से रूस को वंचित रखकर मित्रराष्ट्रों के सहबन्धन के स्वायित्व के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया। अमेरिका के इस अनुसंधान की ब्रिटेन और कनाडा को भली–भाँति जानकारी थी किन्तु रूस को उस समय पता चला जब अमेरिका ने अणुबम का प्रयोग कर जापान के हिरोशिमा को नष्ट कर दिया।

वास्तव में इस घटना से न केवल हिरोशिमा नष्ट हुआ बल्कि इससे मित्रराष्ट्रों की एकता भी नष्ट हो गयी। रूस ने अमेरिका के इस कार्य को विश्वासघात समझा और दोनों पक्ष गुप्त रूप से ऐसे अनुसंधानों में जुट गये।

5. **रूस द्वारा याल्टा समझौते की अवहेलना :–** सन् 1945 को रूजवेल्ट (अमेरिका), चर्चिल (इंग्लैण्ड) और रूजवेल्ट (रूस) के मध्य याल्टा सम्मेलन में कुछ महत्वूपर्ण शर्तों के साथ समझौता हुआ था। किन्तु पश्चिमी देशों का यह आरोप था कि रूस याल्टा सम्मेलन की अवहेलना करें नाजियों से मुक्त किये गये प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर अनुचित कार्य किया था। जिससे दोनों पक्षों के मध्य असन्तोष उत्पन्न हो गया।

6. **रूस द्वारा बाल्कन समझौते का उल्लंघन :–** जब द्वितीय विश्वयुद्ध अपने अन्तिम चरण में था तब रूस ने अपनी सेनाओं को बाल्कन राज्यों में भेज दिया। रूस की इस कार्यवाही से ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल आशंकित हो उठे। उन्होंने भविष्य में ऐसी आशंकों से निबटने के लिए रूस के साथ एक समझौता किया।

इस समझौते में यह निर्णय लिया गया कि बुल्गारिया और रूमानिया पर रूस का प्रभाव तथा यूनान पर इंग्लैण्ड का प्रभाव होगा।

लेकिन रूस ने इस बाल्कन समझौते की शर्तों का उल्लंघन करते हुए बाल्कन राज्यों में साम्यवाद के प्रचार और साम्यवादी सरकार के गठन का प्रयास किया। रूस की इस कार्यवाही से पश्चिमी देश चिन्तित हो उठे।

7. **टर्की और यूनान पर रूस के प्रभाव में वृद्धि :–** द्वितीय विश्वयुद्धके बाद रूस ने टर्की और यूनान पर अपना प्रभाव बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। अमेरिका सहित पश्चिमी देशों ने रूस की इस कार्यवाही का विरोध किया। यद्यपि पश्चिमी

देशों के हस्तक्षेप के कारण रूस अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाया लेकिन दोनों देशों के बीच मतभेद बढ़ते गये।

बोध प्रश्न –1 सत्य/असत्य

1. शीतयुद्ध अमेरिका और रूस के मध्य चला।
2. शीतयुद्ध चर्चिल के विचारों की देन थी।
3. फुल्टन भाषण को शीतयुद्ध की वास्तवकि उद्घोषणा माना जाता है।
4. अमेरिका दो अणुबम के प्रयोग से पहले सभी देशों को अपने पक्ष में कर लिया था।

बोध प्रश्न –2

शीत युद्ध का वास्तविक अर्थ क्या है, दस पंक्तियों में लिखिए।

शीत युद्ध की प्रगति और विकास :–

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से शीतयुद्ध की प्रगति और विकास को निम्न 3 भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) 1945 – 1953 तक

(ii) 1953 – 1958 तक

(iii) 1958 – 1974 तक

1945 – 1953 तक शीत युद्ध

1. **पूर्वी यूरोप में रूस के प्रभाव में वृद्धि :–** द्वितीय विश्व युद्ध के अन्तिम चरण में रूस ने पूर्वी यूरोप में एकछत्र राज्य करना प्रारम्भ कर दिया। चर्चिल रूस के इस प्रसार को रोकना चाहता था लेकिन वह असफल रहा। इसके इस कार्य से पश्चिमी यूरोप केदेशों का चिन्तित होना स्वाभाविक था।

2. **मार्शल योजना की घोषणा :–** रूसी साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए पश्चिमी देशों ने सन् 1947 को मार्शल योजना की घोषणा की। इय योजना का मुख्य उद्देश्य आर्थिक पुनर्निर्माण करना था। यूरोप के सभी देशों में इस योजना का स्वागत किया किन्तु रूस ने इस योजना को अमेरिका के प्रभाव विस्तार का साधन समझकर इसका विरोध किया।

3. **कामिनफोर्म का गठन :–** मार्शल योजना को रूस ने अपने अस्तित्व के लिए एक कठिन चुनौती के रूप में स्वीकार किया और इसके उत्तर में साम्यवादी देशों का 'साम्यवादी सूचना संस्थान' अथवा कामिनफोर्म का गठन किया। कामिनफोर्म के गठन के फलस्वरूप दोनों पक्षों के मध्य शीतयुद्ध की स्थिति में उग्रता आ गयी। दोनोंपक्ष अपने–अपने प्रभाव क्षेत्र मेंग विस्तार और शक्ति में वृद्धि करने के लिए प्रयास करने लगे।

4. **बर्लिन की नाकेबन्दी :–** शीत युद्ध की प्रगति में अगली महत्वपूर्ण घटना रूस द्वारा बर्लिन की नाकेबन्दी थी। यह प्रथम अवसर था जब दोनों पक्षों को शान्ति परीक्षण का अवसर प्राप्त हुआ। इस घटना के सम्बन्ध में अमेरिका ने

अत्यन्त कठोर रूख अपनाया जिसके कारण रूस अपने प्रयास में सफल नहीं हो पाया।

5. **जर्मनी का विभाजन** :– शीत युद्ध के उग्रता का प्रभाव जर्मनी के एकीकरण पर पड़ा। सितम्बर 1949 को ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका ने अपने अधीन पूश्चिमी जर्मन लोगों को मिलाकर जर्मन संघीय गणराज्य की स्थापना कर दी। इसके प्रत्युत्तर में रूस ने अपने अधीन जर्मन क्षेत्रों को मिलाकर जर्मन प्रजातान्त्रिक गणराज्य की स्थापना कर दी। इस प्रकार शीत युद्ध के फलस्वरूप जर्मनी का विभाजन हो गया।

6. **उत्तरी अटलाण्टिक सन्धि संगठन ;छ।ज्द्ध** :– रूस की प्रसारवादी गतिविधियों पर नियन्त्रण लगाने के लिए पश्चिमी शक्तियों ने ठोस कदम उठाना आवश्यक समझा। अतः इस उद्देश्य से अमेरिका और कनाडा के अतिरिक्त यूरोप के दस प्रमुख देशों के मध्य एक वीस वर्षीय सन्धि हुई। इस सन्धि के आधार पर उत्तरी अटलाण्टिक सन्धि संगठन की स्थापना हुई। इसके फलस्वरूप शीत युद्ध में और अधिक उग्रता आ गयी।

7. **चीन में साम्यवादका उदय** :– सन् 1949 में चीन में साम्यवादी क्रान्ति का शीत युद्ध का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। इस क्रान्ति के फलस्वरूप चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई। साम्यवादी रूस ने साम्यवादी चीन को भी संयुक्त राज्य संघ की सदस्यता प्रदान करने की माँग रखी अमेरिका ने रूस की इस माँग का विरोध किया जिससे रूस और अमेरिका के मध्य चल रहे शीत युद्ध में और अधिक तीव्रता आ गयी।

8. **कोरिया युद्ध का प्रभाव** :– 1950 – 1953 के मध्य उत्तरी व दक्षिणी कोरिया के मध्य युद्ध हुआ। वास्तव में यह युद्ध इन दोनों के मध्य न होकर अमेरिका व रूस के मध्य शक्ति परीक्षण था। यद्यपि सन् 1953 में रूस के प्रधानमंत्री स्टालिन की मृत्यु होने से कोरिया युद्ध समाप्त हो गया। लेकिन यह युद्ध रूस व अमेरिका के मध्य राजनीतिक गतिविधियोंग और शक्ति परीक्षण का प्रमुख केन्द्र बना रहा।

द्वितीय चरण (1953 – 1958 तक)

1. **स्टालिन की मृत्यु का शीत युद्ध पर प्रभाव** :– रूसी प्रधानमंत्री की मृत्यु का शीत युद्ध पर व्यापक प्रभाव पड़ा। रूस के नये प्रधानमंत्री खुश्चेव ने ;ज्ञीतनेबींअमद्ध ने स्टालिन की नीतियों का परित्याग करते हुए समझौतावादी नीति का अनुसरण किया। इसी बीच अमेरिकी नेतृत्वग में परिवर्तन हुआ तथा राष्ट्रपति ट्रूमैन के स्थान पर आइजनहॉवर अमेरिका के नये राष्ट्रपति बने।

2. **हिन्द चीन की समस्या** :– हिन्द चीन की समस्या ने एक बार पुनः शीत युद्ध के क्षेत्र में उग्रता उत्पन्न कर दी। हिन्द चीन की जनता फ्रांसीसी साम्राज्यवाद से मुक्त करने के लिए स्वतन्त्रता संग्राम कर रही थी। इस संघर्ष में अमेरिका ने फ्रांस का समर्थन किया जबकि रूस ने हिन्द चीन की जनता का सहयोग किया। इस समस्या ने भी शीत युद्ध को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया।

3. **परस्पर विरोधी सैन्य संगठनों की होड़** :– रूस के साम्यवाद के प्रसार से भयभीत होकर अमेरिका ने अपने नेतृत्व में विभिन्न सैन्य संगठित करने का निश्चय किया। इसी क्रम में ब्।ज्व्ए छ।ज्व्ए ब्म्छज्ट आदि संगठन स्थापित हुए। प्रत्युत्तर में रूस ने वारसा सन्धि संगठन ;।त्ज्द्ध की स्थापना की। इन सैन्य संगठन के गठन के साथ ही शीत युद्ध में और तीव्रता आ गई।

तृतीय चरण (1958 – 1974 तक) –

1. **खुश्चेव की अमेरिका यात्रा** :– उदारवादी रूसी प्रधानमंत्री खुश्चेव ने सन 1958 में अमेरिका की यात्रा इस उद्देश्य से की कि इससे दोनों पक्षों में शान्ति स्थापित होगी। इस यात्रा में दो महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये। प्रथम सन् 1960 में पेरिस में एक शिखर सम्मेलन का आयोजन होगा जिसमें ब्रिटेन और फ्रांस भी भाग लेगें। दूसरा अमेरिकी राष्ट्रपति आइजन हावर को रूस की सरकारी यात्रा का निमंत्रण दिया गया।

2. **जासूसी विमान (यू–2) काण्ड** :– पेरिस शिखर सम्मेलन से पूर्व ही एक ऐसी घटना घटी जिसने अमेरिका और रूस के सम्बन्धों में पुनः उग्रता उत्पन्न कर दी। यह घटना 'यू–2 विमान घटना' के नाम से जानी जाती है।

उक्त घटना 1 मई 1960 को घटी जब अमेरिकी जासूसी विमान यू–2 रूस की सीमाओं में प्रवेस कर गया इस घटना से रूस यह समझ गया कि उक्त विमान अमेरिका द्वारा रूस की जासूसी करने भेजा गया है। इस काण्ड से अमेरिका और रूस के मध्य सम्बन्धों में गपुनः तनाव आ गया।

3. **पेरिस शिखर सम्मेलन** :– जासूसी विमान काण्ड से पेरिस शिखर सम्मेलन का आयोजन नहीं हो सका। 16 मई 1960 को फ्रांस में पेरिस शिखर सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में रूस द्वारा अमेरिकी विमान का मामला उठाया। यद्यपि जान हॉवर (अमेरिकी राष्ट्रपति) ने रूस को यह आश्वासन दिया कि भविष्य में विमानखण्ड जैसी घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं की जायेगी। लेकिन दोनों देशों के मध्य मतभेद बने रहे।

4. **क्यूबा संकट** :– सन् 1960 को अमेरिका के नये राष्ट्रपति कैनेडी बने। कैनेडी और खुश्चेव ने तनाव को कम करने का प्रयास किया लेकिन इस बीच सन् 1962 में क्यूबा संकट उत्पन्न हो गया ऐसा प्रतीत होने लगा था कि क्यूबा संकट के बहाने दोनों देश शस्त्र युद्ध करना चाहते है। लेकिन दोनों के नेताओं संयम और दूरदर्शिता का सहारा लेते हुए युद्ध को टाल दिया। और क्यूबा संकट टल गया।

5. **अणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (1963)** :– अमेरिका और रूस ने मिलकर शीत युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने के लिए निःशस्त्रीकरण की दिशा में प्रयास करना प्रारम्भ किया। अतः दोनों देशों के मध्य रूस की राजधानी मास्को में 5 अगस्त 1963 में रूस अमेरिका और ब्रिटेन ने अणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये। छनबसमंत ज्मेज ठंद ज्तमंजलद्ध लेकिन शीघ्र ही 1963 में कैनेडी की हत्या कर दी गई तथा 1964 में खुश्चेव को सत्ताच्युत कर दिया गया।

6. **वियतनाम संकट** :– अमेरिका और रूस के मध्य शीतयुद्ध की प्रमुख घटनाओं में से एक 'वियतनाम संकट' भी है। यह संकट 1964 से 1975 तक चला। इस संकट ने दोनों देशों के मध्य तनाव बढ़ा दिया। सन् 1967 में दोनों देशों के मध्य पुनः विचार विमर्श हुआ। विवश होकर अमेरिका ने उत्तरी वियतनाम पर बमवारी बन्द कर दी। अन्ततः 30 अप्रैल 1975 को वियतनाम युद्ध बन्द हो जाने से रूस और अमेरिका के मध्य तनाव कुछ सीमा तक कम हो गया।

तनाव–शैथिल्य अथवा (देतान्त) (DÉTENTE)

सन् 1962 के पश्चात् रूस और अमेरिका के दृष्टिकोणों में व्यापक परिवर्तन आया। दोनों देशें के नेताओं खुश्चेव व कैनेडी ने अपने देश की जनता की

मानसिकता को बदलने के लिए उनको यह समझाना प्रारम्भ कर दिया कि शीत युद्ध से कोई लाभ नहीं होने वाला इससे राष्ट्रीय हितों की पूर्ति असम्भव है। अतः दोनों के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित किये जाए। अमेरिका और रूस के सम्बन्धों में इस नवीन परिवर्तन को तनाव शैथिल्य या देतान्त की संज्ञा प्रदान की गई।

देतान्त वास्तव में एक फ्रांसीसी शब्द है। जिसका अर्थ तनाव शैथिल्य (त्मसंगंजपवद वि ज्मदेपवदे) है। देतान्त शब्द का प्रयोग अर्न्तराष्ट्रीय राजनीति में अमेरिका और रूस के मध्य बढ़ती हुई मैत्री व सहयोग की भावना के लिए किया जाता है।

तानव में शिथिलता लाने की आवश्यकता का अनुभव क्यों किया गया यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है इसके कारण निम्न है।

1. दोनों महाशक्तियों ने यह अनुभव किया कि अस्त्र–शस्त्र पर व्यय करने के स्थान पर अपने–अपने देश की आम जनता के भविष्य को सुखद बनाने के लिए धन व्यय करना अधिक लाभकारी है। तनाव–शैथिल्य के फलस्वरूप दोनों महाशक्तियों का धन व शक्ति का अपने देश की जनता की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में उपयोग होगा जिससे विश्व शान्ति का स्थायी आधार बनेगा।

2. रूस की सरकार अपने देश के आर्थिक विकास के प्रति चिन्तित थी। तकनीकी ज्ञान के अभाव में देश का आर्थिक विकास अवरूद्ध हो गया था। अमेरिका से उसे यह तकनीकी ज्ञान उसी स्थिति में प्राप्त हो सकता था जब वह अमेरिका से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये जाए। अतः रूस ने शीत युद्ध में शिथिलता लाने की आवश्यकता का अनुभव किया।

3. अमेरिका को भी अपने आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के लिए कच्चे माल की आवश्यकता महसूस हो रही थी वहीं रूस के पास कच्चे माल का विशाल भण्डार था। इस प्रकार दोनों देशों ने अनुभव किया कि अर्थव्यवस्था मे सुधार लाने के लिए एक दूसरे के सहयोग की आवश्यकता न कि तनाव पूर्ण वातावरण की। अतः दोनों ने इस तनाव को कम करने की दिशा में प्रयास करना प्रारम्भ किया।

4. दोनों महाशक्तियों को यह आशंका थी कि यदि शीत–युद्ध को कम नहीं किया गया तो वह कभी भी विध्वसंकारी युद्ध में परिवर्तित हो सकता है। अतः विनाशकारी परिणामों से बचने के लिए दोनों महाशक्तियों ने आपसी टकराव को टालने का निश्चय किया।

5. नाव को कम करने तथा शीत युद्ध को शिथिल बनाने में गुटनिरपेक्ष राज्यों की भी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। गुटनिरपेक्ष राज्यो ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गुटबन्दी की नीति का परित्याग करने और आपसी सद्भाव कायम करने पर अधिक बल दिया। गुट निरपेक्ष राज्यों की नीति के फलस्वरूप रूस व अमेरिका के मध्य तनाव व कटुता में धीरे–धीरे कमी आने लगी। और वे अवरोध की नीति छोड़कर सहयोग की नीति पर चलने लगे।

<u>मास्को शिखर–वार्ता (1972)</u> :–

तनाव शैथिल्य की अवधि में रूस व अमेरिका के मध्य सम्पन्न हुई मास्को शिखर वार्ता का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 'निक्सन' अमेरिका के पहले ऐसे राष्ट्रपति थे जिन्होंने रूस की 'सद्भावना यात्रा' करने का निश्चय किया। इस वार्ता के दौरान दोनों देशों के मध्य कई समझौते हुए

और यह निश्चय किया गया कि दोनों देश भविष्य में विवादास्पद प्रश्नों का निर्णय युद्ध से ही बल्कि शान्तिपूर्ण वार्ता के माध्यम से करेगें।

इस अवसर में अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन ने आशा व्यक्त करते हुए कहा कि :–

"इस शिखर वार्ता से शान्तिपूर्ण सहयोग की नीति को वास्तविक रूप से लागू करने में सहयोग मिलेगा और दोनों राष्ट्र मिलकर विश्व की सम्पूर्ण जनता की खुशी व समृद्धि के लिए कार्य कर सकेगें।

इस वार्ता में कुछ बातों पर विशेष बल दिया गया जैसे–

(1) आपसी सौहार्द स्थापित करने के लिए सह–अस्तित्व की नीति का पालन करना अनवार्य है।

(2) दोनों देशों सैनिक संघर्ष को कम करने तथा आणविक युद्ध के आकस्मिक विस्फोट को रोकने का प्रयास करेगें।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने के उद्देश्य से आपसी विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करना।

(4) दोनों देशों के मध्य सम्पन्न हुए समझौते व सन्धियों की शर्तो का ईमानदारी के साथ पालन करना।

(5) दोनों देशों का अन्तिम लक्ष्य पूर्ण निःशस्त्रीकरण है इस दिशा में अधिकाधिक प्रयास करना।

(6) विज्ञान, प्रौद्योगिकी, आर्थिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक दूसरे को पूर्ण सहयोग प्रदान करना।

(7) विश्व राजनीति के क्षेत्र में सभी राज्यों की समानता के सिद्धान्त को स्वीकार करना।

इस प्रकार मास्कों–शिखर वार्ता के माध्यम से सोवियत रूस व संयुक्त राज्य अमेरिका दोनों महाशक्तियों को एक दूसरे के निकट आने का सुअवसर प्राप्त हुआ। तनाव–शैथिल्य के उद्देश्य से मास्को–शिखर– वार्ता को अत्यन्त महत्वपूर्ण दस्तावेज कहा जा सकता है।

चतुर्थ चरण (1980–89) :–

बोध प्रश्न–1 सही/गलत में उत्तर दीजिए।

(1) शीत युद्ध सन् 1945 से प्रारम्भ होकर 1974 तक चला।

(2) रूसी प्रधानमंत्री खुश्चेव पूर्व के प्रधानमंत्री स्टालिन से अधिक कठोर एवं उग्र था।

(3) जासूसी विमान की घटना में अमेरिका का हाथ था।

(4) देतान्त एक फ्रांसीसी शब्द है जिसका अर्थ है। तनाव–बढ़ाना।

बोध प्रश्न–2 तनाव–शैथिल्य पर 10 पंक्तियां लिखिए ?

बोध प्रश्न–3 शीत युद्ध के विश्व में क्या प्रभाव पड़े 10 पंक्तियों में लिखिए?

शीत युद्ध का चतुर्थ चरण (1980–89) :– शीतयुद्ध के इस चरण में महाशक्तियों में सहयोग के साथ–साथ प्रतिद्वन्दिता भी चलती रही। इस चरण में युद्ध को अतिरिक्त सभी साधनों का संघर्ष भी कहा जाता है। कुछ लोग इसे "दूसरा शीत युद्ध" अथवा नया शीत युद्ध" भी कहते है। वास्तव में इस नये शीतयुद्ध का प्रारम्भ राष्ट्रपति रीगन के सत्ता में आते ही, अमेरिका को पुनः काग्र पर लगाने, अस्त्र उद्योग को बढ़ावा देने, मित्र–राष्ट्रों का पुनः शस्त्रीकरण करने, शस्त्रों की होड़ को तेज करने और सोवियत रूस के प्रति कठोर नीति अपनाने की घोषणा से माना जाता है। यद्यपि इससे पूर्व भी 'देतान्त' काल में अनेक अर्न्तराष्ट्रीय मुद्दों और समस्याओं पर अमरीका और सोवियत रूस ने पृथक–पृथक पक्षों का साथ दिया था।

शीतयुद्ध का अन्त :– 1989 में विश्व इतिहास में चमत्कारी मोड़ आया। शीत युद्ध के मूल कारणों की समाप्ति हो गई। बर्लिस की दीवार का पतन हो गया, जर्मनी का एकीकरण हो गया, वारस पेंक्ट भंग कर दिया गया और दोनों महाशक्तियों के बीच मधुर सम्बन्धों का सूत्रपात हुआ। शीत युद्ध के अन्त का मुख्य कारण पूर्वी यूरोप में साम्यवाद का ध्वस्त होना तथा सोवियत संघ में उभरता हुआ आर्थिक एवं सामाजिक संकट था। सोवियत रूस अमेरिका से प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में नहीं था अतः उसने स्थिति का यर्थाथपरक मूल्यांकन करते हुए शीत युद्ध की राजनीति का परित्याग करना ही हितकर समझा।

शीत युद्ध की समाप्ति एक युग का अन्त माना जा सकता है। यद्यपि शीत युद्ध की समाप्ति अचानक हुई तथापि इसकी प्रक्रिया लम्बे समय से चली आ रही थी। अनेक तत्वों ने शीत युद्ध की समाप्ति में योगदान दिया लेकिन इसका प्रमुख कारण दोनों शक्तियों की अवधारणा में परिवर्तन है। दोनों शक्तियों ने स्वयं एवं विश्व के हित में समझ लिया यदि आणविक अस्त्र–शस्त्र के युग में युद्ध होगा तो दोनों ही पषों का संहार होगा।

शीतयुद्ध के प्रभाव :– शीत युद्ध के तात्कालिक एवं दूरगामी परिणाम रहे। एक तो वे जिन्होंने महाशक्तियों के आपसी सम्बन्धों को प्रभावित किया, उनके आक्रामक तेवर बढ़ाये, शस्त्रास्त्रों के खतरनाक मोड़ तथा सीधे मुठभेड़ की प्रवृत्ति को उकसाया है। दूसरे वे जिन्होंने तीसरी दुनिया के देशों को खास संघर्ष में खीचा, स्थानीय विवादों को विस्फोटक संकटों में बदला और गुट–निरपेक्षता व अफ्रो–एशियाई एकता का बहुत हद तक अवमूल्यन किया।

सोवियत संघ के विघटन ने शीतकाल की एक महाशक्ति के अस्तित्व को अन्तर्राष्टीय राजनीति पहल से विलोपित कर दिया।

फलतः संयुक्त राज्य अमेरिका एकमात्र महाशक्ति के रूप में बचा रहा। शीतयुद्ध की समाप्ति के पश्चात द्विध्रुवीकरण की स्थिति का अन्त हो गया और विश्व राजनीति का स्वरूप अमेरिकी नेत्त्व में एकध्रुवीय हो गया। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद सोवियत संघ के रिक्त स्थान की पूर्ति करने की क्षमता किसी भी राष्ट्र में नहीं थी। चीन, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस जैसे राष्ट्र भी उसके साथ प्रतियोगिता की स्थिति में नहीं थे।

यहीं से विश्व अमेरिकी प्रभुत्ववाद की शुरूआत होती है। परन्तु वैश्वीकरण के दौर में किसका प्रभुत्व स्थायी रह सकता है।

विश्व राजनीति को प्रभावित करने में शीत युद्ध की प्रमुख भूमिका रही। इसके अच्छे परिणाम कम तथा बुरे परिणाम अधिक प्रकट हुए।

(1) शीत युद्ध ने अणुशक्ति के विकास का मार्ग प्रशस्त किया परन्तु इसके हानिकारक प्रयोग अधिक हुए।

(2) शीतयुद्ध के कारण अमेरिकी राष्ट्रपति हूमेन आर्थिक विकास हेतु सहायता की शुरूआत की जिसमें मार्शल योजना और चार सूत्रीय कार्यक्रम सम्मिलित थे।

(3) शीत युद्ध के कारण मजबूरन अमेरिका ने एशिया और अफ्रीका के विभिन्न देशों के राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थन किया।

(4) महाशक्तियों के मध्य चलने वाले शीतयुद्ध में गुटनिरपेक्षता की भावनाओं को प्रदान किया।

(5) एक गुट ने दूसरे गुट पर आक्रमण इसलिए नहीं किया क्योंकि वे एक दूसरे की शक्ति से भयाक्रान्त थे। इस दृष्टि से देखा जाए तो शीतयुद्ध भावी युद्धों को रोकने में सफल रहा। और शीत युद्ध में पारस्परिक निर्भरता एवं सामूहिक सुरक्षा की भावना को मजबूत प्रदान की।

(6) शीतयुद्ध के कारण दोनों महाशक्तियाँ अपनी–अपनी सुरक्षा व्यवस्थाओं को अधिक सुदृढ़ बनाने में जुट गये जिसके फलस्वरूप सैनिक सन्धियाँ एवं संगठनों का निर्माण हुआ। इन संगठनों के कारण एक तरफ से शीतयुद्ध में तीव्रता आयी तो दूसरी तरफ निःशस्त्रीकरण की समस्या अधिक जटिल हो गई।

(7) शीतयुद्ध ने संदेह और अविश्वास के वातावरण को जन्म दिया। इससे घृणा, द्वेष को बढ़ावा मिला। पण्डित नेहरू ने इस स्थिति का आक्कलन करते हुए कहा था कि हम लोग "निलम्बित मृत्युदण्ड" के युग में रह रहे हैं।

(8) शीत युद्ध ने जहाँ विश्व को दो गुटों में विभाजित किया वहीं "तीसरी दुनिया" के अस्तित्व में आने की संभावनाओं को जन्म दिया। तीसरी दुनियां के देशों ने सोचना प्रारम्भ कर दिया कि इन शक्तिशाली देशों का कर्तव्य है कि वे तीसरी दुनियां के देशों की समस्याओं जैसे भुखमरी, बेरोजगारी, अशिक्षा, आर्थिक पिछड़ापन आदि को दूर करने का प्रयास करें।

(9) शीत युद्ध ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रतिष्ठा को जबरदस्त आघात पहुचाया। इसमें लिए जाने वाले निर्णय गुटबन्दी के आधार पर लिए जाने लगे। शीत युद्ध के कारण ही वीटो का प्रयास हास्यास्पद बनकर रह गया।

निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित प्रतीत होता है कि शीत युद्ध ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को अमावश की काली रात के समान कालिमा से आच्छादित किया। शीत युद्ध का प्रभाव केवल यूरोप तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि इसका प्रमुख एशिया पर भी पड़ा। सोवियत संघ ने तुर्की और ईरान में अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयास किया।

4.4 सारांश

वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को शीत युद्ध ने अत्याधिक प्रभावित किया। इसने विश्वभर में आतंक के वातावरण को जन्म दिया जिससे शस्त्रों की होड़ बढ़ने लगी। इस युद्ध ने संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी संस्था को पंगु बना दिया और विश्व को दो गुटों में विभाजित कर दिया। इससे आणविक युद्ध की सम्भावना के बढ़ने में योगदान दिया और सैनिक गठबन्धनों की संख्या बढ़ाने में सहायक हुआ।

4.5 शब्दावली :–

(1) **शीतयुद्ध** :– हथियारों से नहीं बल्कि विचारों द्वारा लड़ा जाने वाला युद्ध।

(2) **तनाव शैथिल्य** :– दो राज्यों के तनावपूर्ण सम्बन्धों का अन्त।

सारांश :–

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद यूरोपीय राजनीति में दो महाशक्तियां अमेरिका व रूस के मध्य तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गई। इस स्थिति ने धीरे–धीरे तीव्र वैचारिक मतभेद उत्पन्न कर दिये। दोनों देशों के मध्य यह स्थिति शीत युद्ध के नाम से जानी जाती है।

शीत युद्ध की अवधि (1945–1974) के दौरान दोनों देश एक दूसरे पर हावी होने का प्रयास करते रहे। लेकिन ये दोनों देश यह समझने में सफल रहे कि दोनों का अस्तित्व एक दूसरे का पूरक बनने में है न कि प्रतिद्वन्दी। अतः धीरे–धीरे दोनों देशों के मध्य शीत युद्ध की उग्णता कम होने लगी और मास्कों शिखर वार्ता में दोनों देश एक दूसरे से सहयोगी रूख अपनाने लगते है।

ईकाई–5

विश्व राजनीति और भारत

ईकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 द्वितीय विश्व युद्ध के समय भारत

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 बोध प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस ईकाई में द्वितीय विश्व युद्ध के समय की राजनीति का भारत की स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा तथा विश्व युद्ध ने किस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता को प्रभावित किया, उसे गति प्रदान की इसकी विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की गई है। साथ ही यह भी बताने का प्रयास किया गया है। कि तत्कालीन भारतीय राजनीति इस युद्ध को किस परिपेक्ष में रखकर कर देख रही थी।

5.2 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध 3 सितम्बर 1939 को प्रारम्भ हो गया भारत में ब्रिटिश वायसरॉय ने प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों या किसी भारतीय नेता की सलाह लिए बिना ही एकतरफा तौर पर भारत को जर्मनी के विरूद्ध बिट्रेन के युद्ध में झोंक दिया। जर्मनी के आक्रमण या फासीवाद आक्रमण के विरूद्ध भारत का वैमनस्य स्वयं बिट्रेन की तुलना में कहीं अधिक स्पष्ट था। फिर भी लार्ड लिनलिथगो ने न्यूनतम शर्तों पर भारत के पूर्ण सहयोग के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। वैसे भी मित्रदेशों का यह प्रचार अत्यन्त खोखला प्रतीत होता था कि यह युद्ध निरकुंशता एवं आक्रमण के विरूद्ध जनतन्त्र एवं राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के सिद्धान्त का संघर्ष है। भारत का प्रत्येक नेता इस युद्ध को अपने–अपने नजरिये से देख रहा था। प्रत्येक संगठन इस प्रयास में था कि किस प्रकार इस युद्ध से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर देश को स्वतन्त्र कराया जा सके। इस ईकाई में हम इन्हीं प्रयत्नों और इन प्रयत्नों पर विश्व युद्ध की स्थिति (घटनाओं) का क्या–क्या प्रभाव पड़ रहा था इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।

5.3 द्वितीय विश्व युद्ध और भारत की स्थिति

3 सितम्बर 1939 को द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ ने सम्पूर्ण विश्व के देशों की स्थिति को प्रभावित किया। यही हालात भारत देश में थे जो उस समय ब्रिटेन का उपनिवेश था तथा अपनी स्वतन्त्रता के लिए प्रयासरत् था।

इस युद्ध की घोषणा से भारतीय नेता एक कठिन स्थिति में पड़ गये। वे फासिस्टवादी दर्शन के बिल्कुल थे, जैसा कि जाहिर था कि इस दर्शन के बिल्कुल विरूद्ध थे, जैसा कि जाहिर था कि इस दर्शन में एक तरह का एकदलीय शासनतन्त्र था जिसमें रंगभेद सम्बन्धी दुराग्रह भी शामिल था। यहां तक कि सन् 1939 के पहले के वर्षों में विस्तारवादी कार्यक्रम के साथ जब फासिस्तवाद एक राजनीतिक दर्शन के रूप में उभर रहा था तभी जवाहर लाल नेहरू जैसे अनेक नेता यूरोप में उसे विकसित होते देखकर बहुत चिन्तित हुए थे।

कांग्रेस ने बहुत ही स्पष्ट ढंग से उसकी निष्ठा करते हुए स्पेन, इथियोपिया, और चेकों स्लाविया की पीड़ित जनता को खुला समर्थन देने की घोषणा की थी। जब जापान ने चीन पर आक्रमण किया था भारत ने चीन का समर्थन करते हुए जापान को अक्रामक कहा। लेकिन भारत साम्राज्यवाद का उतना ही प्रबल विरोधी था। अतः युद्ध को लेकर उनका दृष्टिकोण इस बात पर निर्भर कर रहा था कि उसके लक्ष्य और उद्देश्य क्या है? यदि यह युद्ध एशिया और अफ्रीका के देशों में अपने उपनिवेश या अपने औपनिवेशिक प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए परेशान पुरानी साम्राज्यवादी शक्तियों या फासिस्टवादी सत्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले उन नव साम्राज्यवादियों में बीच हो रहा है जो उपनिवेशवादी लूट में अपना हिस्सा चाह रहे है तब भारत की इस युद्ध में कोई दिलचस्पी नहीं होगी। लेकिन यदि मित्र राष्ट्र अपना रवैया बदलकर दुनिया में जनतनत्र कायम करने के उद्देश्य से सचमुच ईमानदारी के साथ फासिस्ट वादियों से लड़ रहे है तो भारत उनको अपनी शक्ति भर हर सम्भव सर्मथन देगा।

लेकिन मित्रराष्ट्रों को निश्चित प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध करना पड़ेगा कि उन्होंने जो दावे प्रस्तुत किये है वे सच में उन पर अमल करेगें। खासतौर पर ब्रिटेन को तत्काल भारत को स्वयं अपनी सरकार चलाने के लिए उचित मात्रा में अधिकार देना चाहिए।

लेकिन भारतीय जनता और उसके नेताओं की उन भावनाओं को महत्वहीन मानकर उन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया और इसी बीच 3 सितम्बर 1939 को युद्ध की घोषणा कर दी गई। इस घोषणा के साथ ही भारत स्वतः ही युद्ध में शामिल हो गया। लेकिन सम्भवतः उस समय कांग्रेस की तात्कालिक प्रतिक्रिया समन्वयात्मक थी। 14 सितम्बर 1939 को कांग्रेस ने एक वक्तव्य जारी किया जिसमें दल के दृष्टिकोण की स्पष्ट व्याख्या की गई थी। जो इस प्रकार थी–

"अगर युद्ध का उद्देश्य यथावाद, साम्राज्यवादी अधिपल, उपनिवेश, निहित स्वार्थ और विशेषाधिकारों की रसा है तब भारत की इसमें कोई दिलचस्पी नहीं होगी लेकिन यदि मसला जनतन्त्र या जनतन्त्र पर आधारित विश्व व्यवस्था का ही तब उसमें भारत की गहरी दिलचस्पी लेगा।"

भारतवासियों के इस दृष्टिकोण से वायसराय का उत्तर अत्यन्त असन्तोषजनक था। युद्ध के दौर में भारतीयों को पर्याप्त अधिकार देना अव्यवहारिक समझा गया और दूर भविष्य तक में सत्ता छोड़ देने की ब्रिटेन की इच्छा का कोई

संकेत तक नहीं दिया गया जैसा कि भारतीय उम्मीद कर रहे थे अभी भी भारत को साम्राज्यवाद के अन्तर्गत औपनिवेशिक दर्जा ही प्राप्त करना था, पूर्ण और समग्र स्वतन्त्रा नहीं।

ब्रिटेन की इस नीति को देखते हुए महात्मा गांधी ने नये सिरे से ब्रिटेन के विरोध में सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करने की बात शुरू की। इस सत्याग्रह का वास्तविक उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के इस दावे को गलत साबित करना था कि भारत द्वितीय विश्व युद्ध की तैयारी में ब्रिटेन की मदद करना था।

नागरिक अवज्ञा का यह व्यक्तिगत आन्दोलन सन् 1940 में शुरू हुआ। वहीं सन् 1941 तक यूरोप में युद्ध अपने शिखर पर पहुंच गया था। इसी समय (सन् 1941) के उत्तरार्ध में होने वाली दो अर्न्तराष्ट्रीय घटनाओं ने भारत की स्थिति को एकदम बदल दिया। पहली घटना जब दक्षिण–पूर्वी एशिया में जापान का नाटकीय अभियान जिसमें चार महीनों के भीतर ही अंग्रेजो को मलाया, सिंगापुर और वर्मा से खदेड़ दिया ओर रंगून पर भी कब्जा कर लिया जिससे भारत में भी ब्रिटिश साम्राज्य के अचानक समाप्त हो जाने का खतरा उत्पन्न हो गया। दूसरी घटना जब ब्रिटेन के युद्ध में पराजित होने के बावजूद पोलैण्ड, बेल्जियम, हालैण्ड, नार्वे, फ्रांस और पूर्वी यूरोप के अधिकतर देशों को हराकर जर्मनी ने जून 1941 में रूस पर आक्रमण दिया।

इस प्रकार सन् 1941 के अन्त तक युद्ध ने वह शक्ल ले ली जिसमें सारी दुनिया जलती हुई दिखायी दे रही थी। अमरीका और रूस उसमें पूरी तरह शामिल होकर मित्रराष्ट्र के साथ लड़ रहे थे। लेकिन इससे यह स्पष्ट नहीं लग रहा था कि विजय शीघ्र हो जायेगी।

अब ब्रिटेन हताश होकर भारत का पूरा और सक्रिय सहयोग पाने के लिए परेशान था ताकि न केवल जापान को आगे बढ़ने से रोका जा सके वरन् युद्ध साम्रगी तैयार करने में भी मदद मिल सके। ब्रिटेन ने यह भी महसूस किया कि भारत को फिलहाल भविष्य में स्वशासी सरकार बनाने के पूरे अधिकार देने का निश्चित वायदा करना पड़ेगा तद्नुसार ब्रिटिश सरकार ने युद्ध कालीन मन्त्रिमण्डल के एक सदस्य क्रिस्प ने भारतीय प्रश्नों और समस्याओं का गम्भीरता पूर्वक लम्बे समय तक अध्ययन किया। उनके विषय में एक अवधारणा थी कि भारतीय समस्याओं के प्रति उनके मन में सहानुभूति का भाव है। लेकिन घोषणा पत्र का जो मसविदा वह अने साथ लाये थे उसमें सिफारिस के नाम पर कुछ खास नहीं था। उसमें यह प्रस्ताव था कि युद्ध समाप्ति के बाद भारत को औपनिवेशिक दर्जा दे दिया जायेगा तथा इसमें भारत को अलग ही जाने का भी अधिकार दिया गया था। प्रस्ताव पर अमल करने के लिए, युद्ध खत्म होते एक संविधान सभा का भी गठन किया जायेगा। लेकिन इसमें यह भी व्यवस्था थी कि यदि कोई प्रान्त भारतीय संघ से अलग रहना चाहे तो रह सकता है।

इस घोषणा को सभी राजनैतिक दलों ने अस्वीकार कर दिया हालांकि उनके कारण भिन्न–भिन्न और प्रायः एकदम अर्न्तविरोधी थे। वास्तव में कोई भी ब्रिटेन के भविष्य के वायदों पर विश्वास नहीं कर पा रहा था। अन्ततः यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया इस प्रकार किस मिशन गतिरोध को समाप्त करने में असफल रहा।

क्रिस्प मिशन की असफलता ने देश को विषाद और उपाक्रोश का शिकार बना दिया। लगभग सभी लोगों में निराश व्याप्त थी। गांधी जी ने क्रिप्स के प्रस्ताव में बहुत दिलचस्पी नहीं थी लेकिन उसकी असफलता से उन्हें भी बड़ी निराशा

हुई। दक्षिण–पूर्व एशिया की बदलती हुई स्थिति से भी वह परेशान थे। ब्रिटेन, मकाया, सिंगापुर और वर्मा से पीछे हट गया था। उसके बाद वहां पर कोई प्रतिरोध नहीं रह गया और जापान वहां के लिए सब कुछ हो गया। इसी से मिलते–जुलते अभिशाप से फिलीपीन्स और इण्डोनेशिया को मस किया था।

तगड़ी सुरक्षा के नाम पर "स्कार्चड़ अर्थनीति के कारण देश पूरी तरह बर्बाद हो गये। जिसके तहत यह सोचकर यदि सीमान्त प्रदेश पर आक्रमण हुआ तो बंगाल में हजारों की सं0 में नदियों में पड़ी नावें दुश्मन के हाथ लगजायेगी, ब्रिटिश सरकार ने इसलिए उन्हें नष्ट कर दिया। उसके बाद जो विपत्ति उत्पन्न हुई वह भयंकर थी। यह प्रमाण भी भारत के सामने था और वह सोच सकता था कि वैसी स्थिति में भविष्य कैसा होगा। न केवल बंगाल की अर्थव्यवस्था बुरी तरह लड़खड़ा गयी थी बल्कि खाद्यान्न का भी संकट उत्पन्न हो गया था। गाँधी जी व कांगेस के अन्य नेता यह चाहते थे कि जो कुछ मलाया था वर्मा में घटित हुआ उसकी पुनरावृत्ति भारत में नहीं होनी चाहिए।

अतः गाँधी जी इस नतीजे पर पहुँचे कि भारतीय जनता के मन से इस भय को दूर भगाने और आक्रमण का मुकाबला करने के लिए तैयार करने का यही एक रास्ता हो सकता है कि उसके दिमाग में बैठा दिया जाए कि वह खुद अपनी मालिक है और देश की रक्षा करना उसका दायित्व है। अतः उन्होंने ब्रिटिश सरकार से भारत छोड़ देने और सत्ता को भारतीयों के हाथ में सौंप देने की माँग के साथ एक आन्दोलन शुरू करने का फैसला किया। उन्होंने अंग्रेजो से कहा वे भारत को ईश्वर या अराजकता के भरोसे छोड़ दे और यदि परिणामस्वरूप अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होती है तो मैं यह खतरा उठाने के लिए तैयार हूँ।"

लेकिन बहुत से नेताओ का विचार था कि यह अवसर ऐसी सख्त माँग के लिए उपयुक्त नहीं था। एक तरफ उन्हें जराजकता के परिणामों और दूसरी तरफ जापान तथा दूसरे निर्दयी दुश्मनों द्वारा भारतीय जनता को निस्सहाय दासता में जकड़ देने का भय था। नेहरू अभी दूसरी सोच में थे। उनका विचार था कि क्या देश को ऐसी व्यापक उथल–पुथल के हवाले कर देना था जिसका नतीजा फासिस्टवाद–विरोधी कदम उठाने वाले मित्र राष्ट्रों की पराव्य हो? भारत पर अधिपत्य जमाने वाले साम्राज्यवादी ब्रिटेन से युद्ध और जर्मनी– जापान से लड़ने वाले रूस और चीन का साथ छोड़ देने में से किसका चुनाव किया जाए।

वहीं गाँधी दृढ़ थे उन्होंने इस बात पर रजामंदी जाहिर की कि राजनैतिक सत्ता को सौंप दी जाती है तो ब्रिटिश सेनाएं भारत में रह सकती है और उन्हें ऐसे अड्डे भी दिये जायेगें जहाँ से वे अपना युद्ध संचालन कर सके।

इसी बीच चीन और अमेरिका ने ब्रिटेन को भारत के साथ गतिरोध खत्म करने के लिए समझाने बुझाने का प्रयास किया। लेकिन ब्रिटेन का प्रधानमंत्री चर्चिल किसी की भी सुनने को तैयर नही था उसने बार–बार घोषणा की कि उन्हें सम्राट का प्रधानमंत्री इसीलिए नहीं बनाया गया कि वह ब्रिटिश साम्राज्य का बटवारा कर दें। इसी बीच 8 अगस्त 1942 को 'भारत–छोड़ो" प्रस्ताव बम्बई के अधिवेशन में पारित कर दिया गया। इसी बीच ब्रिटिश भारत की प्रतिक्रियावादी नीतियों को विस्टन चर्चिल से सशक्त समर्थन एवं प्रोत्साहन मिला। मई 1940 को चर्चिल ब्रिटेन की मिली जुली सरकार का प्रमुख बना जब जर्मनी के ब्लिट क्रीडा (विद्युत गति से आक्रमण) ने पश्चिमी मोर्चे को तोड़ दिया तथा डंकिर्क में अंग्रेजों को समुद्र में धकेल दिया और चन्द ही हफ्तों में फ्रांस पर अधिकार कर लिया था। ऐसे में भारतीय समर्थन पाया ब्रिटेन के लिए आवश्यक दिखाई देने लगा। अथवा

भारत को कुछ रियायतें देने के लिए कुछ प्रस्ताव तैयार किये गये इन्हें अगस्त प्रस्ताव के नाम से जाना जाता है। अगस्त 1940 में जब एक अलग–थलग द्वीप में ब्रिटेन घमासान युद्ध कर रहा था, तब भारतीय समर्थन प्राप्त करने के लिए एमरी और यहाँ तक लिनलिथगों भी कुछ रियायतें देने को तैयार हो गये थे किन्तु उनके प्रस्तावों को प्रधानमंत्री चर्चिल ने बुरी तरह काट–छाँट कर दी क्योंकि उसका कहना था कि "मैं सम्राट का प्रधानमंत्री इसलिए नहीं बना हूँ कि ब्रिटिश साम्राज्य के अवसान की अध्यक्षता करूँ।"

1945 में वसन्त के अन्त तक यूरोप युद्ध समाप्ति पर था भारत में लिनालिथगो के स्थान पर वैकेल वायसराय बनकर आये। जून 1945 में चर्चिल ने वैवेल को भारतीय नेताओं के साथ मतभेदो के चलते यह वार्ता असफल रही।

एशिया में युद्ध के चलते रहने का मतलब होता भारतीय सैनिक अड्डों और उसके साधनों का अधिक से अधिक इस्तेमाल कर लाभ प्राप्त करना। देश में उस समय की राजनैतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वैवेल ने गतिरोध समाप्त करने और भारत की जनता और उसके नेताओं को जापान के विरूद्ध युद्ध में हिस्सा लेने के लिए एक रास्ता ढूंढ निकालना आवश्यक समझा।

युद्ध के दौरान जिस बात में तेजी से परिवर्तन आ रहा था वह था विश्व और भारत दोनों की ही वस्तुगत स्थिति। नाज़ी जर्मन का पूर्ण ध्वंस हो चुका था और अगस्त 1945 में युद्ध में परमाणु अस्त्रों के प्रयोग (हिरोशिमा और नागाशाकी पर बम वर्षा) के साथ ही जापान ने भी आत्मसमर्पण कर दिया था और पूर्वी यूरोप में कम्युनिस्ट नेतृत्व वाली सत्ताऐं उभर रही थी और इटली और फ्रांस में भी ऐसा ही होने के लक्षण दिखायी दे रहे थे। चीन में क्रान्ति आगे बढ़ रही थी और दक्षिण पूर्वी एशिया में भी प्रबल साम्राज्यवाद विरोधी लहर चल रही थी। वियतनाम और इंडोनेशिया फ्रांसीसी एवं उपनिवेशवादी शासन को पुनः स्थापित किये जाने के प्रयासों का प्रतिरोध कर रहे थे।

ब्रिटेन की सेना और जनता दोनों युद्ध से थक चुके थे और उसकी अर्थव्यवस्था अस्त–व्यस्थ हो चुकी थी। स्थिति में ब्रिटेन का पीछे हटना निश्चित था। लेकिन जिस नाटकीय ढंग से एशिया में युद्ध समाप्त हुआ उस राज का पता नहीं चल सका। युद्ध समाप्त होते ही परिस्थितियोंवश चर्चिल ने त्यागपत्र दे दिया और लेबर पार्टी की विजय ने ब्रिटेन की स्थिति को और खराब कर दिया।

युद्ध की समाप्ति के साथ यह स्पष्ट होने लगा था कि भारत की स्वतंत्रता को ज्यादा दिनों तक नहीं टाला जा सकता था। सोवियत संघ और अमरीका दोनों महाशक्तियों के रूप में उभरे थे और दोनों ही भारतीय स्वतन्त्रता के पक्ष में थे। हालांकि ब्रिटेन युद्ध में विजयी हुआ था लेकिन उसकी अस्तव्यस्थ अर्थव्यवस्था और सैनिक शक्ति को पुर्नगठन और पुर्नस्थापना के लिए समय की आवश्यकता थी। उसकी जनता खासतौर पर सैनिक कर्मचारी युद्ध से थक गये थे और साम्राज्य की रक्षा के लिए मुसीबतों में और पड़े रहने को तैयार नहीं थे। लेबर दल भारतीयों की मांग स्वीकार करने के पक्ष में था। ऐसा सोचने का एक सबसे महत्वपूर्ण कारण था कि भारत में अब परिस्थितियां बदल चुकी थी और ब्रिटेन के लिए उस पर आगे कब्जा जमाये रखना सम्भव नहीं था। आजाद हिन्द फौज के मुकदमें की सुनवाई से निर्णयात्मक ढंग से यह साबित हो गया था कि अब राष्ट्र को दमन के भय से कब्जे में नहीं रखा जा सकता है।

अब भारत अस्पष्ट वायदों से संतुष्ट नहीं होने वाला है। भारत की युद्ध की भावना उभर गयी थी और यदि राष्ट्रवादियों की मांग ठीक ढंग से स्वीकार नहीं की

गयीं तो परिस्थितियां अत्यधिक विस्फोटक हो सकती थी। ऐसी अवस्था में यूरोप ओर भारत की तात्कालिक परिस्थितियों के कारण ब्रिटिश सरकार ने सत्ता के हस्तान्तरण करने और उससे सम्बन्ध तात्कालिक और लम्बे समय की व्यवस्थाओं के विवरण तैयार करने का फैसला किया। और एक मंत्रिमण्डलीय मिशन भारत भेजा।

उधर वैवेल उत्सुक थे कि अन्तरिम सरकार की स्थापना जितनी जल्दी सम्भव होकर दी जानी चाहिए। और ब्रिटेन की सरकार क्लीमेंट एटली ने 20 फरवरी 1947 को घोषणा की अधिक से अधिक जून 1948 तक सत्ता भारत को सौंप दी जायेगी।

सत्ता हस्तांतरण की व्यवस्था के लिए लार्ड माउन्टेवेंटन को वायसराय बनाकर भारत भेजा गया। और अनेक समझौतों के साथ 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्र कर दिया गया। इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को गति प्रदान की और उसे अपने लक्ष्य (स्वतंत्रता प्राप्ति) तक पहुँचा दिया।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

MAHY-107 (N) Part- II

आधुनिक विश्व (1870 ई० से 2000 ई०)

खण्ड –तृतीय : उपनिवेशवाद का अंत 153–208

इकाई 1 – औपनिवेशिक साम्राज्य का क्षरण 155-162

इकाई 2 – युद्धोत्तर संस्थाएँ 163-176

इकाई 3 – सोवियत साम्यवाद 177-186

इकाई 4 – अमेरिकन प्रभुत्ववाद 187-196

इकाई 5 – गुटनिरपेक्ष आन्दोलन 197-208

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश प्रयागराज

MAHY-107 (N)

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	मा0 कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक एवं आचार्य इतिहास समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

प्रो. संतोष कुमार चतुर्वेदी	आचार्य, इतिहास महमति प्राणनाथ राजकीय महाविद्यालय, मऊ, चित्रकूट प्रथम खंड (1–5 इकाई)
डॉ. अर्चना सिंह	सह आचार्य, इतिहास काशी नरेश राजकीय महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही द्वितीय खंड (1–5 इकाई)
प्रो. अनुभा श्रीवास्तव	आचार्य, इतिहास वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी तृतीय खंड (1–5 इकाई)

सम्पादक

प्रो0 पी0 एल0 विश्वकर्मा	पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज वर्ष–2022

ISBN :978-93-94487-89-5

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

इकाई–1

औपनिवेशक साम्राज्य का क्षरण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 उपनिवेशवाद के विकास के कारण

1.2.1 आर्थिक कारण

1.2.2 राजनैतिक कारण

1.2.3 अन्य कारण

1.3 उपनिवेशवाद का क्षरण

1.4 उपनिवेशवाद के क्षरण के कारण

1.4.1 पश्चिमी शिक्षा

1.4.2 आधुनिक तकनीकि एवं नयी संचार व्यवस्था

1.4.3 परम्परिक उपनिवेशवादी ताकतो का क्षय

1.4.4 संयमक्त राज्य अमेरिका द्वारा अपनायी गयी दोहरी नीति

1.4.5 राष्ट्रवाद का प्रभाव

1.4.6 सोवियत कांति का प्रभाव

1.4.7 द्वि ध्रुवीय विश्व व्यवस्था का प्रारम्भ एवं महाशक्तिओ के मध्य सैद्धांतिक गुटबंदी

1.5 उपनिवेशों का विश्व राजनिति पर प्रभाव

1.5.1 साम्राज्यवाद एवं उपनिवेश का अन्त

1.5.2 तीसरी शक्ति का उदय

1.5.3 संयुक्त राष्ट्र संघ मे नये मुक्त हुये देशो का प्रभाव

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद हम–

- ❖ उपनिवेशवाद क्या है इसके बारे मे जान पायेगें ।
- ❖ विश्व मे उपनिवेशवाद के विस्तार के कारण जान सके।
- ❖ उन कारणो को जान सकेगे जिनके कारण उपनिवेशवाद का अन्त हुआ।
- ❖ उपनिवेशवाद के अन्त का विश्व राजनिति पर प्रभाव समझ सकेगें।

1.1 प्रस्तावना

किसी देश पर किसी अन्य देश के राजनैतिक अथवा आर्थिक नियंत्रण की व्यवस्था को उपनिवेशवाद कहते है। विश्व मे बढते हुये औद्योगीकरण ने उपनिवेषो की आवष्यकता को बढा दिया था। ऐसे धनी राज्यो के लिए जिनके पास प्रचुर मात्रा मे संचित पूँजी थी और जिनके पास औद्योगिक उत्पादन बढता जा रहा था उनके लिए यह आवष्यक था कि वे तथाकथित विछडे प्रदेशो पर अधिकार स्थापित कर ले तथा उनके प्राकृतिक साधनो का उपयोग तथा उनके व्यापार को अपने हाथों में रखें। इस नीति से संसार के अविकसित क्षेत्रो पर अधिकार करने की प्रतिस्पर्द्धा शुरु हुई जिसके फलस्वरुप अफ्रीका और चीन जैसे विषाल भू–भाग को भी आपस ने बाँट लिया गया और एशिया के कई प्रदेषो तथा प्रषान्त महासागर के अनेक द्वीपो पर अधिकार कर लिया गया। औपनिवेशिक साम्राज्य बढाने की इस नीति के परिणामस्वरुप अफ्रीका महाद्वीप का 90 प्रतिशत भाग यूरोपीय राज्यो के मध्य बाँटा गया।

1.2 उपनिवेशवाद के विकास के कारण

विष्व मे उपनिवेशवाद के तेजी से फैलने के कई कारण थे। जो निम्न है–

1.2.1 आर्थिक कारण

1. **अतिरिक्त उत्पादन** – औद्योगिक क्रांति के कारण मानव समाज के आर्थिक संगठन मे बडा परिवर्तन हुआ। जैसे –जैसे इन देशो का औद्योगिक उत्पादन बढा।

इन देशो को अपने तैयार माल को बेचने की चिनता होने लगी उपनिवेश इस अतिरिक्त माल को बेचने के लिये अच्छा बाजार साबित हो सकते थे अतः विमिल देशो ने उपनिवेशीकरण किया।

2. **अतिरिक्त पूँजी** – बडे पैमाने पर उत्पादन होने से लाभ की मात्रा बढ गई थी। अतः पूँजीपति से ऐसे स्थान पर लगाना चाहते थे जहाँ लाभ अधिक हो। अविकसित देशो मे मजदूरी सस्ती थी अतः पूँजी को उपनिवेशो मे लगाने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। और लोगो ने अपनी सरकारो को उपनिवेश स्थापित करने के लिए प्रेरित किया।

3. **कच्चे माल की आवष्यकता** – औद्योगिक उत्पादन के लिये कच्चे माल की अधिक जरूरत थी इस माल की पूर्ति भी उपनिवेशो द्वरा ही सम्भव थी। अतः उद्योग प्रधान देष ऐसे उपनिवेशो पर अधिकार करने का प्रयत्न करने लगे जहाँ से उन्हें अधिक मागा ..... सस्ते दामों पर कच्चा माल मिल सके।

4. **यातायात एवं संचार साधनो का विकास** – रेलवे, डाक, तार,टेलीफोन आदि के अविष्कार से मनुष्य ने देष और काल पर आभूतपूर्व विजय प्राप्त की। टेलीग्राफ और केबिल के द्वारा प्रत्येक उपनिवेश से व्यापारिक..... करने मे कोइ कठिनाई नही होती थी।

5. **जनसंख्या का दबाव** – उन्नीसवीं शताब्दी मे यूरोप की आबादी बडी तेजी से बढी। एक बडी समस्या इस बढती हुई आबादी को रोजगार तथा घर देने की थी। इस समस्या का एक आसान उपाय था कि बहुत से लोगो को दूसरे देशो मे बसा दिया जाय। इस आधार पर उपनिवेशो की स्थापना की थी।

1.2.2 राजनीतिक कारण

इटली और रुस जैसे कुछ देशो मे जिनका औद्योगिक विकास अपेक्षाकृत कम हो पाया था , उन्होने मूलतः राजनीतिक उद्देष्यो से ही औपनिवेषिक विस्तार किया। इटली ने अपना राष्ट्रीय महत्व बढाने के लिए लीबिया पर अधिकार कर लिया। इसी प्रकार मिश्र पर इंग्लैण्ड का संरक्षण स्थापित हो गया।

1.2.3 अन्य कारण

1. **व्यापारिक वर्ग** – यूरोप के देशो में व्यापारियो का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया था जो अपना माल बचाने के लिए हमेशा नये बाजार की तलाश मे रहता था। इनते कपडे, लोहे, अस्त्र–शस्त्र, गोला–बारुद, आदि के व्यापारी प्रमुख थे। बडी–बडी जहाज कम्पनियो के मालिक भी कोयला लेने..... तूफान आदि से बचने के लिए औपनिवेशक नीति का समर्थन करते थे।

2. **उग्र राष्ट्रीयता** – राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर भी यूरोप के विभिन्न राज्य अपनी शाक्ति का विस्तार करना चाहते थे। जर्मनी, इटली और फ्रांस उपनिवेशो की वृद्धि करके अपने पुराने गौरव को पाना चाहते थे वही बढती हुई प्रतियोगिता से इंग्लैण्ड ने अपने साम्राज्य का और अधिक विस्तार किया।

3. **ईसाई मिशनरियों का योगदान** – यूरोप के पादरियो का मुख्य उद्देश्य ईसाई –धर्म का प्रचार–प्रसार करना था। मार्कोपोलो जब चीन गया तो अनेक ईसाई मिशनरी भी उसके साथ गये। ईसाई पादरी साम्राज्य विस्तार के अच्छे साधन माने जाते है। वे अविकसित क्षेत्रो मे लोगो की भलाई का काम करते थे। किन्तु कई बार इस पुनीत कार्य की आड में वे साम्राज्य विस्तार में मद्द भी करते थे। फ्रांस ने अपनी औपनिवेशिक नीति को सभ्यता के विस्तार का कार्य बतलाया वहीं इटली ने इसे पुनीत कर्तव्य घोषित किया।

बोध प्रश्न–1

1. उपनिवेशवाद से आप क्या समझते है? संक्षेप में लिखे?
2. उपनिवेशवाद के प्रचार के आर्थिक कारणो को समझाइये?
3. उपनिवेशवाद मे ईसाई मिशनरियो का क्या योगदान था?

1.3 उपनिवेशवाद का क्षरण

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पूरे विश्व मे विशेषकर एशिया तथा अफ्रीका मे उपनिवेशवाद के विरोध मे तथा अपनी स्वतंत्र अस्मिता एवं गौरव की प्राप्ति हेतु एक अभूतपूर्व शुरुआत हुई। यह एक युगान्तकारी धरना थी। वास्तव मे उपनिवेशवाद का सूर्य धीरे–धीरे अस्त होने की दिशा मे चलने लगा। सम्पूर्ण विश्व मे परिवर्तन ओर पुर्ननिर्माण की लहर चलने लगी भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरु ने प्रथम एशियाई सम्मेलन (1947) मे ठीक ही कहा था। एक परिवर्तन हो रहा है एशिया पुनः अपने स्वरुप को पहचान रहा है। हम परिवर्तन के एक महान युग मे रह रहे है और इसमे नवीन युग का समावेश तब होगा जब एशिया अन्य महाद्वीपो सहित अपना उचित स्थान ग्रहण करेगा। विश्व इतिहास के इस संकटकाल मे एशिया निश्चित रुप से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करेगा। इसी तरह अफ्रीका महाद्वीप के बारे मे टोमबोथ ने ठीक ही कहा है विदेशी अधिपत्य द्वारा आरोपित अंधेरे और औपनिवेशिक शासन की जेल की कोठरियो से अफ्रीका और अफ्रीकी लोगो का अभ्युदय समकालीन विश्व स्थिति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है।

दुनिया की आँधी से ..... आबादी को अपने मे समाहित किए एशिया महाद्वीप सभी प्रकार के धर्मो , संस्कृतियो एवं भाषाओ का घर है। यूनानी ,चीनी एवं भारत की सभ्यता ने समग्र विश्व को गहराई से प्रभावित किया। विश्व के सभी प्रमुख धर्मो, वैदिक, ईसाई, इस्लाम, बौद्ध, यहूदी और हिन्दू धर्म की उत्पत्ति एशिया मे ही हुई। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद एशिया मे स्वतंत्रता ,राष्ट्रीयता और लोकतन्त्र की पहली लहर आयी जिसने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भयंकर बाढ का रुप ले लिया। इस प्रकार उपनिवेशवाद के पराभाव के साथ–साथ एशिया में नये युग का श्री गणेश हुआ। अफ्रीका–एशिया के बाद विश्व का सबसे बडा महाद्वीप है इसके लगभग 90 प्रतिशत भाग पर उपनिवेश स्थापित कर लिए गये थे। अफ्रीका मे स्वतंत्रता प्राप्ति की लीन लहर आयीं। पहली लहर 1945 के बाद आयी ,जिससे लीबिया ,सूडान, मोरस्को और ..... मुक्त हुये। दूसरी लहर मे घाना तथा गिनी ने स्वतंत्रता पायी। 1959 तक अफ्रीका में 11 राज्य स्वाधीन हो गये थे। 1960 में अफ्रीका में स्वतंत्रता की तीसरी लहर आयी। जिसमें यहाँ के अधिकांश देश जैसे– कैमरुन, मोरस्को, माली, टोंगो,

सोमालिया, नाइजर, कांगो, नाइजीरिया आदि मुक्त हुये। अफ्रीका मे मुक्त होने वाला अंतिम देश दक्षिण अफ्रीका रहा जो ..... में नेल्सन मंडेला के विशेष प्रयासो से मुक्त हुआ।

1.4 उपनिवेशवाद के क्षरण के कारण

विश्व के कई देशो में उपनिवेशवाद के विरुद्ध जागरण बडी तेजी से हुआ जिससे नवीन राष्ट्रो का उपाय हुआ। इन राष्ट्रो मे उपनिवेशवाद के अन्त मे सहायक रहे कारण निम्न है–

1.4.1 पश्चिमी शिक्षा

उपनिवेशों मे रहने वाले लोग पश्चिमी शिक्षा द्वारा स्वतंत्रता एवं बन्धुत्व की भावना से परिचित हुये। उनमे स्वाभिमान का बीज जागा और उन्होने उपनिवेशवाद के खत्मे के लिए बिगुल बजाया। पश्चिमी शिक्षा द्वारा उपनिवेशों के लोग

यूरोपीय शाक्तियो जैसे– ब्रिटेन, फ्रांस आदि की मानसिकता की बेहतर तरीफे से समझ सके। भारत के महात्मा गाँधी एवं पं0 जवाहर लाल नेहरु जैसे बडे स्वधीनता के नेता भी पश्चिमी शिक्षा प्राप्त थे।

1.4.2 आद्युनिक तकनीक एवं नई संचार व्यवस्था

पश्चिमी शिक्षा की तरह उपनिवेशवादी हित साधक योजना और को पूरा करने के लिये आद्युनिक तकनीक अपनाने को विवश थे। टेलीफोन डाक व रेलवे जैसी सुविधये जब उपनिवेशो मे शुरु की गयी तो वहाँ की जनता को ये बहुत आसानी से समझ आ गया कि वो यूरोपीय शक्तियो और अमेरिका से बहुत पीछे है। इसके अलावा वे यह भी समझ गये कि पश्चिमी राष्ट्र ही उनके शोषण एवं पिछडेपन के लिये उत्तरदायी है। अतः उन्हे यदि विश्व रातनीति मे अपनी सहभागिता जतानी है तो पहले उन्हे स्वावलम्बी बनना होगा जिसके लिये उन्हे औपनिवेशिक राष्ट्रो से मुक्त होना होगा। अतः नव जागरण का प्रारम्भ हुआ।

1.4.3 पारम्परिक उपनिवेशवादी ताकतो का क्षय

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पारम्परिक उपनिवेशवादी ताकतो का क्षय हो गया था। इटली और जर्मनी हार गये थे। जबकि ब्रिटेन और फ्रांस तीसरी श्रेणी के राष्ट्र बन गए थे अब उनके लिए यह सम्भव नही था कि वो लम्बे समय तक अपने देश से दूर एशिया और अफ्रीका मे अपने साम्राज्य को सम्भाल पाते।

1.4.4 संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा अपनायी गई दोहरी नीति

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका महाशक्ति के रुप मे ..... हुआ। उसने उपनिवेशवाद के सम्बन्ध मे दोहरी नीति अपनायी एक ओर तो ब्रिटेन, फ्रांस आदि उपनिवेशवादी शक्तियो को आश्रय दिया और दूसरी ओर उपनिवेशो की जनता के मन मे भी यह बात बैठायी कि अमेरिका उनके स्वाधीनता संग्राम का समर्थक एवं उपनिवेशवाद का विरोधी है। अमेरिका ने अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए उपनिवेशो मे होने वाले जागरण का कभी खुलकर विरोध नही किया ..... इस जागरण का अपने हित मे प्रयोग करने का पूरा प्रयास किया। जिससे इन देशो मे राष्ट्रवादी भावनाएँ लगातार बढती गई और नव जागरण का दौर शुरु हो गया।

1.4.5 राष्ट्रवाद का प्रभाव

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ने भी उपनिवेशवाद के अन्त मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। कुछ विचारको के अनुसार इन उपनिवेशो मे हुआ जागरण राष्ट्रवाद का ठीक दूसरा नाम है टायनबी के शब्दो मे पश्चिम के प्रभाव ने अफ्रोएशियाई लोगो को एक विचार ,एक आदर्श और एक आशा प्रदान की तथा उनके मस्तिष्क मे इस बात को दृढ आधार प्रदान किया कि अच्छे जीवन के लिए परिवर्तन की सम्भावना है। द्वितीय विष्व युद्ध के दौरान जापानियो ने एशिया ,एशिया वासियो के लिये का

नारा देकर साम्राज्यवादी शक्तियो के विरुद्ध एशियाई राष्ट्रवाद का उद्घोण किया। अफ्रीकी राष्ट्रवाद बाह्य तत्वो जैसे– अमेरिका, रुस, भारत एवं साम्यवादी चीन की

घटनाओ से प्रभावित था।इस प्रकार राष्ट्रवाद की भावनाये औपनिवेशिक शोशको के विरुद्ध स्वतंत्र अस्मिता हेतु जन जागरण प्रारम्भ करने मे अपना योगदान दिया।

1.4.6 सोवियत कांति का प्रभाव

सोवियत कांति ने उपनिवेशवाद की समाप्ति को प्रभावित किया । रुसी कांति के नेता लेनिन ट्रोटस्की आदि सर्वहारा वर्ग की अन्तर्राष्ट्रीय एकता मे विश्वास रखते थे। वे साम्राज्यवाद को पूँजीवाद थी अंतिम अवस्था मानते थे। उन्होने पूँजीवाद के उन्मूलन के लिये वर्ग संघर्श बताया। अतः उपनिवेशवाद से उनका विरोध स्वाभाविक था। रुस मे सत्ता ग्रहण करने के पश्चात् कॉमिटर्न की स्थापना की गई जिसका एक मूल लक्ष्य अफ्रीका और एशिया मे शांति स्थापित करना था। इसी कम मे1927 मे ब्रुसेल्स मे शोषित उत्पीडित राष्ट्रो का सर्वप्रथम ट सम्मेलन आयोजित किया गया।

1.4.7 द्विध्रुवीय विश्व व्यवस्था का प्रारम्भ एवं महाशक्तियो के मध्य सैद्धान्तिक गुटबन्दी

युद्ध के बाद द्विध्रुवीय विश्व व्यवस्था का प्रारम्भ तथा संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ जैसी महाशाक्तियो के बीच गुटबन्दी ने एशिया एवं अफ्रीका मे मुक्ति आन्दोलन की मति को तीव्र कर दिया। दोनो शाक्तियाँ अपने–अपने निहित स्वार्थो को भली–भॉति समझ रही थी। अतः दोनो ने स्वाधीनता आन्दोलनो को प्ररणा दी। उपनिवेशोके लोग अब अपने राजनीतिक तथा सामाजिक महत्व को समझने लगे थे और उन्होने औपनिवेशवादी ताकतो के विरुद्ध मुक्ति का बिल्कुल बजाया और अन्ततः निर्णायक विजय प्राप्त की।

इस प्रकार विभिन्न कारणो से उपनिवेशो मे साम्राज्यवाद के विरुद्ध अभूतपूर्व जागरण हुआ।

बोध प्रश्न –2

1. उपनिवेशवाद के अन्त के विषय मे क्या जानते है? संक्षेप मे लिखे।
2. उपनिवेशवाद का अन्त करने मे पश्चिमी शिक्षा की क्या भूमिका रही?
3. राष्ट्रवाद का उदय उपनिवेशवाद का अन्त करने मे किस प्रकार सहायक है?

1.5 उपनिवेशो का विश्व राजनिति पर प्रभाव

उपनिवेशो के एक के बाद एक स्वाधीन होने की प्रकिया ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर बडा निर्णायक एवं युगान्तकारी प्रभाव डाला इन शब्दो की स्वाधीनता बीसवीं शताब्दी की ही नही बल्कि समूचे विश्व इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। हाफमैन के अनुसार इस शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण घटना विश्व की दो तिहाई जनता का स्वाधीनता प्राप्त करना है। उपनिवेशो की जनता की स्थिति मे और यूरोप के साथ उनके सम्बन्धो मे परिवर्तन नवयुग के आगमन का सुनिश्चित

संकेत था। वास्तव मे उपनिवेशो के विश्व राजनीति पर प्रभाव का विश्लेषण निम्न प्रकार किया जा सकता है–

1.5.1 साम्राज्यवाद एवं उपनिवेश का अन्त

उपनिवेशो मे विभिन्न पूर्व लिखित कारणो से जो अभूतपूर्व जन जागरण हुआ उसने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से उपनिवेशवाद का पूर्णतः सफाया कर दिया। साम्राज्यवादी ने सर्वत्र फूट डालो और राज करो की निति का अनुसरण किया और बुरी तरह से उपनिवेशो को जनता का आर्थिक शोषण एवं उत्पीडन किया। अतः पराधीन होने के कारण ये उपनिवेश सदियो तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे कोई विशेष भूमिका नही निभा सके किन्तु ..... काल मे बदलते हुये अन्तर्राष्ट्रीय घटना चक्र ने इनके महत्व को पुनः उजागर कर दिया और विष्व राजनीति के पटल पर इनकी उपेक्षा करना असम्भव हो गया।

1.5.2 तीसरी शक्ति का उदय

विश्व की द्विध्रुवीय व्यवस्था मे दोनो महाशक्तियाँ प्राकृतिक सेसाधनो से भर–पूर उपनिवेशो का अपने–अपने हितो मे प्रयोग करना चाहती थी। अतः काफी सोच–विचार कर उपनिवेशो की जनता ने विश्व की इस द्विध्रुवीय व्यवस्था को नकार दिया। वास्तव मे ये राष्ट्र न तो साम्यवाद के अन्धे भक्त बने और न ही अमेरिकी पूँजीवाद के उपासक । इन्होने दोनो ही गुटो से अलग रहने की नीति बनायी जिसे गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। भारत के पं0 जवाहर लाल नेहरु मिस्त्र के कर्नल नासिर एवं यूगोस्लोवाकिया के मार्शल टीटो इस नीति के कुशल शिल्पी के रूप सामने आये और उपनिवेशो की जनता को एक नवीन दिषा प्रदान की । इस गुटनिरपेक्ष की नीति का विश्व राजनीति पर गुणात्मक प्रभाव पडा।

1.5.3 संयुक्त राष्ट्र संघ मे नये मुक्त हुये देशो का प्रभाव

उपनिवेशवाद के अन्त से नये मंक्त हुये देषो का संयुक्त राष्ट्र संघ पर व्यापक प्रभाव हुआ और महासभा मे उनका बहुमत हो गया। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के समय संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्य संस्था 51 थी और अब 166 से अधिक सदस्य संयुक्त राष्ट्र के सदस्य है। इस प्रकार ये नवोदित राष्ट्र अगर चाहें तो अपने दम पर महासभा मे प्रस्ताव पारित कराने मे अपनी भुमिका निभा सकते है।

इस प्रकार हम कह सकते हे कि उपनिवेशवाद से मुक्त हुये राष्ट्र न अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर व्यापक प्रभाव डला है और विश्व राजनीति का केन्द्र यूरोप से हारकर एशिया एवं अफ्रीका के सुदूर स्थानो तक पहुँच गया है।

बोध प्रश्न–3

1. विश्व की द्विध्रुवीय व्यवस्था मे तीसरी शक्ति के उदय से क्या प्रभाव पडा है?

2. औपनिवेशवाद से मुक्त हुये देशो ने संयुक्त राष्ट्र संघ को किस प्रकार प्रभावित किया?

1.6 सारांश

विश्व के लगभग समस्त प्रमुख देशो ने चाहे वह कच्चे माल की आवश्यकता के लिये हो या औद्योगिक क्रांति के फलस्वरुप हुये अतिरिक्त उत्पादन के लिये बाजार .... हो या अतिरिक्त पूँजी को ज्यादा लाभ के लिये निवेश करना हो या सस्ते मजदूरो को प्राप्त करना हो विश्व के अविकसित क्षेत्रो पर अपना राजनैतिक एवं आर्थिक नियंत्रण स्थापित किया। लेकिन बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे इन क्षेत्रो मे नयी चेतना का संचार हुआ और उन्होने अपने आपको इन बडे राष्ट्रो के नियंत्रण से मुक्त किया। फलस्वरुप सम्पूर्ण विश्व का नक्शा ही बदल गया। विश्व के पूँजीवाद और समाजवाद के दो ध्रुवो के बीच एक नया आयाम विकसित हुआ और ... राष्ट्र इन दोनो ही ध्रुवो से नही जुडना चाहते थे उन्होने मिल कर गुटनिरपेक्ष आन्दोलन चलाया। इस प्रकार उपनिवेशवाद के अन्त से विश्व के कई छोटे–बडे राष्ट्रो को अपना खोया हुआ गौरव और सम्मान प्राप्त हुआ।

1.7 शब्दावली

प्रतिस्पर्द्धा	–	प्रतियोगिता
आधिपत्य	–	अधिकार
अभ्युदय	–	उदय
क्षरण	–	धीरे–धीरे अन्त होना

1.8 बोध प्रश्नो के उत्तर

1. बोध प्रश्नो के उत्तर

1. देखे 1.1
2. देखे भाग 1.2.1
3. देखे भाग 1.2.3 (3)

2. बोध प्रश्नो के उत्तर

1. देखे भाग 1.3
2. देखे भाग 1.4.1
3. देखे भाग 1.4.5

3. बोध प्रश्नो के उत्तर

1. देखे भाग 1.5.2
2. देखे भाग 1.5.3

इकाई–2

युद्धोत्तर संस्थाएँ

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 राष्ट्रसंघ

2.2.1 राष्ट्रसंघ के उद्देश्य

2.2.2 राष्ट्रसंघ का संगठन

2.2.3 राष्ट्रसंघ के कार्य

2.3 संयुक्त राष्ट्र संघ

2.3.1 संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य

2.3.2 संयुक्त राष्ट्रसंघ का संगठन

2.3.3 संयुक्त राष्ट्रसंघ की उपलब्धिया

2.3.4 संयुक्त राष्ट्रसंघ का महत्व

2.4 गुट निरपेक्ष आन्दोलन

2.4.1 गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के आधार तत्व

2.4.2 गुटनिरपेक्षता की विशेषताएँ

2.4.3 गुट निरपेक्ष आन्दोलन की उपलब्धियॉं

2.5 नाटो

2.5.1 नाटो के उद्देश्य

2.5.2 नाटो का संगठन

2.6 दक्षिण पूर्वी एशिया संधि संगठन (सीटो)

2.7 दक्षिण पूर्वी एशिया के देशो का संगठन (आसियान)

3.8 प्रादेशिक सहयोग के लिए दक्षिण एशियाई संघ (सार्क)

2.8.1 सार्क के मुख्य उद्देश्य

2.8.2 संगठनात्मक ढांचा

2.9 सारांश

2.10 शब्दावली

2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम जानेगें

- ❖ राष्ट्र संघ के वारे में
- ❖ संयुक्त राष्ट्रसंघ व इसकी महत्ता के बारे में
- ❖ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन, नाटो, सीटो, सार्क, आसियान आदि विभिन्न संगठनों के बारे में।
- ❖ इन सभी संगठनों द्वारा विश्व शान्ति में दिये गये उनके योगदान के वारे में।

2.1 प्रस्तावना

प्रथम व द्वितीय विश्व युद्व में हुई जान माल की हानि तथा युद्व की विभीषिका को देखते हुये ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता महसूस की गयी। जो विश्व युद्व के भय से मुक्त करा सके एवं विश्व में शान्ति स्थापित करने में अपना सहयोग दे सके। इसके लिए मुख्य रूप से प्रथम विश्व युद्व के बाद राष्टसंघ एवं द्वितीय विश्व युद्व के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गयी। इसके अलावा तीसरी दुनिया के देशों ने अपना एक नया रास्ता चुना जिसे गुट निरपेक्ष आन्दोलन का नाम दिया इन संस्थाओं के अलावा अलग–अलग समय समय अलग– अलग परिस्थितियों के अनुसार नाटो, सीटो, आसियान, तथा सार्क जैसे विभिन्न संगठन बने जिन्होने विश्व शान्ति बनाये रखने में अपना अहम योगदान दिया। इन सभी संगठनों ने न केवल देशों में जनता की भलाई के लिए अनेको सामाजिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में बढ–चढ कर हिस्सा लिया। यूनेसको (UNESCO) यूनीसेफ (UNICEF) विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O) आदि अनेको ऐसी संस्थायें है। जो गरीब एवं पिछडे देशों के दूर–दराज के इलाको तक जाकर अपनी सेवायें दे रही है। इन सभी संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य विश्व को भय एवं तनाव से मुक्त एक बेहतर स्थान बनाना है।

2.2 राष्ट्रसंघ

राष्ट्रसंघ की स्थापना 10 जनवरी 1920 को की गई। इसकी स्थापना का बहुत कुछ श्रेय अमेरिका के राष्ट्रपति बुडरो विल्सन को जाता है। किन्तु यह बडी विडम्बना है कि स्वयं उसके देश संयुक्त राज्य अमेरिका ने राष्ट्रसंघ का सदस्य बनने से इन्कार कर दिया। राष्ट्रसंघ के संविधान में कुल 26 धाराएँ थी।

2.2.1 राष्ट्रसंघ के उद्देश्य

सविधान की प्रस्तावना में राष्ट्रसंघ की स्थापना के निम्न उद्देश्य बताये गये थे।

1. भविष्य में युद्ध की सम्भावनाओं को समाप्त करना।
2. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना में वृद्धि करना।
3. अन्तर्राष्टीय स्तर पर शान्ति, व्यवस्था व सुरक्षा की भावना उत्पन्न करना।
4. पेरिस शान्ति सम्मेलन में सम्पन्न की गयी सन्धियों के निर्णयों को लागू कराना।

2.2.2 राष्ट्रसंघ का संगठन

राष्ट्रसंघ के उददेश्यों को पूरा करने के लिए निम्नलिखित मुख्य अंगों का गठन किया गया।

1. **असेम्बली (साधारण सभा)** :– यह राष्ट्रसंघ का मुख्य अंग था। अरोम्बली में प्रत्येक देश के अधिकतम तीन प्रतिनिधि हो सकते थे किन्तु प्रत्येक देश को केवल एक मत देने का अधिकार था। इसकी बैठक वर्ष में एक बार होती थी। बैठक में अधिकांश निर्णय सर्वसम्मति से लिये जाते थे। विश्व शान्ति से सम्बन्धित विषयों पर विचार विमर्श करना बजट को स्वीकार करना, काउन्सिलं के अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के जजों की नियुक्ति करना असेम्बली के प्रमुख कार्य थे।

2. **काउन्सिल (परिषद)** :– राष्ट्र संघ की कार्यकारणी को काउन्सिल कहा जाता था। यह नौ सदस्यों की समिति थी। जिसमें पॉच स्थायी तथा 4 अस्थायी सदस्य थे। अमेरिका, ग्रेट, ब्रिटेन, फ्रान्स इटली तथा जापान स्थायी सदस्य थे किन्तु अमेरिका द्वारा राष्ट्रसंघ की सदस्यता स्वीकार न करने के कारण स्थायी सदस्यों की संख्या चार ही रह गयी थी। काउन्सिल के प्रमुख कार्य निम्न थे।

1. साधारण सभा के प्रस्तावों को कियानवित करना।
2. कुछ विशिष्ट प्रदेशों जैसे डेजिंग, सार आदि का प्रशासन संभालना
3. मैण्डेट सम्बन्धी कार्य
4. महासचिव तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारियों की नियुक्ति
5. अल्पसंख्यकों का हित
6. अन्तर्राष्ट्रिय विवादों का निपटारा
7. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनाये रखने के लिए सैनिक काग्रवाही का निश्चय करना

3. **सचिवालय** :– इसका मुख्य कार्यालय जिनेवा में था इसके सर्वोच्च अधिकारी को सेक्रेटरी जनरल कहा जाता था। सचिवालय में कुल 11 विभाग थे। जिसमें विभिन्न देशों के लगभग 750 लोग काम करते थे। इसका मुख्य कार्य असेम्बली व काउन्सिल की बैठक में विचाराधीन मामलों की सूची तैयार करना आवश्यक दस्तावेज तैयार करना तथा समझौते व सन्धियों के प्रकाशन की व्यवस्था करना था।

4. **स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय :–** इस न्यायालय की स्थापना 20 दिसम्बर 1920 को हेग में की गयी थी। इसका मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय संधियों व समझौतों के अर्थ व

उद्देश्य की व्यवस्था करना, विभिन्न राज्यों के पारस्परिक विवादों पर कानूनी सलाह देना राष्ट्र संघ के संविधान की व्यवस्था करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के विषय में असेम्बली व काउन्सिल को सलाह देना था।

5. **अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन :–** इसका मुख्यालय जिनेवा में था। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य श्रमिको की स्थिति को सुधारना तथा पुरूषों, महिलाओं एवं बच्चों के लिऐ कार्य करने की उपयुक्त व मानवीय दशाओं को उपलब्ध कराना था।

2.2.3 राष्ट्रसंघ के कार्य

राष्ट्र सघ के कार्य निम्न थे।

1. प्रशासनिक कार्य
2. मैण्डेट सम्बन्धी कार्य
3. अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा सम्बन्धों कार्य
4. आर्थिक तथा सामाजिक कार्य
5. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा सम्बन्धी कार्य

प्रारम्भ में राष्ट्रसंघ ने कुछ क्षेत्रों में महान सफलता हासिल की किन्तु बाद में सदस्य राष्ट्रो के निहित स्वार्थो के कारण उसे आधार भूत उद्देश्यों में सफलता हासिल नही हो सकी। राष्ट्रसंघ का इतिहास वास्तव में सफलता एवं असफलता के मध्य सर्घष का इतिहास है। द्वितीय विश्व युद्व का होना राष्ट्रसंघ की पूर्णतया असफलता ही थी।

बोध प्रश्न :–1

1. राष्ट्र संघ का सचिवालय स्थित है।

   (1) हेग (2) जेनेवा (3) न्यूयार्क (4) लन्दन

2. अन्तर्राष्टीय न्यायालय की स्थापना हुई।

   (1) 1918 (2) 1919 (3) 120 (4) 1921

3. राष्ट्र संघ के कार्य कौन कौन से है।

2.3 संयुक्त राष्ट्रसंघ

प्रथम महायुद्व की तुलना में द्वितीय विश्व युद्व अधिक विनाशकारी सिद्व हुआ। यघपि राष्ट्रसंघ असफल हो गया था। लेकिन यूरोप के राजनीतिज्ञ हतोत्साहित नही थे। 26 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने 1942 में अटलांटिक चार्टर के सिद्वान्तों को स्वीकार किया। जिसमें कहा गया कि युद्व की समाप्ति के बाद एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की जाये। जिससे संसार में शान्ति अक्षुण्ण बनी रहे। 1945 के सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के चार्टर को अन्तिम रूप

प्रदान किया गया। और 24 अक्टुवर 1945 को यह चार्टर कियानवित कर दिया गया। जिससे संयुक्त राष्ट्रसंघ का गठन हुआ। संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर काफी विस्तृत है जिसमें 10 हजार शब्द ,111 धाराऐं तथा 19 अध्याय है।

2.3.1संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य

सयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के प्रथम अनुच्छेद में ही इसके उद्देश्यों का वर्णन है। इसके उद्देश्य निम्न है।

1. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की रक्षा
2. मानव अधिकारो की रक्षा
3. विश्व का सामाजिक एवं आर्थिक विकास
4. अन्तर्राष्ट्रीय विधि को शक्तिशाली बनाना
5. प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का विकास करना
6. किसी भी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना

2.3.2 संयुक्त राष्ट्रसंघ का गठन

1. **महासभा** :– सयुक्त राष्ट्रसंघ की व्यवस्थापिका सभा कही जा सकती है। इसका प्रथम अधिवेशन 10 जनवरी 1946 को हुआ था। इसे विभिन्न राष्ट्रों की संसद भी कहा जा सकता है। इसमें प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के 5–5 प्रतिनिधि होते है। किन्तु वोट केवल 01 ही देसकता है। प्रतिवर्ष सितम्बर महीने में इसकी सामान्य बैठक होती है। किन्तु सुरक्षा परिषद के अनुरोध पर महासचिव इसका विशेष अधिवेशन बुला सकता है। इसके कार्यो को चार भागों में बॉटा जा सकता है।
    1. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा सम्बन्धी कार्य
    2. निर्वाचन सम्बन्धी कार्य
    3. निरीक्षण सम्बन्धी कार्य
    4. विविध कार्य जिसमें आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, कार्य आते है।

2. **सुरक्षा परिषद** :– यह संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्यकारी संस्था है।इसमें प्रारम्भ में 5 स्थायी तथा 6 अस्थायी सदस्य होते थे परन्तु अब अस्थायी सदस्यों की संख्या बढकर 10 हो गयी है। चीन, फ्रांन्स, रूस, ग्रेट ब्रेटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका इसके स्थायी सदस्य है। अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन महासभा अपने दो तिहाई बहुमत से दो वर्ष की अवधि के लिये करती है। सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार प्राप्त है। सुरक्षा परिषद का प्रधानकार्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा की व्यवस्था करना है।

3. **आर्थिक एवं सामाजिक परिषद** :– इसमें मूलतः महासभा द्वारा निर्वाचित 18 सदस्य होते थे। जिसमें से एक तिहाई सदस्य प्रतिवर्ष पदमुक्त होते है। यह पूरी तरह महासभा के प्रति उत्तरदायी होती है। इस संस्था का मूल सिद्वान्त जीवन मूल्यों

को ऊँचा उठाना, सब के लिये रोजगार की व्यवस्था करना, सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति

करना और मानव अधिकारो एवं आधार भूत स्वतंत्रताओं के लिये आदर भावना को प्रोत्साहित करना है।

4. संरक्षण परिषद् :– यह परिषद् उपनिवेशों के प्रशासन की देखभाल करती है। इसका मुख्य कार्य अपने सुपुर्द किये गये प्रदेशों की जनता के हितो की रक्षा करना तथा उन देशों के प्रशासन मे महासभा के कार्यो की सहायता करना है जिनका संयुक्त राष्ट्र संरक्षक नियुक्त करता है।

5. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय :– यह संयुक्त राष्ट्रसंघ का न्यायिक विभाग है। इसमें महासभा और सुरक्षा परिद द्वारा नौ वर्ष के लिए निर्वाचित पंद्रह न्यायाधीश होते है। इसका मुख्य कार्य कानूनी कठिनाइयों को सुलझाना है जो विभिन्न राष्ट्रों के बीच उत्पन्न हो जाती है।

6. सचिवालय :– इसमें एक महासचिव तथा आवश्यकतानुसार अन्य कर्मचारियों की व्यवस्था होती है। महासचिव की नियुक्ति सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर महासभा करती है। महासचिव संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रधान प्रशाकीय अधिकारी होता है। संयुक्त राष्ट्र के प्रथम महा सचिव त्रिग्वेली थे। महासचिव को प्रति वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रगति रिपोर्ट महासभा के समक्ष प्रस्तुत करनी होती है। संयुक्त राष्ट्र का मुख्यालय न्यूयार्क में है।

2.3.3 संयुक्त राष्ट्रसंघ की उपलब्धियॉं

राजनैतिक क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ ने कई उपलब्धियॉं हासिल की है। जैसे उसने ईरान की समस्या सुलझायी। सीरिया और लेबनान से फ्रान्स व इग्लैंड की सेनायं हटवाई, इण्डोनेशिया की समस्या को सुलझाया, पैलस्टाइन को तीन भाग

1. अरब राज्य
2. यहूदी राज्य
3. जेरूसलम का राज्य में बॉटा

भारत व पाकिस्तान के मध्य युद्व का अन्त करवाया हालांकि वह कश्मीर समस्या को नही सुलझा पाया, तथा कोरिया को समस्या को समाप्त कराया।

आर्थिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य एवं संचार के क्षेत्र में भी संयुक्त राष्ट्र संघ ने कई उपलब्धियॉं हॉसिल की है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रय संगठन (I.L.O.) खाद्य एवं कृषि संगठन (F.A.O.) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I.M.F.) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (I.F.C.) विश ऋतु विज्ञान संगठन, अर्न्तराष्ट्रीय दूर संचार संघ, संयुक्त राष्ट्र शैक्षिणक वैज्ञानिक तथा सास्कृतिक संगठन (UNESCO) संयुक्त राष्ट्र अर्न्तराष्ट्रीय बाल आपातकालीन कोष (UNICEF) विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) जैसे अनेको संगठनों की मदद से संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व में लोगों का जीवन स्तर सुधारने की दिशा मे निरन्तर प्रयासरत है।

2.3.4 संयुक्त राष्ट्र संघ का महत्व

संयुक्त राष्ट्र संघ ने न केवल राजनीतिक समस्याओं को शान्तिपूर्वक ढंग से हल करने का प्रयास किया है, अपितु सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, स्वास्थ्य एवं कल्याण आदि प्रत्येक क्षेत्र में मानव जाति के उत्थान का संकल्प लेकर कई महत्वपूर्ण योजनाएँ प्रारम्भ की। जिसमें उसे निसन्देह सफलता हासिल हुई है।

अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को उग्र होने से रोकने के लये भी उसने एक सेफ्टी वाल्व की तरह काम किया है। इसके अलावा साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद जैसी जटिल समस्याओं का जटिल समस्यायों का उन्मूलन करने में भी सयुक्त राष्ट्र संघ ने निर्वावाद रूप से सफलता पायी है। कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ राष्ट्रसंघ का ही सुधरा हुआ रूप है।

बोध प्रश्न–2

1. सुरक्षा परिषद मे स्थायी सदस्यो की संख्या कितनी है।

   (1) 3 (2) 4

   (3) 5 (4) 6

2. संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन कब हुआ।

   (1) 24 अक्टूबर 1945 (2) 25 अक्टूबर 1945

   (3) 24 अक्टूबर 1946 (4) 25 अक्टूबर 1946

3. संयुक्त राष्ट्र संघ के उददेय कौन कौन से है।

4. संयुक्त राष्ट्र संघ की महासया का वर्ण करे।

5. संयुक्त राष्ट्र संघ का महत्व बताइए।

2.4 गुटनिरपेक्ष आन्दोलन (Non-aligned movement- NAM)

1961 मे बेलग्रेड मे हुए पहले शिखर सम्मेलन मे पं0 जवाहर लाल नेहरू ने गुटनिरपेक्षता शब्द को प्रचलित किया। नेहरू नासिर और टीटो को इसके प्रवर्तको के रूप मे जाना जाता है। गुटनिरपेक्षता शब्द का अर्थ कुछ लोग तटस्थता बताते और कुछ लोग "दोनो गुटो से समान दूरी रखना और दोनो से पृथक रहना" है। परन्तु वास्तव मे इसका अर्थ है स्वतन्त्रता और एक दूसरे के मामले मे अहस्तक्षेप । गुटनिरपेक्ष आन्दोलन मे वे राष्ट्र है जो अपनी स्वतन्त्र नीति रखते हुए कुछ सिद्वान्तो के लिए एक साथ खडे होने को तत्पर है।

2.4.1 गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के आधार तत्व

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का स्पष्ट अभिप्राय है किसी भी देश के साथ सैनिक गुटबन्दी मे शामिल न होना और राष्ट्रीय हित को ध्यान मे रखते हुए न्यायोचित पक्ष मे अपनी विदेश नीति का संचालन करना। इसके पॉच आधार है।

1. सदस्य देश स्वतन्त्र नीति पर चलता हो।
2. सदस्य देश उपनिवेशवाद का विरोध करता हो।
3. सदस्य देश किसी सैनिक गुट का सदस्य न हो।
4. सदस्य देशने किसी के साथ द्विपक्षीय समझौता न किया हो।
5. सदस्य देश ने किसी बडी ताकत को अपने क्षेत्र मे सैनिक अड्डा बनाने की इजाजत न दी हो।

2.4.2 गुटनिरपेक्षता की विशेषताएँ

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की निम्न विशेषताएँ है।

1. सकारात्मकता, गतिशीशता एंव विश्व समस्याओ पर स्वतन्त्र ढंग से व्यवहार करना इसकी प्रमुख विशेषता है।
2. यह साम्राज्यवाद एंव उपनिवेशवाद का घोर विरोधी है।
3. युद्व को रोकना तथा निःशत्रीकरण इसकी प्राथमिकता है।
4. स्वंय का आर्थिक विकास करना इसका चरम लक्ष्य है।
5. यह विश्व शान्ति के समर्थक है।
6. यह आन्दोलन सैनिक गुटबन्दियो का विरोध करता है। और जिओ और जीनो दो नीति का पालन करता है।
7. यह संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रबल समर्थक है।

2.4.3 गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की उपलब्धियॉ

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के देशो ने विश्व की द्विध्रुवीय व्यवस्था को नकार कर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम किया है और इस प्रकार विश्व को खेमेबन्दी के चंगुल से बचाया है। उन्होने मुक्ति संग्रामो का समर्थन करके अफ्रो – एशिआई? लेटिनअमेरिकी और केरेबियन देशों को स्वतन्त्रता दिलाने मे मदद की है। उन्होने संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन किया है एंव छोटे राष्ट्रो मे राष्ट्रवाद की भावना की रक्षा एंव स्वतन्त्र विदेश नीति निर्माण को अपना पूरा प्रोत्साहन दिया है। उन्होने विश्व मे उपनिवेशवाद का विरोध किया है एंव आपसी सहयोग से आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त किया है। उनके कार्यो के कारण ही उनकी सदस्य संख्या मे आशातीत वृद्वि हुई है। और महाशक्तियो ने भी उनके महत्व को स्वीकार किया है। लेकिन फिर भी गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अपनी कमजोरियो के कारण वो स्थान विश्व मे हासिल नही करपाया है जिसकी उससे उपेक्षा थी। सैनिक सन्धियों से जुडे राष्ट्रों एंव महाशक्तियो की खेमेबन्दी का गुटनिरपेक्ष आन्दोलन मे प्रवेश हो गया है। जो इसकी मूल भावना के विपरीत है।

2.5 नाटो – (N.A.T.O) North atlantic treatyorganization

द्वितीय विश्व युद्व के बाद स्थापित किये गये प्रादेशिक संगठनो मे सबसे महत्वपूर्ण और विवादास्पद संगठन नाटो है। अपनी पृथक्तावादी नीति के परित्याग के बाद सामूहिक आत्मरक्षा के लिए 4 अप्रैल 1949 को संयुक्त राज्य अमेरिका ने बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, फ्रांस, आइसलैण्ड, इटली, लक्जमबर्ग, हॉलैण्ड , पुर्तगाल नार्वे और ग्रेट ब्रिटेन के साथ अटलांटिक ट्रीटी पर हस्ताक्षर किये थे। 1951 मे ग्रीक और टर्की तथा 9 मई 1955 को पश्चिमी जर्मनी भी नाटो के सदस्य बन गये। 30 मई 1982 को स्पेन नाटो का 16 वॉ सदस्य बन गया।

2.5.1 नाटो के उददेश्य

नाटो के उददेश्य साम्यवादी रूस के प्रसार को रोकना है। यह प्रधानतः एक सुरक्षात्मक संगठन है। और इसके पॉचवे अनुच्छेद मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि दल इस बात मे एकमत है कि यूरोप अथवा उत्तरी अमरीका मे उनमे से किसी एक अथवा अधिक के विरूद्व आक्रमण सभी के विरूद्व आक्रमण माना जायेगा। परन्तु सन्धि मे इस बात पर भी बल दिया गया है। कि नाटो एक सुरक्षा संगठन मात्र नही है। वरन इसका उददेश्य अटलांटिक क्षेत्र के सामान्य कल्याण की अभिवृद्वि करना भी है।

2.5.2 नाटो का संगठन

नाटो की सर्वोच्च नीति निर्धारक संस्था उत्तरी अटलांटिक परिषद है। उसकी सहायता के लिए एक सैनिक प्रतिनिधि समिति और एक स्टेन्डिग ग्रुप होता है। स्टेन्डिग ग्रुप ब्रिटेन , फ्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका के सेनाध्यक्षो या उनके प्रतिनिधियों से मिलकर बनता है। नाटो के अन्तर्गत उसके सदस्य राज्यो की एक संयुक्त सेना का निर्माण किया गया है। नाटो का एक सचिवालय भी है जिसका अध्यक्ष एक महामन्त्री होता है।

पिछले कुछ वर्षो मे नाटो के स्वरूप और प्रकृति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये है। अमेरिका और रूस के बीच तथा पश्चिमी देशो और पूर्वी यूरोप के देशो के बीच बढते हुए सद्भाव ने नाटो की उपयोगिता को बहुत कम कर दिया है।

2.6 दक्षिणी पूर्वी एशिया सन्धि संगठन सा सीटो(S.E.A.T.O)

दक्षिणी पूर्वी एशिया मे अमेरिका की प्रेरणा से फिलीपाइन्स मे मनीला नामक स्थान पर एक सम्मेलन हुआ जिसके परिणास्वरूप 8 राष्ट्रो – संयुक्त राज्य अमेरिका ,ब्रिटेन , फ्रांस आस्ट्रेलिया , न्यूजीलैण्ड , पाकिस्तान ,फिलीपाइन्स तथा थाइलैण्ड ने 8 सितम्बर 1954 को दक्षिण पूर्वी एशिया सामूहिक सुरक्षा सन्धि पर हस्ताक्षर कर सीटो की स्थापना की। सीटो की स्थापना के द्वारा उपर्युक्त आठ राज्यो ने दक्षिणी पूर्वी एशिया मे सशस्त्र आक्रमण के सामूहिक प्रतिरोध की प्रतिज्ञा की। यह सन्धि 19 फरवरी 1955 को कार्यान्वित कर दी गयी। परन्तु सीटो के संगठन का अधिक विकास नही हुआ। व्यवहार मे सीटो कभी भी एक बहुत प्रभावशाली संगठन नही रहा और जुलाई 1977 मे इसे भंग कर दिया गया।

बोध प्रश्न–3

1. गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का प्रथम सम्मेलन 1961 मे किस शहर मे हुआ।

   (1) लग्रेड (2) हवाना

   (3) नई दिल्ली (4) काहिरा

2. नाटो की स्थापना हुई।

   (1) 1948 (2) 1949

   (3) 1951 (4) 1952

3. गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की विशेषतायें बताइये।

4. नाटो के उद्देश्य क्या थे।

2.7 दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों का संगठन (Association of south east asian nations)- ASEAN

अगस्त 1967 मे इण्डोनेशिया , मलेशिया , फिलीपीन्स , सिगांपुर और थाइलैण्ड के प्रतिनिधियों ने दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशो के संघ या एसियान की स्थापना की घोषणा की। ब्रुनेई 1884 मे इसका सदस्य बना। एसियान के उददेश्य थे , दक्षिणी पूर्वी एशिया के प्रदेश मे आर्थिक विकास , सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक उन्नति की गति को तीव्रतर करना तथा आर्थिक सामाजिक , सांस्कृतिक , वैज्ञानिक और प्रशासनिक क्षेत्रो मे सक्रिय सहयोग और पारस्परिक सहायता को बढावा देना तथा प्रादेशिक शान्ति ओर स्थिरता की स्थापना करना।

मलेशिया प्रधानमन्त्री तेंकू अब्दुल रजाक के अनुसार एसियान एक बिना विचार धारा का असैनिक अविरोधी समूह है। परन्तु इसे एक असाम्यवादी संगठन कहा जा सकता है। यह संगठन मुख्यतः आर्थिक है सैनिक नही।

एसियान का संगठन – एसियान मे निम्न संस्थाओ की व्यवस्था की गई है।

1. विदेश मन्त्रियो की वार्षिक वैठकें
2. एक स्थायी समिति
3. विशिष्ट विषयो पर विशेषज्ञों ओर अधिकारियो की तदर्थ ओर स्थायी समितियॉ।
4. प्रत्येक सदस्य देश मे एक राष्ट्रीय सचिवालय

एसियान का केन्द्रीय सचिवालय इण्डोनेशिया जकार्ता मे स्थित है। उसका अध्यक्ष एक महासचिव होता है।एशियान देशो के सम्बन्ध अमीरिका और पश्चिमी देशो से सामान्यतः मधुर रहे है। और उन्होने एसियान का स्वागत किया है। सोवियत संघ एसियान का कटु आलोचक है। चीन के साथ एसियान के समबन्ध सामान्य है जबकि भारत के साथ एसियान के सम्बन्ध मधुर नही है। सम्भवतः इसका कारण भारत सोवियत मैत्री है।

1967 मे स्थापना के समय एसियान की गतिविधियॉ परामर्शात्मक मात्र थी। परन्तु अब उसके पास उत्पादन सहभागिता, एक प्रादेशिक उदायगी यूनियन ,एक एसियान जहाजरानी सेवा और यूरोपीय आर्थिक समुदाय से मार्केटिंग समझौते पर संयुक्त वार्ता जैसी अनेक योजनाएँ है। हालांकि एसियान देशो मे अभी भी बहुत पारस्परिक विवाद और अन्तर्विरोध है। फिर भी यह एक सजीव प्रादेशिक संगठन है।

2.8 प्रादेशिक सहयोग के लिए दक्षिणी एशियाई देशो का संघ या सार्क–(SAARC)

साउथ एसियन एसोसियेशन फार रीजनल कोऑपरेशन या सार्क के बंगलादेश , भूटान ,भारत , मालद्वीप , नेपाल ,पाकिस्तान और श्रीलंका सदस्य है। यह एक क्षेत्रीय संगठन है जिसका उददेश्य सहयोग के कुछ स्वीकृत क्षेत्रो मे संयुक्त कार्यवाही द्वारा सदस्य राज्यो के आर्थिक और सामाजिक विकास की प्रकिया की गति को बढाना है। ढाका (बांगलादेश) मे 7–8 दिसमबर 1985 को सार्क का प्रथम शिखर सम्मेलन हुआ जिसमे घोषणा पत्र या चार्टर को स्वीकार करके सार्क की स्थापना की गई।

2.8.1 उददेश्य

सार्क के मुख्य उददेश्य है।

1. दक्षिण एशिया की जनता के कल्याण मे अभिवृद्वि करना उनके जीवन की गुणवत्ता को सुधारना।
2. प्रदेश के आर्थिक विकास सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक उत्थान की गति को तेज करना।
3. दक्षिण एशिया के देशो मे सामूहिक आत्म निर्भरता को विकसित और मजबूत करना।
4. एक दूसरे की समस्याओ को समझने मे पारस्परिक विश्वास और सूझवूझ से काम लेना।
5. अन्य विकासशील देशो से सहयोग में अभिवृद्वि करना।
6. अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर समान हित के विषयो पर पारस्परिक सहयोग को दृढ करना।
7. समान उददेश्य रखने वाले अन्तर्राष्ट्रीय और प्रादेशिक संगठनो से सहयोग करना।

2.8.2 संगठनात्मक ढॉचा

सार्क की सर्वोच्च सत्ता सरकारो या राज्य के अध्यक्षों मे निहित है जो सामान्यतः वर्ष मे एक बार बैठक करते है। दूसरा अंग मंत्रियो

की परिषद है। जो सदस्य राज्यो के विदेश मंत्रियो से मिलकर बनाती है। यह संघ की नीतियो को निर्धारित करती है , उसकी प्रगति की समीक्षा करती है तथा सहयोग के नवीन क्षेत्रो की खोज करती है। तीसरा अंग स्थायी समिति है जो सदस्य राज्यो के विदेश सचिवो से मिलकर बनती है। इसके अतिरिक्त 13 तकनीकि समितियॉ है। सार्क के सचिवालय का उदघाटन 16 जनवरी 1987 को नेपाल के काठमाडू मे किया गया। सचिवालय मे एक महासचिव, निदेशक और अन्य कर्मचारी होते है।

सार्क मे सभी स्तरो पर निर्णय सर्वसम्मति से लिये जाते है द्विपक्षीय और विवादास्पद विषयो पर विचार नही किया जाता है फिर भी अनेकबार सदस्य देशो विशेषकर पाकिस्तान और श्रीलंका ने सार्क की बैठको मे द्विपक्षीय विवादो को उठाने की कोशिश की है। जिसका भारत ने कडा विरोध किया है। फिर भी अपनी स्थापना से अब तक सार्क निरन्तर गतिमान है। जो एक प्रकार से इस बात की अभिव्यक्ति है कि दुर्बल होते हुए भी सहयोग करने के लिए आवश्यक राजनैतिक संकल्प सार्क के पास विद्यमान है।

बोध प्रश्न–4

1एसियान की स्थापना हुई।

1– 1965 2– 1966 3– 1967 4– 1968

1. सार्क का प्रथम शिखर सम्मेलन हुआ।

1– ढाका 2– नेपाल 3– बैगलौर 4– कराची

2. एसियन का केन्द्रीय सचिवालय स्थित है।

1– मलेशिया 2– इण्डोनेशिया 3– थाइलैण्ड 4– सिंगापुर

3. सार्क के प्रमुख उददेश्य कौन से है।

2.9 सारांश

आपसी वैमनस्य को कम करने एंव पारस्परिक मेल जोल बढाने को तथा विश्व मे शान्ति एंव सुरक्षा की भावना विकसित करने को विश्वयुद्वो के बाद अनेको सस्थाओ की स्थापना हुई। प्रथम विश्व युद्व के बाद बने राष्ट्र संघ के असफल हो जाने पर भी विश्व के राजनायिको ने हिम्मत नही हारी और द्वितीय विश्व युद्व के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन किया। जो आज भी सम्पूर्ण विश्व मे तनाव के स्तर को कम करने मे अपना उल्लेखनीय योगदान दे रहा है। उपनिवेश से मुक्त हुये देशो ने विश्व की द्विध्रुवीय व्यवस्था को नकारते हुए गुट निरपेक्ष आन्दोलन की स्थापना की। इसके अलावा कई प्रादेशिक संगठन जैसे नाटो, सीटो, असियान, व सार्क की भी

स्थापना हुई जो अपने अपने क्षेत्रो मे तनाव शैथिल्य के अलावा पारस्परिक सहयोग की भावना को बढा रहे है। इन सभी संगठनो या संस्थाओ का सामूहिक उददेश्य विश्व को तृतीय विश्व युद्व की विभीषिका से बचाना तथा आपसी सहयोग से पृथ्वी को मनुष्य के रहने के लिए एक बेहतर स्थान बनाना है।

2.10 शब्दावली

हतोत्साहित	– उत्साह के बिना
पृथकतावादी नीति	– अलग अलग रहने की नीति
परित्याग	– छोंड देना
वैमनस्य	– विरोध एंव घृणा

2.11बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न :–1

(1) 1– (×) 2– (√) 3– (×) 4– (×)

(2) 1– (×) 2– (×) 3– (√) 4– (×)

(3) देखे भाग 2.2.3

बोध प्रश्न :–2

(1) 1– (√) 2– (×) 3– (×) 4– (×)

(2) 1– (×) 2– (×) 3– (√) 4– (×)

(3) देखे भाग 2.3.1

(4) देखे भाग 2.3.2 – 1

(4) देखे भाग 2.3.4

बोध प्रश्न :–3

(1) 1– (√) 2– (×) 3– (×) 4– (×)

(2) 1– (×) 2– (√) 3– (×) 4– (×)

(3) देखे भाग 2.4.2

(3) देखे भाग 2.5.1

बोध प्रश्न :–4

(1) 1– (×) 2– (×) 3– (√) 4– (×)

(2) 1– (√) 2– (×) 3– (×) 4– (×)

(3) 1– (×) 2– (√) 3– (×) 4– (×)

(4) देखे भाग 2.8.1

इकाई 03 सोवियत साम्यवाद

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 नई आर्थिक नीति

3.3 लेनिन के बाद रूस

3.4 स्टालिन और रूस की प्रगति

3.4.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना

3.4.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना

3.5 संविधान

3.6 विदेश नीति

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 बोध प्रश्नो के उत्तर

3.0 उद्देश्य

1917 की रूसी क्रांन्ति के द्वारा रूस में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हुई थी। खण्ड तीन की तृतीय ईकाई में हमने महान विचारक लेनिन द्वारा स्थापित नवीन आर्थिक नीति का अध्ययन किया है। यहॉ हम विषय प्रवेश हेतु एक बार पुनः पढ़ेगे।

- लेनिन की नई आर्थिक नीति के बारे मे। इसके अलावा हम
- लेनिन के उत्तराधिकारियों के विषय में जानेगें।
- स्टालिन के द्वारा स्थापित पंचवर्षीय योजनाओ के बारे मे जानेगे।
- रूस के संविधान की विशेषताओं का अध्ययन करेगें। तथा
- क्रांन्ति के बाद रूस के विदेशो से सम्बन्धो के बारे मे जानेगें।

3.1 प्रस्तावना

क्रांन्ति के बाद 1918 मे रूस का नया संविधान बना और सोवियत समाजवादी गणतन्त्र की स्थापना हुई। रूस संघीय प्रणाली का राज्य बना जिसमें विभिन्न राष्ट्रीयताओं के लोग अलग अलग राज्यो मे संगठित होकर सोवियत संघ के सदस्य

बन गये। राज्य मे केबल साम्यवादी दल को ही मान्यता दी गई क्योंकी उसे ही सर्वहारा के हितो का पोषक माना गया। एक नय तरह का जनतन्त्र कायम हुआ जिसमे अनुशासन और शीर्ष नेताओ का नियन्त्रण अनिवार्य था। स्थानीय से केन्द्रीय स्तर तक योग्य पार्टी सदस्यों को ही जिम्मेदारी सौंपी गई। राज्य का ऐसा स्वरूप सामने आया जिससे मेहनतकश लोगो के हित पूरे हुए।

इस नई व्यवस्था का लक्ष्य था शोषण का अंत। इसके लिए जरूरी था कि उत्पादन के सभी साधनो पर राज्य का अधिकार हो। इसलिए जमीन, कल कारखाने बैंक आदि का राष्ट्रीयकरण कर दिया है। नियन्त्रण और संचालक के लिए एक उच्च आर्थिक आयोग की स्थापना की गई। इससे प्रारम्भ मे बहुत सी कठिनाइयाँ उठ खडी हुई। कामगारो को न अनुभव था न व्यापक स्तर पर उनमे समन्वय था। नतीजतन उत्पापदन कम कम होते होते रूक सा गया। राजकीय और विदेशी सहायता के बावजूद लोगो की आर्थिक दशा शोचनीय हो गई।

3.2 आर्थिक नीति (New Economic policy & N-E-P-)

नई आर्थिक नीति लागू करके लेनिन ने यह सिद्ध कर दिया कि वह सामाजिक चितन और व्यावहारिक राजनीति दौनो मे असाधारण दूरदर्शिता रखता है। उसने यह स्पष्ट समझ लिया कि तत्काल पूरी तरह समाजवादी व्यवस्था लागू करना सम्भव नही है। जब तक अपने ही देश की प्रारम्भिक समस्याएँ नही सुलझ जाती तब तक बडी बाती मे उलझनाउचित उचित नही होगा। इसलिए 1921 मे उसने नई आर्थिक नीति की घोषणा की। जिसमे कई तरह के समझौते किए गय। वास्तव में यह एक व्यवहारिक नीति थी। इस नीति मे

(1) किसानो पर अनाज लेने के स्थान पर एक निश्चित कर लगाया गया।

(2) यद्वपि यह सिद्वान्त कायम रखा गया कि जमीन राज्य की है। फिर भी व्यवहार मे जमीन किसान की हो गई।

(3) 20 से कम कर्मचारियों वाले उद्योगो को व्यक्तिगत रूप से चलाने का अधिकार मिल गया।

(4) उद्योगो का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया।

(5) विदेशी पूँजी भी सीमित तौर पर आमन्त्रित की गई।

(6) विदेशी व्यापार तो राज्य के ही अधिकार में रहा लेकिन देश में व्यक्तिगत व्यवसाय को छूट दी गई।

(7) व्यक्तिगत सम्पत्ति और जीवन का बीमा भी राजकीय ऐजेंसी द्वारा शुरू किया

गया।

(8) विभिन्न स्तरो पर बैंक खोले गए।

(9) ट्रेड यूनियन की अनिवार्य सदस्यता समाप्त कर दी गई।

इस तरह शुद्ध समाजवाद के स्थान पर फिलहाल एक मिश्रित अर्थव्यवस्था लागू की गई और लाभ की प्रवृत्ति जो पूँजीवादी व्यवस्था का मूल आधार है। पूरी तरह समाप्त नही की गई। व्यक्तिगत सम्पत्ति भी समाप्त नही की गई इतिहासकार लैंगसम के अनुसार हर व्यक्ति को उसकी जरूरत के अनुसार को हर व्यक्ति को उसकी मेहनत के अनुसार में परिवर्तित कर दिया गया। इन व्यवहारिक कदमो से रूस का अर्थतंत्र पूरी तरह संभल गया और बाद की समाजवादी योजना की शुरूआत हो सकी।

बोध प्रश्न–1

1–: नई आर्थिक नीति की घोषणा की गई।

1. 1921 2. 1918 3. 1920 4. 1925

2–: रूस का साम्यवादी स्वरूप कैसा था।

3–: नई आर्थिक नीति की विशेषतायें बतायें।

3.3 लेनिन के बाद रूस

1924 मे लेनिन की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी को लेकर प्रश्न उठने लगे। एक तरफ ट्राटस्की था जिसने लाल सेना के संगठन और सफलता मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। बह बुद्धि जीवी था, लेकिन उसके दुश्मनों की कमी नही थी। दूसरी ओर स्टालिन था, जिसका जन्म 1876 में हुआ था। वह एक मोची परिवार से उठकर पार्टी के मंत्री और प्रमुख,पत्र, प्रावदा, सम्पादक तक का पद संभाल चुका था। कई बार जेल और साइबेरिया भेजे जाने के बाद भी बह हर बार छूट कर पार्टी का काम संभाल लेता था। इसके अलावा कामेनेव और जिनोवियेव का त्रिगुट निकट सम्पर्क में था। लेनिन की मौत के बाद यही गुट शक्तिशाली हुआ और इनमें भी स्टालिन के हाथ वास्तविक सत्ता आई। ट्राटस्की और उसके समर्थकों का कहना था कि साम्यवादी कांति का प्रसार संसार भर में करना चाहिए। पूँजी बाद के बिनाश के लिए वह इसको आवश्यक समझता था। जबकि स्टालिन और उसके समर्थक इस विचार के विरोधी थे। उसके अनुसार संसार के अन्य देशों में बाहरी सहायता से काति करना असम्भव था। वे मानते थे कि यदि पूँजीवादी देशों से खुला युद्ध किया जायेगा ये संभावना है कि मजदूरों का एकमात्र देश एकदम नष्ट हो जायेगा। इसी बात पर दोनों में ताव में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। सालिन ने स्टालिंन ने दादसकी पर देशद्रोह

एवं साम्यवाद विरोधी होने का दोष लगाकर 1927 में उसे पार्टी की सदस्यता से ललग कर दिया। बाद में ट्राटस्की मेंकिसकों भाग गया और स्टालिन के हाथ में शासन की बाग डोर आ गयी। 1924 से 1953 तक स्टालिन रूस का अधिनायक बना रहा। तीस वर्षो तक उसने रूस का शान्ति और युद्ध में नेतृत्व किया और धीरे धीरे रूस विश्व की महाशक्तियों में गिना जाने लगा।

3.4 स्टालिन और रूस की प्रगति

स्टालिन ने अपने विरोधियों पर विजय तो पाली थी लेकिन उसके सामने सबसे कठिन समस्या थी देश के आर्थिक पुर्न निर्माण की। इस कार्य के बिना न तो पार्टी की स्थिति ही सुदृढ हो सकती थी और न देश की उन्नति ही सम्भव थी। अतः 1925 में उसने एक योजना आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग ने योजना के सिद्धान्त पर विचार करके एक पंचवर्षीय योजना बनायी जिसका उददेश्य मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर आधारित था। विश्व के अर्थ तन्त्र में नियोजित अर्थ व्यवस्था और पंचवर्षीय योजना रूस की ही देन है।

3.4.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना

प्रथम पंचवर्षीय योजना 1928 में लागू की गयी। इस योजना ने अपना जो लक्ष्य निर्धारित किया जो निम्न है

1– रूस में आधुनिक तकनीक का उपयोग।

2–रूस की एक औधोगिक शक्ति में बदलना।

3–पूँजीवादी प्रवृत्तियों को समाप्त करना।

4– भारी उघोगों का विकास

5– कृषि को सामूहिक पद्वति पर विकसित करना।

6– रूस को सुरक्षा के मामले में आत्मनिर्भर करना।

प्रथम पंचवर्षीय योजना द्वारा अर्थतंत्र को इस तरह नियोजित किया गया कि उत्पादन, वितरण और वित्तीय आधार एक निश्चित अनुशासन में विकसित होने लगा। धन और विशेषज्ञो की कमी थी लेकिन दृढ निश्चिय ने उन्हें दूर कर दिया। निर्यात पर जोर देकर विदेशी मुद्रा कमाई गयी। जिससे आवश्यक मशीने खरीदी जा सकें और विदेशी विशेषज्ञों का सहयोग मिल सके। देश में तकनीकि शिक्षा पर जोर दिया गया। जिससे भविष्य में भावी योजनाओं के लिये देश में तकनीशियन और इन्जीनियर तैयार हो सके। सारे देश को इस तरह जुटा दिया गया कि योजना के कुछ अंश समय से

पहले ही पूरे हो गये। तुर्किस्तान – साइबेरिया रेल लाइन और बडे बडे जलविद्युत गृह समय से पहले ही तैयार हो गए।

खाघान्नों के उत्पादन को दुगना करना भी इस पंचवर्षीय योजना का एक प्रमुख उददेश्य था। इसके लिये सरकार ने कृषि का राष्ट्रीकरण कर दिया और व्यक्तिगत खेतो के स्थान पर दो तरह के फार्म बनाये गये सरकारी फार्म और सामूहिक फार्म। सरकारी फार्म खोलने का अभिप्राय यह था कि देश की बंजर और वीरांन भूमि का प्रयोग सरकार की ओर से कृषि के लिये किया जाये। सामूहिक फार्मों की स्थापना बहुत से किसानों को सम्मिलत कर एक फार्म बनाकर की गयी जिससे वे सारे किसान सामूहिक रूप से काम कर सके। इस योजना का छोटे बडे किसानो सभी ने विरोध किया। अतः इस योजना में थोडी नरमी वरतनी पडी। लेकिन धीरे धीरे इसे स्वीकार किया जाने लगा और कृषि की स्थिति सभल गयी। यद्यपि मजदूरों और किसानों के जीवन स्तर पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा लेकिन योजना पूरी होते–होते रूस का नक्सा ही बदलने लगा।

3.4.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना

सोवियत रूस की दूसरी पंचवर्षीय योजना 1933 से 1937 तक चली जिसमें उपयोग की चीजें बनने और बेहत्तर उत्पादन पर जोर दिया गया। 1937 तक रूस की कृषि योग्य भूमि के 92 प्रतिशत भाग को बडे–बडे फा बदल दिया गया था। इस महान परिवर्तन ने गाँवों की सामाजिक तथा आर्थिक दशा में आमूल–चूल परिवर्तन कर दिया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सबसे अधिक ध्यान यातायात के साधनों का विकास करने तथा नवीन मकानों के निमार्ण पर दिया गया। रूस में रेल और पक्की सडके बहुत ही कम थी अतः योजना में रेल पथो एवं सडको के निमार्ण पर विशेष ध्यान दिया गया। जिससे योजनाकाल समाप्त होने से पूर्व ही देश भर में रेलो और सडको का जाल सा विछ गया मजदूरो को अनैक सुविधायें दी गयी। व्यावसायिक केन्द्रो पर अनेक मजदूरों के आ जाने के कारण मकानों की समस्या उत्पन्न हो गयी थी। इसलिये रूस की सरकार ने अनैको मकानों का निमार्ण करवाया।

इस योजना के पूरी होने से पहले ही कई क्षेत्रों, जैसे इस्पात, के उत्पादन में रूस, इग्लैण्ड से भी आगे निकल गया। खाद्य पदार्थ की राशनिंग व्यवस्था समाप्त कर दी गयी। और दुकानों में जरूरत की चीजें उप्लब्ध होने लगी। केवल पाँच प्रतिशत उत्पादन व्यक्तिगत क्षेत्र में बचा और रूसी पूरी तरह एक समाजवादी देश बन गया। धार्मिक परिवर्तन द्वितीय पंचवर्षीय योजना से सांस्कृतिक जीवन में भी क्रांन्तिकारी परिर्वतन आया। साम्यवाद धर्म में विश्वाय नही करता था इसलिये चर्च की सारी सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण कर दियागया और धार्मिक स्थानों को अन्य

जानोपयोगी कार्यों में इस्तमाल किया जाने लगा। चर्च को हर तरह की राजकीय सहायता बन्द कर दी गयी लेकिन व्यक्तिगत स्तर पर धर्म छोडने के लिये किसी को मजबूर नही किया गया। सामाजिक जीवन में विवाह, तलाक, और अन्य संस्कारों में चर्च का हरक्षेप समाप्त हो गया।

शिक्षा प्रसार – शिक्षा की महत्ता निर्विवाद थी। इसलिये अशिक्षा दूर करने का कार्यक्रम तत्काल शुरू किया गया। प्रारंभिक और व्यस्क शिक्षा के कार्यक्रमों द्वारा कुछ

ही वर्षों में यूरोप के सबसे पिछडे देशों में से एक रूस कई पश्चिमी देशों से अधिक शिक्षित हो गया। 16 वर्ष तक शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क कर दी गई। उच्च शिक्षा के दरवाजे भी सबके लिये खोल दिये गये विभिन्न क्षेत्रों में तकनीकि शिक्षा का प्रबन्ध के साथ ही समर्पित नागरिक बनने की भी शिक्षा दी गयी।

स्त्रियों की शिक्षा में सुधार – स्टालिन ने स्त्रियों की दशा सुधारने का भी प्रयत्न किया। क्रान्ति के फल स्वरूप स्त्रियाँ भी सभी बन्धनों से मुक्त हुई। उन्हें पुरूषों की तरह सारे अधिकार प्राप्त गये। वे मजदूर इन्जीनियर या डॉक्टर कुछ भी बन सकती थी। इसके अलावा वे राजकाज में भी भाग लेने लगी। उन्हे स्वतन्त्र और समान वैवाहिक अधिकार मिल गया। वेश्या– प्रथा का अन्त कर दिया गया।

इन दो पंचवर्षीय योजनाओं का ही परिणाम था कि क्रान्ति के केवल दो दशकों बाद ही इतना पिछड़ा हुआ रूस एक महान औधोगिक देश बन गया। और जब उस पर युद्व थोपा गया तो उसे झेलने में वह समर्थ था। बाद में फासीवाद की पराजय में भी उसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाइ।

बोध प्रश्न – 2

1) स्टालिन का जन्म हुआ था।

1. 1875 2. 1876 3. 1877 4. 1888

2.) प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू की गयी।

1. 1928 2. 1933 3. 1935 4. 1937

3) प्रथम पंचवर्षीय योजना के बारे मे संक्षेप मे लिखिए।

4) द्वितीय पंचवर्षीय योजना ने धर्म और शिक्षा के क्षेत्र मे क्या परिवर्तन किये।

5) स्पलिन के विषय मे आप क्या जानते है।

3.5 संविधान

क्रांन्ति के तुरन्त बाद 1918 में एक ऐसा संविधान बना था जो उस समय की

स्थितियों के लिए आवश्यक था फिर 1923 मे दूसरा संविधान बना। बाद मे देश की बहुमुखी प्रगति ने यह आवश्यक कर दिया कि देश को एक स्थाई संविधान दिया जाए। नयी आर्थिक नीति और फिर स्टालिन के कार्यों से रूस ने काफी प्रगति कर ली थी। उस समय तक कई अन्य प्रदेश भी सोवियत रूस मे सम्मिलित हो चुके थे। अतः 1936 मे एक नया संविधान बनाया गया और इसी संविधान से 1991 तक सोवियत संघ का शासन संचालित होता रहा।

इस संविधान के अनुसार रूस समान अधिकार वाले समाजवादी गणतन्त्र राज्यो का एक संघ बना। इन राज्यो को संघ में सम्मिलित होने अथवा न होने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई। इस संविधान के अनुसार राज्य की सर्वोच्च सत्ता सर्वोच्च सत्ता सोवियत सत्ता में निहित हो गई। जिसमे समान अधिकार वाले दो सदन थे। सीधे जनता द्वारा चार वर्षो के लिए निर्वाचित सर्वोच्च सोवियत मे 570 सदस्यो का प्रावधान

था। दूसरे सदन को राष्ट्रीयताओ की सोवियत कहा गया जिसके सदस्य संघ की विभिन्न राष्टीय इकाइयों द्वारा चुने जाते थे।

कार्यपालिका के शिखर पर एक अध्यक्ष परिषद का प्रावधान हुआ जिसमें एक अध्यक्ष (राष्ट्रपति), ग्यारह उपाध्यक्ष चौबीस सदस्य और एक मंत्री होते थे। शासन एक मन्त्रिमण्डल करता था। जिसका हर सदस्य कोमिसार कहलाता था। और अलग अलग विभागों का कार्य देखता था। इस संविधान मे निवार्चित न्यायपालिका का प्रावधान था। स्थानीय, क्षेत्रीय, प्रादेशिक स्तरो के लिए अलग अलग न्यायलय बनाए गए। पूरे देश के लिए एक सर्वोच्च न्यायालय की भी व्यवस्था की गई और गणराज्यो मे उच्च न्यायालय की। विशेष कार्यो के लिए विशेष न्यायालयों का भी प्रावधान हुआ। पहली बार रूस मे वयस्क मताधिकार लागू किया गया। इस संविधान मे स्पष्ट उल्लेख न होने पर भी सत्ता कम्युनिस्ट पार्टी के ही हाथ मे रही। इस संविधान में नागरिक के अधिकारो के साथ उसके कर्तव्यों का भी स्पष्ट किया गया।

3.6 विदेश नीति

बोल्शेविक क्रांन्ति का महत्व सिर्फ इसी बात मे नही है कि इससे संसार मे सर्वप्रथम मजबूर और सर्वहारा वर्ग का अपना राज्य स्थापित हुआ। बल्कि इसमे भी है कि रूस ही यूरोप का पहला देश था, जिसने स्वेच्छा से सम्राज्यवाद को अस्वीकार कर अपने अधीन के पराधीन राज्यो को मुक्त कर दिया।

सोवियत संघ के लक्ष्य विश्वव्यापी साम्यवादी समाज की स्थापना का था। इससे पश्चिमी देशो से सम्बन्ध स्थापित करने में दिक्कते थी। लेकिन स्टालिन ने शीघ्र ही इस नीति मे परिवर्तन कर दिया जिससे पश्चिमी देशो से सम्बन्ध सुधरने लगे। सर्वप्रथम इग्लैण्ड व्यावसायिक समझौते के लिये तैयार हुआ। कुछ ही समय मे जर्मनी

और इटली जैसे देशो से भी समझोता हो गया। 1924 मे ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रैग्जे मैकडोनाल्ड ने रूस को मान्यता दे दी। फिर इटली फांस और चीन जैसे देशो ने भी यही किया। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने तक विश्व के प्रायः सभी प्रमुख देशो ने रूस को मान्यता दे दी थी।

लोकार्नो संधियों में रूस की बिल्कुल उपेक्षा कर दी गई थी। रूस को इससे खतरा महसूस हुआ और उसने अपने पडोसियो से अनाक्रमण संधि कर अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध कर लिया। 1933 मे जर्मनी से सत्ता हिटलर के हाथो मे आई और उसने साम्यवाद के विरूद्व एक दमनकारी कार्यक्रम शुरू कर दिया। पूरब मे जापान साम्राज्यवादी रास्ते पर था। अब रूस की पूर्वी और पश्चिमी दौनो ही सीमायें असुरक्षित हो गई। फलस्वरूप रूस ने और त्परता से सुरक्षा की व्यवस्था शुरू कर दी। 1934 मे रूस ने अपना पुराना विरोध छोडकर राष्ट्र संघ की सदस्यता स्वीकार कर ली। उसने जर्मनी के विरूद्व और फ्रांस और चेकोस्लाविया से सुरक्षात्मक सन्धि भी कर ली। लेकिन जब रूस ने देखा कि हिटलर की बढती आक्रामकता के विरूद्व फ्रांस और इग्लैण्ड कुछ नही कर रहे। और उसके बार बार आग्रह करने पर भी हिटलर विरोधी मोर्चा नही बना रहा तब मजबूरन 1939 मे रूस ने जर्मनी से सन्धि कर ली। इतिहारकार ई०एच० कार के अनुसार दो बहिष्कृत देश आपस में मिल गये। यह एक कुशल कूटनीति थी जिसका रूस को निश्चित लाभ मिला। जब द्वितीय विश्व युद्व प्रारम्भ हुआ तो शुरू मे रूस तटस्थ रहा। लेकिन बाद मे हिटलर की राजधानी बर्लिन मे सबसे पहले रूसी सेनाएँ पहुँच गई। इस प्रकार हिटलर के पतन मे रूस ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

युद्व की समाप्ति के बाद रूस को उपेक्षित रखने का प्रश्न ही नही था। उसके विरूद्व चाहे जितनी शंका और शत्रुता हो चाहे राष्ट्र संघ हो या अन्य कोई अन्तर्राष्ट्रीय मामला अमेरिका के बाद रूस की ही प्रतिष्ठा थी। तीन दशको मे ही तिरष्कृत आकृ ांत और कमजोर रूस साम्यवाद के दम पर ही विश्व की महान शक्ति बन गया।

बोध प्रश्न–3

1) रूस का तीसरा संविधान लागू हुआ।

   1. 1918 2. 1923 3. 1936 4. 1939

2) रूस एंव जर्मनी की सन्धि हुयी।

   1. 1937 2. 1938 3. 1939 4. 1942

3) रूस के नये संविधान के विषय मे आप क्या जानते है।

3.7 सारांश

लेनिन ने रूस मे साम्यवाद की स्थापना की और स्टालिन ने उसे उँचाइयों तक पहुँचाया। लेनिन द्वारा लगाये गये साम्यवाद के पौधे को पुष्पित करने का काम स्टालिन ने किया। अपने तीन वर्षों के शासन काल में उसने रूस को विश्व के अग्रणी राष्टो को क्षेत्रो मे लाकर खड़ा कर दिया द्य किसानो मजदूरो की सर्वहारा वर्ग की सरकार ने सर्वप्रथम बैंको कारखानो जमीन आदि का राष्ट्रीयकरण कर दिया। जनता की उन्नति के लिए रूस मे पंचवर्षीय योजनायें बनायी गयी। जिसने रूस एक औद्यौगिक देश बन गया। रूस ने साम्यवादी सरकार के अन्तर्गत इतनी तरक्की कर ली कि प्रथम विश्व युद्ध मे अपने देश मे निर्मित अधिकाशं हथियारों सहित शामिल हुआ। रूस को एक नया संविधान भी मिला। इसके अलावा विश्व के कोई राष्टो से उसने संन्धियॉ भी की। अपने परिश्रम और दृढ विश्वास से कुछ ही वर्षो मे रूस अमेरिका के साथ विश्व की महाशक्ति बन गया। विश्व मे द्विध्रुवीय व्यवस्था लागू हुई। रूस को इस स्तर तक उँचा उठाने का श्रेय पूरी तरह साम्यवादी व्यवस्था को ही है।

3.8 शब्दावली

- दमनकारी– खत्म करने वाला
- साम्राज्यवादी –विस्तार की नीति
- आकांत– भयभीत

3.9 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न रू :–1

(1) 1– (√) 2– (×) 3– (×) 4–(×)

(2) देखे भाग 1.1

(3) देखे भाग 1.2

बोध प्रश्नः–2

(1) 1– (×) 2– (√) 3– (×) 4–(×)

(2) 1– (√) 2– (×) 3– (×) 4–(×)

(3) देखे भाग 1.4.1

(4) देखे भाग 1.4.2

(5) देखे भाग 1.3

बोध प्रश्न :–3

(1) 1– (×) 2– (×) 3– (√) 4–(×)

(2) 1– (×) 2– (×) 3–(√) 4–(×)

(3) देखे भाग 1.5

इकाई 04 – अमेरिकन प्रभुत्ववाद

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 अमेरिका का यूद्व एवं प्रभाव क्षेत्र का विस्तार

4.3 अमेरिका और प्रथम विश्व युद्ध

4.4 प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य का काल

4.5 अमेरिका और द्वितीय विश्व युद्ध

4.6 अमेरिका के महाशक्ति के रूप में उदय के कारण

4.6.1 अमेरिका की भूराजनैतिक एवं सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति

4.6.2 आर्थिक समृद्धि

4.6.3 उच्च सैनिक क्षमता

4.6.4 द्वितीय विश्व युद्व

4.6.5 युद्वोपरांत विश्व में व्याप्त शक्ति शून्यता

4.7 युद्धोत्तरकालीन विश्व में अमेरिकन प्रभुत्व

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस ईकाई में हम जानेगें–

- प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिका की भूमिका के बारें में।
- द्वितीय विश्व युद्ध में अमेरिका की भूमिका के बारे में।
- अमेरिका के विश्व शक्ति के रूप में उदय के कारणों के बारे में।
- विश्व में अमेरिका के प्रभुत्व के बारें मे।

4.1 प्रस्तावना

सन 1776 ई0 के स्वतंत्रता संग्राम के फलस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका का एक राष्ट्र के रूप में जन्म हुआ था। तब से द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति (1945ई0) के बाद तक के दो शताब्दियों से भी कम समय में अमेरिका ने विश्व में जो अग्रता हासिल की है वो अपने आप में अदभुत है। विश्व की महाशक्ति के रूप में अमेरिका का उदय विश्व राजनीति की एक महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी घटना है।

द्वितीय विश्व युद्ध को मानव सभ्यता के इतिहास का सबसे अधिक विनाशकारी और भयानक युद्व कहा जाता है। इस युद्ध के समाप्त होने के साथ ही विश्व इतिहास का एक युग समाप्त हुआ और एक नवीन उन्नतशील युग का सूत्रपात हुआ। इस युद्ध के पश्चात विश्व राजनीति के नेतृत्व की बागडोर संयुक्त राज्य अमेरिका के हाथों में आ गयी, जबकि इससे पूर्व ग्रेट ब्रिटेन को विश्व राजनीति का प्रमुख नेता और संचालक समझा जाता था। हम कह सकते है कि इस युद्ध के फलस्वरूप विश्व राजनीति के क्षेत्र में यूरोपीय प्रभुत्व का युग समाप्त हो गया, और सोवियत रूस एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के रूप में दो नवीन महाशक्तियों का उदय राजनीतिक पटल पर हुआ। बाद में सोवियत संघ के विघटन के पश्चात वर्तमान में विश्व में केवल एक महाशक्ति ही रह गयी है जो कि है– संयुक्त राज्य अमेरिका।

4.2 अमेरिका का गृहयुद्ध एवं प्रभाव क्षेत्र का विस्तार

दास प्रथा के प्रश्न पर अमेरिका गृह युद्ध हुआ था। अमेरिका के उत्तरी राज्यों की आर्थिक स्थिति दक्षिणी राज्यों की तुलना में बेहतर थी। दक्षिणी राज्य सामान्यतः पिछडे हुए थें। वे मुख्यतः कृषि पर आश्रित थे। दक्षिणी राज्यों में दास प्रथा प्रचलित थी ये दास वहाँ की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग थे जबकि उत्तरी राज्यों के निवासी दास प्रथा की घृणा की दृष्टि से देखते थे वे दास प्रथा की अपने देश के नाम पर कलंक समझते थे।

सन् 1860ई0 में राष्ट्रपति पद के चुनाव में रिपब्लिकन पार्टी के नेता अब्रहम लिंकन को सफलता प्राप्त हुई। अब्राह्यम लिंकन दास प्रथा उन्मूलन के कट्टर समर्थक थे। अतः इस चुनाव के तुरंत बाद दक्षिणी राज्यों ने संघ से अलग होने का निर्णय कर लिया। उन्होंनें संघ के विरूद्ध संघर्ष करने के उद्देश्य से अपना पृथक संगठन बना लिया। फलस्वरूप अमेरिका में गृहयुद्व प्रारंभ हो गया। यह युद्व चार वर्षो तक चला और अंत में दक्षिण के राज्यों को आत्म समर्पण करना पडा। गृह युद्ध के फलस्वरूप अमेरिका में व्यापक स्तर पर आर्थिक क्रांति हुई। सन् 1861ई0 से 1890 ई0 के मध्य की अवधि में कृषि व उद्योग के क्षेत्र में अमेरिका ने प्रगति के नवीन मापदण्ड स्थापित किये। गृहयुद्व के पश्चात अमेरिका के दक्षिणी भागों में पुनर्निर्माण

का युग प्रारंभ हुआ।

प्रारंभ में संयुक्त राज्य अमेरिका के संघ में तेरह राज्य सम्मिलित थे, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक इन राज्यों की संख्या बढ़कर 48 हो गयी। अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र का विस्तार निरंतर बढता गया और वह एक विश्व शक्ति के रूप में संसार में अपनी छाप छोडनें लगा द्य उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में क्यूबा के प्रश्न पर अमेरिका का स्पेन के साथ संघर्ष हुआ और सन् 1898 में अमेरिका को सफलता प्राप्त हुई। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका ने पनामा नहर का निर्माण किया और उस क्षेत्र में अपने प्रभाव का विस्तार किया। इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध में सम्मिलित होने से पूर्व अमेरिका संसार के देशों के मध्य अपनी शक्ति को प्रमाणित कर चुका था।

4.3 अमेरिका और प्रथम विश्व युद्ध

संयुक्त राज्य अमेरिका ने सन 1823 में मुनरो सिद्वांत की घोषणा की थी और इसी सिद्वांत को अपनी विदेश नीति का दिशा निर्देशक तत्व बनाया था। मुनरो ने अपनी घोषणा में यह स्पष्ट किया था कि अमेरिका ने यूरोपीय युद्धों में कभी भाग नही लिया है और भबिष्य में भी वह यूरापीय युद्धों से पृथक रहेगा। इस प्रकार इस सिद्धांत के मूल में यह बात थी कि अमेरिका न तो यूरोपीय मामलों में हस्तक्षेप करना चाहता है और न वह अपने आन्तरिक मामलों में यूरोपीय हस्तक्षेप की अनुमति देगा।

सन् 1823 से पृथक विश्व युद्ध के प्रारंभ होने तक अमेरिका की सरकार ने (मुनरो सिद्धांत का पूर्णतः पालन किया। तस्तुतः इस अवधि में अमेरिका का मुख्य उद्देश्य अपने राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से स्वयं को पृथक बनाये रखना तथा अपना आंतरिक विकास एवं प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करना था। और इस लक्ष्य में अमेरिका को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। प्रथम विश्व युद्ध के प्रारंभ होने के साथ अमेरिका की गणना विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों में की जाने लगी थी।

सन् 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारंभ होने पर अमेरिका ने स्वयं को इस युद्ध से अलग रखने का निर्णय लिया था, किन्तु युद्ध की घटनाओं ने उसको अपनी नीति में परिवर्तन करने को विवश कर दिया। अन्ततः अमेरिका ने अपनी परम्परागत पृथक्करण की नीति को त्याग कर मित्र राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध में भाग लिया। और उन्हें विजय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस युद्ध के परिणामों ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अमेरिका की प्रतिष्ठा और शक्ति में चार चाँद लगा दिये।

बोध प्रश्न –

(1) सन् 1860 के राष्ट्रपति पद के चुनाव में रिपब्लिकन पार्टी के नेता को सफलता

प्राप्त हुई।

(अ) हेक्टर मुनरो (ब) अब्राह्मम लिंकन (स) रूजवेल्ट (द) वॉशिंगटन

(2) अमेरिका ने मुनरो सिद्धांत की घोषणा की –

(अ) 1820 (ब) 1822 (स) 1823 (द) 1825

(3) अमेरिका गृह युद्ध के विषय में आप क्या जानते है।

(4) मुनरो सिद्वांत क्या था।

(5) प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिका की क्या भूमिका थी।

4.4 प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य का काल

प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होने पर स्पष्ट हो गया था कि विश्व राजनीति में निर्णायक स्थान प्राप्त करने के लिए अमेरिका को पृथक्करण की नीति के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीयता की नीति का पालन करना पडेगा। इसी बात को ध्यान में रखकर अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने चौदह सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा की थी। 1919 मे पेरिस मे हुये शान्ति सम्मेलन की स्थापना युद्ध के खतरो को काम करने तथा विश्व के विभिन्न देशो के मध्य अर्न्तराष्ट्रीय सदभाव स्थापित करने के उददेश्य से राष्ट्र संघ के रूप में एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना का सुझाव रखा था। जिसे सम्मेलन के सदस्यो ने तुरन्त मान लिया। इस प्रकार राष्ट्रसंघ की स्थापना करके अमेरिका ने एक बार पुनः अपनी विश्व शक्ति और श्रेष्ठता को प्रमाणित कर दिया था।

विल्सन के पृथक्करण की नीति को त्यागकर अन्तर्राष्ट्रीयता की नीति को स्वीकार करने के सुझाव को अमेरिकी सीनेट ने अस्वीकार कर दिया था द्य जिससे 1920 से 1932 तक अमेरिका अन्तर्राष्ट्रीयता की नीति को अपनाने में सफल नहीं हो सका। अमेरिका की सीनेट ने राष्ट्र संघ की योजना को अस्वीकृत करके भी अन्तर्राष्ट्रीयता के विचार को गहरा आघात पंहुचाया था द्य किन्तु यह स्थिति अधिक समय तक नही रह सकी। अमेरिका के राजनेता एंव विचारक इस मत के प्रबल समर्थक थे कि अन्तर्राष्ट्रीयता की नीति अमेरिका के प्रभाव एंव शक्ति को बढ़ाने मे सहायक सिद्व होगी। सन् 1933 मे रूजवेल्ट को अमेरिका का राष्ट्रपति चाना गया। वह भी अन्तर्राष्ट्रीयता के समर्थक थे। उनके प्रयासो से अमेरिका द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने तक विश्व की एक प्रमुख शक्ति बन चुका था।

4.5 प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य का काल

द्वितीय विश्व युद्वअमेरिका के प्रभाव व शक्ति के लिए वरदान सिद्व हुआ था। इस युद्ध का प्रारम्भ सन

1939 मे हुआ था। इस समय विश्व मंच पर संयुक्त राज्य अमेरिका सोवियत संघ ग्रेट ब्रिटेन फ्रांस, जर्मनी इटली और जापान जैसी सात बडी शक्तियॉ थी। अमेरिका प्रारम्भ मे युद्व से अलग अलग बना रहा किन्तु जब सन 1941 मे जापान ने पर्लहार्बर पर आकमिक रूप से आक्रमण कर दिया तो अमेरिका को भी इस युद्ध मे सम्मिलित होने के लिए बाध्य होना पड़ा। उसके इस निर्णय के फलस्वरूप युद्ध मे मित्रराष्टो की स्थिति अत्यन्त सुदृढ हो गयी और सन 1945 मे घुरी राष्ट्रो को पराजित होना पडा। 7 मई 1945 यूरोप मे जर्मनी तथा 14 अगस्त 1945 को जापान के आत्म समर्पण के साथ इस महायुद्व की समाप्ति हुई। इस विश्व महायुद्व ने विश्व समीकरण को झकझोर डाला और युद्ध की समाप्ति पर बडी शक्तियो की संख्या सात से घटकर मात्र तीन रह गयी। संयुक्त राज्य अमेरिका सोवियत संघ और ग्रेट ब्रिटेन। ग्रेट ब्रिटेन भी अपनी स्थिति को बचा नही पाया था और वह अन्य दो राष्ट्रो से निम्न परिस्थिति वाला राष्ट्र बन गया था। अतः कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ दो महाशक्तियों के रूप में उभरकर सामने आए।

संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के महाशक्ति के रूप मे उमरने के साथ साथ देखते ही देखते सारा विश्व दो विरोधी खेमो मे बॅट गया। आरनोल्ड टायनवी जैसे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के जानकारो ने इसे कि धुवीय विश्व व्यवस् की संज्ञा दी द्य इन दौनो महाशक्तियों के बीच शक्ति संघर्ष के साथ साथ परस्पर विरोधी वेचारिक संघर्ष भी खुलकर सामने आया। जहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका ने उदारवादी प्रजातन्त्र का टिटोरा पीटकर विश्व नेतृत्व प्राप्त करने की चेष्टा की वंही सोवियत संघ ने समाजवाद और साम्राज्यवाद और विरोध का बिगुल बजाकर अन्तर्राटीय साम्यवाद की वकालत की। इन दौनो महाशक्तियों के मध्य इस परिप्रेक्ष्य मे छिडा वाक युद्ध जिसे शीतयुद्ध की संज्ञा दी गयी, युद्ध के बाद विश्व राजनीति का सत्य बन गया।

बोध प्रश्न – 2

1) रूजवेल्ट को अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया।

1. 1930 2. 1931 3. 1932 4. 1933

2) द्वितीय विश्व युद्व समाप्त हुआ।

1. 1939 2. 1941 3. 1945 4. 1946

3) अमेरिका द्वितीय विश्वयूद मे शामिल हुआ।

1. 1939 2. 1941 3. 1942 4. 1945

4) द्वितीय विश्व युद्ध के बाद महाशक्तियों की स्थिति में परिवर्तन ने विश्व को

किस प्रकार प्रभावित किया

4.6 अमेरिका के महाशक्ति के रूप में उदय के कारण

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एक महाशक्ति के रूप में उदित होकर अमेरिका ने सम्पूर्ण विश्व में अपनी

घाक जमाई हैं लेकिन अमेरिका का महाशक्ति बनना अचानक नही हुआ इसके पीछे कई कारण है कि जो कि निम्न है।

4.6.1 अमेरिका की भू राजनैतिक एवं सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भौगिलिक स्थिति–

अमेरिका की भौगोलिक स्थिति उसके विकास में अत्यन्त सहायक है। वास्तव में कोई भी राज्य अपनी राष्ट्र शक्ति विकास या खुशहाली का उपभोग तब तक नही कर सकता जब तक उसका प्राकृतिक परिवेश उसके भौतिक सुविधाये न जुटाता हो। इनमें भौगोलिक स्थिति भी सम्मिलित है जो सुरक्षा की जरूरतों को पूरा करते हुये भी सहज मार्ग प्रस्तुत करती है और आवश्यक क्षेत्र उत्साहवर्द्वक जलवायु एवं खनिज,जल, पर्याप्त खाद्यान एवं जैविक साधनों को सुलभ करती है।

इस संदर्भ में पूर्व में अटलांटिक सागर तथा परिचम में प्रशांत महासागर से सुरक्षित संयुक्त राज्य अमेरिका बडी ही श्रेष्ठ स्थिति में है। उत्तर में कनाडा तथा दक्षिण में मैक्सिको जैसे पडोसी राष्ट्रों के साथ उसका कोई सीमा विवाद नही है। राज्य का विशाल आकार इसके विकास में बाधक न बनकर इसकी उन्नति का कारक है। यह प्राकृतिक संसाधनों से भरा पूरा है। इस प्रकार इस विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण अमेरिका द्वितीय विश्व युद्वोपरांत एक महाशक्ति बना।

4.6.2 आर्थिक समृद्धि–

संयुक्त राज्य अमेरिका की आर्थिक सम्पन्नता उसके लिये वरदान सिद्ध हुई है। आज विश्व में राजनीतिक शक्ति का एक माप दण्ड औद्योगिक क्षमता है। संयुक्त राज्य विश्व के उत्पादन का 40 से 50 प्रतिशत तक लोहा इस्पात उत्पादित करता है। इसके साथ साथ आधुनिक उन्नत तकनीक पर आधारित कृषि व्यवस्था, उपयुक्त जलवायु, एवं अपार खनिज सम्पदा अमेरिका को आर्थिक दृष्टि से सक्षम एवं विकसित बनाने में सहायक हुए है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सोवियत संघ सहित प्रत्येक देश उससे आर्थिक सहायता प्राप्त करने को उत्सुक था। यह भी खास है कि विश्व युद्ध के दौरान जहां अन्य राष्ट्रों के उद्योग धंधे नष्ट हो गये और उनकी आर्थिक स्थिति खराब हो गयी वहीं अमेरिका का उत्पादन गिराने के बजाय बढा। युद्धकाल में वहॉ औद्यौगिक क्षेत्र में लगभग 50 प्रतिशत और कृषि उत्पादन में लगभग 36 प्रतिशत की

वृद्धि हुई। इस प्रकार युद्वोपरांत अन्य बडी शक्तियों (सोवियत संघ को छोडकर) ने संयुक्त राज्य के आर्थिक प्रमुतव को स्वीकार कर लिया और वह महाशक्ति के रूप में उभरा।

4.6.3 उच्च सैनिक क्षमता–

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका ने न केवल आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में श्रेष्ठता सिद्ध की बल्कि उसने 1945 में हिरोसिमा और नागासाकी पर अणुबम गिराकर अपनी सैनिक श्रेष्ठता भी सिद्ध कर दी। इस समय तक पूरी शक्तियॉ नष्ट हो चुकी थी और सोवियत संघ यद्यपि काफी मजबूत था फिर भी अमेरिका की तुलना में कम था। विश्व में अमेरिका सैनिक दुष्ठि से नम्बर वन था। इस प्रकार उच्च सैनिक श्रेष्ठता के कारक ने उसे महाशक्ति के रूप में उभारने में अहम भूमिका अदा की।

4.6.4 द्वितीय विश्व युद्व–

द्वितीय विश्व युद्व संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ। प्रथम विश्व युद्व ने अमेरिका को एक ऋणी राष्ट्र से ऋणदाता राष्ट्र का रूप दिया और द्वितीय विश्व युद्व ने अधिकांश विश्व में उसका आर्थिक प्रभुत्व स्थापित कर दिया। इसका कारण स्पष्ट था कि महायुद्व में अमेरिका को उस घोर विनाश का सामना नही करना पडा था जिसका अन्य मित्र राष्ट्रों एवं धुरी राष्ट्रों को करना पड़ा था। न उसकी भूमि पर युद्व लडा गया और न उसे दूसरे देशों के समान कूर बम बर्षा का शिकार होना पडा। वह सैनिक,राजनीतिक और आर्थिक तीनों दृष्टियों से पूँजीवादी जगत का नेता बन गया और युद्ध से पीडित एवं ध्वस्त राष्ट्र उसके झण्डे के नीचे आकर खडे हो गये। उन्होंनें अमेरिका डालर के साथ साथ अमेरिका नेतृत्व को भी स्वीकार कर लिया।

4.6.5 युद्वोपरांत विश्व में व्याप्त शक्तिशून्यता –

द्वितीय विश्व युद्ध में ग्रेट ब्रिटेन, फांस, इटली, जर्मनी और जापान जैसी महाशक्तियों का पराभाव हुआ। ब्रिटेन और फांस विजयी तो हुये थे किन्तु पंगु हो चुके थे। ऐसी स्थिति में समग्र विश्व में एक शक्ति शून्यता उत्पन्न हो गयी थी। उस समय स्थिति और गम्भीर हो गई जब सोवियत संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद की नीति के अनुसार इसे भरने का प्रयास किया। पूर्वी यूरोप लाल हो गया। फांस, इटली, यूनान और ईरान पर साम्यवादी दबाव बहुत बढ़ गया। ऐसा लगने लगा कि यदि शीघ्र ही इसे रोका नही गया तो सम्पूर्ण विश्व ही लाल झण्डे के नीचे आ जायेगा। फलतः संयुक्त राष्ट्र आगे बढा और मार्च 1947 में ट्रमैन सिद्धांत के द्वारा अपने को स्वतंत्र विश्व की स्वतंत्र जनता का रक्षक नियुक्त कर लिया।

अब साम्यवाद का परिसीमन और अवसर पाकर उसका उन्मूलन अमेरिकी विदेश

नीति का अनिवार्य तत्व बन गया।

4.7 युद्धोपरांत विश्व में अमेरिका प्रमुख

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का काल संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के मध्य संघर्ष का काल कहा जाता है। इस अवधि में इन दो महाशक्तियों के मध्य राजनीतिक,आर्थिक,सैनिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इन सभी क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा चली। इस प्रतिस्पर्धा की राजनीति को शांतिपूर्ण प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा, जिससे उसका आर्थिक एवं राजनीतिक विकास हुआ। इस दौरान इन दोनों देशों ने अपने आप को विश्व का राजनीतिक नेतृत्व करने के योग्य सिद्ध करने का प्रयास किया। इसी प्रयास के फलस्वरूप अमेरिका का तीव्र गति से सर्वोन्मुखी विकास हुआ और वह विश्व की एक महाशक्ति बन गया।

अमेरिका ने अपनी आर्थिक नीति को ऐसे सिद्धांतों पर आधारित किया था जिससे संसार के अन्य देशों में आर्थिक साम्राज्यवाद का तीव्र गति से प्रसार हो सका। इस उद्देश्य से अमेरिका ने समय समय पर मार्शल योजना, ट्रूमैन सिद्धांत, चार सूत्रीय कार्यक्रम आदि विभिन्न आर्थिक योजनाओं को लागू किया था। मार्शल योजना के अन्तर्गत अमेरिका ने यूरोप महाद्वीप के आर्थिक पुनर्निर्माण हेतु कुछ प्रभावशाली कदम

उठाये। अक्टूबर 1945 तर्फे अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमैन ने बारह सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा करके यह स्पष्ट कर दिया कि अमेरिका एक महाशक्ति के रूप में विश्व का

नेतृत्व करने के लिए उत्सुक था। महाशक्ति के रूप में अमेरिका का स्परूप उस समय और अधिक स्पष्ट हो गया जब जनवरी 1949 में राष्ट्रपति ट्रूमैन ने चार सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा की। इस घोषणा का मुख्य बिन्दु यह था कि जहाँ कहीं भी शांति को भंग करने वाला प्रत्येक अथवा परोक्ष आक्रामक कार्य होगा, वह अमेरिका के लिए संक माना जायेगा और अमेरिका उसे रोकने के लिए हर संभव प्रयास करेगा।

सन् 1955 के बाद विश्व राजनीति में आये कुछ गुणात्मक परिवर्तनों के फलस्वरूप नवीन वातावरण का सृजन हुआ और द्विध्रुवीय व्यवस्था धीरे धीरे बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था की ओर उन्मुख हुई। 1962 के क्यूबा संकट के बाद इसकी गति में तेजी आ गयी। छठे दशक के अंत तक साम्यवादी खेमें में दरार पड गयी। चीनी गणराज्य और सोवियत रूस व उसके समर्थक देशों में गम्भीर राजनैतिक वैचारिक मतभेद पैदा हो गये। चीन एक शक्ति केन्द्र के रूप में उभर कर सामने आया। फ्रांस नाटों गठबंधन से अलग होकर अमरीकी गुट के प्रभाव से मुक्त हो गया और वह यूरोप में स्वतंत्र शक्ति के रूप में उभरने का प्रयास करने लगा। पूर्व एशिया में जापान तथा यूरोप में पश्चिमी जर्मनी आर्थिक व औद्योगिक शक्ति के रूप में उभर का सामने आये। उनके

साथ साथ दक्षिण पूर्व एशिया में भारत, पश्चिमी एशिया में ईरान तथा इजराइल और लेटिन अमेरिका में ब्राजील जैसी क्षेत्रीय शक्तियाँ उभर कर सामने आयी। चीन, फांस व इन अन्य क्षेत्रीय शक्तियों के पास जनसंख्या, प्राकृतिक साधन तथा वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान होने तथा परमाणु शक्ति का विकास करने से ये राज्य भी क्षेत्रीय शक्ति के रूप में व्यवहार करने लगे। इस प्रकार सातवें व आठवें दशक के मध्य तक ऐसा लगता था कि मानों विश्व में द्विध्रुवीय व्यवस्था के स्थान पर बहुध्रुवीय व्यवस्था स्थायी रूप ले लेगी। किन्तु नवें दशक के आते आते स्थिति बिल्कुल उलट हो गयी और शक्ति युद्ध की समाप्ति के साथ साथ बहुधीय व्यवस्था भी एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में बदल गई। पौलेण्ड चेकोरवाकिया, रूमानिया, हंगरी आदि देशों में साम्यवाद का अंत हुआ। खाडी युद्ध के समय यह बात प्रमाणित हो गई कि अब विश्व शक्ति के दो ध्रुव नही बल्कि केवल एक ध्रुव वाशिंगटन है।

इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका ने शनैः शनैः विश्व राजनीति में स्वयं को एक शक्तिशाली राष्ट्र एवं विश्व शक्ति के रूप में प्रमाणित किया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य के रूप में भी अमेरिका ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का नेतृत्व हासिल करने का प्रयास किया।

बोध प्रश्नः–

(1) अमेरिका ने हिरोसिमा और नागासाकी पर अणुबम गिराया द्य

(अ) 1939 () 1941 (स) 1945 (द) 1946

(2) अमेरिका की भौगोलिक स्थिति उसके महाशक्ति के रूप में उदय में किस प्रकार सहायक बनी।

अमेरिका के गहाशक्ति बनने के क्रम में उसकी आर्थिक समृद्धि एक प्रमुख कारण (3) थी। समझाइये।

4.8 सारांश

ग्रहयुद्व से उबरकर अमेरिका ने कृषि व उद्योग के क्षेत्र में काफी प्रगति की और प्रथम विश्व युद्ध के प्रारंभ होने से पूर्व ही वह विश्व में अपनी शक्ति को प्रमाणित कर चुका था। लेकिन प्रथम विश्व युद्ध तक वह विश्व में पृथककरण की नीति पर चल रहा था। परन्तु युद्व की घटनाओं ने उसे अपनी नीति को परिवर्तित करने पर मजबूर कर दिया, उसने मित्रराष्ट्रों के पक्ष में युद्ध में हिस्सा लेकर उन्हें विजयश्री दिलवायी। इससे विश्व में अमेरिका की प्रतिष्ठा बहुत बढ गयी। द्वितीय विश्व युद्ध में अमेरिका 1941 में शामिल हुआ और अपनी आणविक क्षमता के दम पर विश्व में अपनी धाक जमायी। इसके बाद विश्व मे द्विध्रुवीय व्यवस्था की शुरूआत हुई जो धीरे धीरे

सोवियत संघ के विघटन के साथ ही एक ध्रुवीय व्यवस्था में बदल गई। आज पूरे विश्व में चाहे आर्थिक क्षेत्र हो या राजनैतिक, चाहें बात विकास की हो या आधुनिकता की हर बात में संयुक्त राज्य अमेरिका ही अग्रणी है। वो सम्पूर्ण विश्व में एकमात्र महाशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है।

शब्दावली –

अग्रता – बढत

उन्मूलन – समाप्ति

पृथक्करण – अलग होना

परिसीमनक्षेत्र – सीमित करना

4.10 बोध प्रश्नों के उत्तरः–

बोध प्रश्न 1

(1) (अ) x (ब) √ (स) x (द) x

(2) (अ) x (ब) √ (स) √ (द) x

(3) देखें भाग 4.2

(4) देखें भाग 4.3

(5)देखें भाग 4.3

बोध प्रश्नः–

(1) (अ) x (ब) x (स) x (द) √

(2) (अ) x (ब) x (स) √ (द) x

(3) (अ) x (ब) √ (स) x (द) x

(4)देखें भाग 4.5

बोध प्रश्नः–

(1) (अ) x (ब) x (स) √ (द) x

(2) देखें भाग 4.6.1

(3) देखें भाग 4.6.2

इकाई 05 – गुटनिरपेक्ष आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 गुट निरपेक्ष आन्दोलन का प्रारम्भ

5.3 गुट निरपेक्ष आन्दोलन के आधार तत्व

5.4 गुट निरपेक्ष आन्दोलन की विशेषतायें

5.4.1 सकारात्मक, गतिशील एवं स्वतंत्र दृष्टिकोण

5.4.2 उपनिवेशवाद का विरोध –

5.4.3 निःशस्त्रीकरण –

5.4.4 विकास

5.4.5 विश्व शान्ति का समर्थन –

5.4.6 सैनिक गुट बन्धियों का विरोध

5.4.7 सयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन

5.5 – गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाते के कारण

5.5.1 स्वतंत्रता के प्रति प्रतिबद्धता

5.5.2 आर्थिक विकास की महत्वाकांक्षा

5.5.3 शान्ति की आवाश्यकता

5.5.4 ऐतिहासिक अनुभव

5.6 गुट निरपेक्ष आन्दोलन की उपलब्धियाँ

5.7 गुट निरपेक्ष आन्दोलन की असफलतायें

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम जानेगें

- गुट निरपेक्ष आन्दोलन क्या है।
- इस आन्दोलन की शुरूआत कब व किससे द्वारा हुई।
- इस आन्दोलन मूल आधार क्या है।
- हम इस आन्दोलन की विशेषताओं का अध्ययन करेगें।
- इसके अलावा हम इसकी उपलब्धियों के विषय में भी जान पायेगें।

5.1 प्रस्तावना

शीत युद्ध के समय जब विश्व दो गुटो– एक अमेरिका के नेतृत्व वाला पश्चिमी, व दूसरा सोवियत संघ के नेतृत्व वाला साम्यवादी गुट,, में बटा हुआ था? इस गुट निरपेक्ष आन्दोलन की शुरूआत हुई कुछ लोगों ने गुट निरपेक्ष का अर्थ तटस्थता कहा जबकि कुछ अन्य राजनायिकों का मानना था कि इसका अर्थ दोनों गुटो से समान दूरी रखना और दोनों से पृथक रहना है। लेकिन वास्तव में यह अर्थ स्वतन्त्रता का सूचक नही है। गुट निरपेक्ष आन्दोलन में वे राष्ट्र है जो अपनी स्वतन्त्र नीति रखते हुये कुछ सिद्वान्तो के लिये एक साथ खड़े होने को तत्पर है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के देश किसी दूसरे देश के मामले में न हस्तक्षेप करते है और न उसकी गृह व विदेश नीति को प्रभावित करने में रूचि रखते है। इस आन्दोलन के राष्ट्र शान्ति व सामान्य समस्याओं के हल के लिये आपसी सहयोग में सक्रिय रहते है। निः सन्देह गुट निरपेक्ष आन्दोलन स्वतंत्र व समान देशों का मंच है। तटस्थता एक नकारात्मक दृष्टिकोण है जबकि गुटनिरपेक्षता एक सकारात्मक दृष्टिकोण है। श्रीमती इन्द्रागॉधी के शब्दों में गुटनिरपेक्षता का अभिप्राय न असम्बद्वता है न तटस्थता है। यह हमारी निर्णय लेने तथा काग्र करने की आजादी का दावा था और है। हमने किसी भी बडे विवाद के समय अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने में अथवा उचित मामलों का पक्ष लेने में हिचकिचाहट महसूस नही की है।

5.2 गुट निरपेक्ष आन्दोलन का आरम्भ

गुटनिरपेक्ष शब्द की अधिकृत रूप से घोषणा 1956 में पहली बार कोलाम्बो में पं. जवाहरलाल नेहरू ने की थी। परन्तु शब्द सर्वप्रथम चलन में 1961 में आया जबकि, बेलग्रेड में प्रथम शिखर सम्मेलन में नेहरू ने इसका प्रयोग किया। बेलग्रेड में नेहरू, नासिर, टीटो, सुकर्ण और एन्कमा (भारत, मिस्त्र, भूगोस्लाविया, इण्डोनेशिया और घाना) गुटनिरपेक्षता के प्रवर्तको के रूप में जाने गये। 1961 में बेलग्रेड में हुये पहले गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में राष्ट्रों की संख्या 25 थी जो 1983 में दिल्ली में हुये सातवें गुटनिरपेक्ष सम्मेलन तक बढकर 101 हो गयी। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन साम्राज्यवाद

विरोधी व चौधराहर मुक्त समता स्थापित करने में प्रयासरत आन्दोलन है।

यह आन्दोलन राष्ट्रो के मध्य राजनीतिक आर्थिक समानता स्थापित करने के लिये प्रेरित करता है।

5.3 गुट निरपेक्ष आन्दोलन के आधार तत्व

वास्तव में गुटनिरपेक्षता का स्पष्ट अभिप्राय है किसी भी देश के साथ सैनिक गुटबन्दी में सम्मिलित न होना, पश्चिमी या पूर्वीगुट के किसी भी विशेष देश के साथ सेनिक दृष्टि से न बंधना हर प्रकार की आक्रामक सन्धि से दूर रहना शीत युद्व से पृथक रहना और राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुये न्यायोचित पक्ष में अपनी विदेशी नीति का संचालन करना। 1961 में गुट निरपेक्षता के कर्णधारों नेहरू, नासिर और टीटो ने इसके पाँच आधार स्वीकार किये थे।

1–सदस्य देश स्वतंत्र नीति पर चलना हो।

2–सदस्य देश उपनिवेशवाद का विरोध करता हो।

3–सदस्य देश किसी सैनिक गुट का सदस्य न हो।

4–सदस्य देश ने किसी बडी ताकत के साथ द्विपक्षीय समझौता न किया हो।

5–सदस्य देश ने किसी बडी ताकत को अपने क्षेत्र में सैनिक अडडा बनाने की इज्जत न दी हो।

बोध प्रश्न – 1

1– 1961 में बेलग्रेड के शिखर सम्मेलन में गुटनिरपेक्ष देशों की संख्या कितनी थी।

(1) 15 (2) 20 (3) 25 (4) 35

2– 1983 में सांतवा शिखर सम्मेलन आयोजित हुआ।

(1) हवाना में (2) बेलग्रेड में (3) कोलम्बो में (4) नई दिल्ली में

3–गुटनिरपेक्षता के प्रवर्तको में निम्न में से कौन राजनेता नही था।

(1) सुकर्ण (2) मार्शलटीटो (3) नासिर (4) केनेडी

4–गुट निरपेक्ष आन्दोलन से आप क्या समझते है। 4

5–गुट निरपेक्ष आन्दोलन के आधार तत्व कौन कौन से है। 5

5.4 गुट निरपेक्ष आन्दोलन की विशेषतायें

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की मुख्य विशेषतायें निम्न है

5.4.1 सकारात्मक, गतिशील एवं स्वतंत्र दृष्टिकोण

गुटनिरपेक्षता की प्रमुख विशेषता उसकी सकारात्मकता, गतिशीलता एवं विश्व समस्याओ पर स्वतन्त्र ढंग

से व्यवहार करने की सुस्पष्ट नीति है। पं० जवाहरलाल नेहरू के शब्दो में जहाँ स्वतन्त्रता

के लिए खतरा उत्पन्न हो न्याय को धमकी दी जाती हो अथवा जहाँ आक्रमण किया गया हो वहाँ न तो हम तटस्थ रह सकते है और न तटस्थ रहेंगें।

5.4.2–उपनिवेशवाद का विरोधा

गुटनिरपेक्षता सभी प्रकार के उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद की प्रबल विरोधी है। इस नीति के अनुयायी एशिया एवं अफ्रीका के नव स्वतंत्र प्राप्त देश साम्राज्यवादी पश्चिमी देशों के उपनिवेश रह चुके है। वे पराधीनता के अभिशाप तथा शोषण के दुष्परिणामों को अच्छी तरह भोग चुके है। अतः उन्होने संयुक्त राष्ट्र संघ में तथा सभी अर्न्तराष्ट्रीय संगठनों व सम्मेलनों में पश्चिमी शक्तियों के साम्राज्यवाद की कडी निन्दा करते हुये पराधीन देशों को स्वतन्त्र बनाने पर बल दिया है। बेलग्रेड के प्रथम सम्मेलन में पं. जवाहरलाल नेहरू ने उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवादियों के चंगुल में जकडे विश्व के भागों को उनके चंगुल से मुक्त कराने एवं स्वतन्त्र समाज के निमार्ण को अपना सकारात्मक लक्ष्य घोषित किया था।

5.4.3 नःशस्त्रीकरण–

दोनों महाशक्तियों (अमेरिका व रूस) के मध्य आणविक हथियारों के निर्माण को होड जानलेवा प्रकिदद्विता का प्रारम्भ हुआ और सम्पूर्ण मानवता के विनाश की सम्भावना प्रबल हो गयी। इस सम्भावित खतरे से बचने का सबसे अच्छा उपाय ऐसे हथियारो पर प्रतिबन्ध लगाना और निःशस्त्रीकरण द्वारा शस्त्रों को कम करना था। हथियारो के उत्पादन पर च्यय होने वाली खरबो रूपये की धनराशि जन कल्याण गरीबी के अनमूलन और जनजीवन के स्तर को ऊचा उठाने में व्यय की जा सकती थी। गुट निरपक्ष आन्दोलन प्रारम्भ से ही इस बात पर बल देता रहा है। और बेलग्रेड सम्मेलन में युद्ध के खतरे पर शान्ति की अपील का व्यान इस क्रम में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

नेहरू के चिन्तन में युद्ध रोकना पहली प्राथमिकता थी क्योकि उनके अनुसार

युद्ध को रोकने पर ही शान्ति स्थापित की जा सकती है। और शान्ति काल में ही अन्य समस्याओ पर ध्यान दिया जा सकता हैं वे शान्ति के प्रबल समर्थक थे।

5.4.4 विकास

सदियों के औपनिवेशिक शोषण के कारण गुटनिरपेक्ष देशों का आर्थिक तन्त्र लगभग जर्जर अवस्था में है। यह देश घोर दरिदूता, बेकारी, भुखमरी और बेरोजगारी के शिकार है। अतः आर्थिक विकास स्वयं इनका चरम लक्ष्य है। ताकि वे जनता के जीवन स्तर को उन्नत कर सके। 1989 में बेलग्रेड में हुये नवें गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन में भी विकास को मुख्य लक्ष्य माना गया तथा आर्थिक शोषण के खिलाफ आवाज बुलन्द की गई।

5.4.5 विश्व शान्ति का समर्थन

आर्थिक विकास के लिये शांति बहुत आवाश्यक है। युद्ध से राष्ट्रीय एंव अन्तर्राष्ट्रीय अर्थतन्त्र क्षत विक्षत हो जाता है। जनकल्याणकारी योजनाऐं ठप्प पड जाती है। और राष्ट आर्थिक संकर की की ज्वाला में झुलसने लगता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप मे उत्पन्न आर्थिक संकर युद्ध का ही

परिणाम था। जिससे ब्रिटेन जैसी महाशक्ति भी अमेरिका की याचक बन गई थी। अतः गुटनिरपेक्षता की नीति के समर्थक विश्व शान्ति का समर्थन अपने आर्थिक विकास तथा अन्य कारणो से करते है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने ठीक ही कहा था। यदि हम युद्ध को प्रतिबन्धित नही करते तो अन्य समस्याओ का सक्षम सामना नहीं कर सकेगे।

5.4.6 सैनिक गुटबन्धियो का विरोध

गुटो की राजनीति मे अविश्वास के कारण गुटनिरपेक्षता इसे उत्पन्न करने वाली सैनिक सन्धियो की भी विरोधी है। नेहरू ने कहा था हम सभी देशो से मैत्री चाहते है। गुटनिरपेक्षता का शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व की संकल्पना मे विश्वास है और वे इस सन्दर्भ मे जीओ और जीने दो की नीति पर बढ़ते हुए तनाव शैथिल्य की बढती प्रक्रिया का स्वागत करते है। वे विश्व शान्ति के लिए तनाव शैथिल्य के प्रबल पक्षधर है।

5.4.7 संयुक्त राष्ट्रसंघ का समर्थन

शान्तिवादी होने के कारण गुटनिरपेक्षता विश्व शान्ति हेतु प्रतिबद्ध अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रबल समर्थक है। गुटनिरपेक्षता की नीति की यह दृढ मान्यता है कि दौनो महाशक्तियो के पारस्परिक विद्वेष से संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यो मे व्यवधान पड़ा रहा है। अतः इस विद्वेष को समाप्त करना चाहिए ताकि विश्व संगठन अपना कार्य निष्पक्ष एंव कुशल ढंग से सम्पादित कर सके। संयुक्त राष्ट्र संघ के

सदस्यो मे से 108 देश गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सदस्य है। वास्तव मे वे संयुक्त राष्ट्र संघ की सशक्त आवाज के रूप में उभर चुके है जिनकी उपेक्षा महाशक्तियो के लिए असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। –

5.5 गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाने के कारण

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद उपनिवेशवाद से मुक्त हुये नये राष्ट्रो मे से अधिकतर ने विश्व की द्विध्रुवीय व्यवस्था से जुडने के वजाय गुटनिरपेक्ष आन्दोलन से जुडना पसन्द किया। इस आन्दोलन से जुड़ने के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित है।

5.5.1 स्वतन्त्रा के प्रति प्रतिबद्धता

नवोदित राष्ट्रो द्वारा गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति अपनाने का प्रमुख कारण उनकी नव अर्जित स्वतन्त्रा को बनाये रखने की प्रतिबद्वता थी। जैसे कि भारत जैसे राष्ट्रो ने स्वतन्त्रा प्राप्त करने के लिए लगभग 90 वर्ष तक (1857 दृ 1947) साम्राज्यवादी उपनिवेश के विरूद्ध संघर्ष किया था। इस काल मे उसे काफी त्याग और बलिदान भी करना पड़ा। इतने प्रबल संघर्ष के पश्चात प्राप्त होने वाली स्वतन्त्रा का महत्व उसके लिए सर्वोपरि था। किसी महाशक्ति के नेतृत्व मे किसी भी गठबन्धन मे जाना उसके लिए कडे संघर्ष के पश्चात अर्जित स्वतन्तत्रा को गिरवी रखने के समान था। और ऐसा करना उसके लिए असम्भव था। श्रीमति इन्दिरा गाँधी के शब्दो मे ष्हमारी पहली चिन्ता है अपनी आजादी के किसी भी तरह के क्षरण को रोकना। अतः हम किसी भी शक्ति के चाहे वह कितनी भी समृद्ध अथवा सबल क्यो न हो, शिविर अनुचर नही बन सकते।ष किसी भी गुट से जुडने पर हमें हमेशा उन महाशक्तियो के हितो का ध्यान रखना पडता है। उनकी कठपुतली बनकर उनके इशारो पर नाचना पडता है। उसके आदेशों का पालन करना पड़ता है। इस प्रकार हम राजनीतिक दृष्टि से स्वाधीन होते हुये भी स्वतन्त्रापूर्वक विचार करने की – –

शक्ति गवां बैठते है। अतः अपनी स्वतन्त्रा को स्थिर बनाये रखने के लिए देशो ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन से जुडना उचित समझा।

5.5.2 आर्थिक विकास की महात्वाकांक्षा

गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति को अपनाने का दूसरा प्रमुख कारण अल्प विकसित राष्ट्रो द्वारा अपने आर्थिक विकास की महात्वाकांक्षा थी। उनकी रूचि शास्त्रो की प्रतियोगिता से बचकर आर्थिक पुर्ननिर्माण की अधिक थी। और उसके लिए केवल गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाकर यह देश विश्व के विरोधी गुटो से आर्थिक सहायता प्राप्त कर सकते थे। पं० जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा था ष्अन्ततोगत्वा विदेश नीति आर्थिक नीति का ही प्रतिफल है।ष अतः दौनो महाशक्तियो और उनकी

प्रगति से भारत तभी लाभ उठा सकता था जब उसकी विदेश नीति गुटनिरपेक्षता की हो। –

5.5.3 शान्ति की आवश्यकता

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए शान्ति की आवश्यकता होती है। गुटो की राजनीति शीत युद्ध की राजनीति होती है। जो किसी भी समय तीव्र युद्ध मे परिवर्तित हो सकती है। गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति एक विशिष्ट शान्ति सेतु की तरह है जो गुटबन्दी को कमजोर युद्ध को हतोत्साहित और शान्ति को प्रोत्साहित करती है। –

5.5.4 ऐतिहासिक अनुभव

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रो का ऐतिहासिक अनुभव उपनिवेशवादियो और साम्राज्यवादियो द्वारा उनकी सम्प्रभुत्ता एंव स्वतन्त्रा को कुचलकर अपने अपने हित मे उनके देश की शोषण की कटु स्मृतियों से जुड़ा है। एशिया और अफ्रीका के नव मुक्त राष्ट यह अनुभव करते है कि यदि वे वडे राष्ट्रो के साथ सैनिक संधियो मे बंध गये तो शोषक और शोषित राज्यो और के सम्बन्धो का वही पुराना इतिहास दोहराया जायेगा। 1989 मे बेलग्रेड में सम्पन्न नवें गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन में भारतीय प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी ने भी स्वीकार किया। कि जब तक विश्व मे किसी किस्म के प्रभुत्व की भावना रहेगी। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का कार्य अधूरा रहेगा। हमें औपनिवेशक राजनीतिक और सैनिक प्रमुत्व के खिलाफ सतत् प्रयास करने है, साथ ही आर्थिक प्रभुत्व के हौवे को भी समाप्त करना है।

बोध प्रश्न 2

(1) 1989 मे नवां गुटनिरपेक्ष सम्मेलन हुआ।

1. काहिरा 2. बेलग्रेड 3. पेरिस 4. कोलम्बो

(2) अन्ततोगतवा विदेश नीति आर्थिक नीति का ही प्रतिफल है, उक्त कथन किसका है।

1. पं० जवाहर लाल नेहरू 4. नासिर 2. इन्दिरा गाँधी 3. मार्शल टीटो

(3) गुटनिरपेक्ष आन्दोलन संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रबल समर्थक वैसे है। घ

(4) गुट निरपेक्ष आन्दोलन से जुडकर नवोदित राष्ट अपनी स्वतन्त्रा किस प्रकार बनाये रख सकते है।

(5) आर्थिक विकास की महात्वाकाक्षां ने किस प्रकार राष्ट्रो को गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाने को बाध्य किया है।

5.6 गुटनिरपेक्षता आन्दोलन की उपलब्धियाँ

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उपनिवेशवाद से मुक्त हुये कुछ राष्टो ने द्विध्रुवीकरण की राजनीति को अस्वीकार कर दिया। इसके फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे गुटनिरपेक्षता की विचारधारा का प्रारम्भ हुआ। जो आज विश्व मे एक सशक्त आवाज के रूप में स्थापित हो चुकी है। गुटनिरपेक्षता में समस्याओ के समाधान के लिए बल प्रयोग का कोई स्थान नही है। सम्पूर्ण विश्व मे गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की उपलब्धियों निम्न है।

(1) विश्व को खेमेबन्दी से बचाना गुटनिरपेक्ष राष्ट्रो ने महाशक्तियों की खेमेबन्दी की राजनीति में सम्मिलित होने से मना कर दिया। उन्हौने अमेरिकी और सोवियत आदर्श अपने ऊपर थोपे जाने का विरोध किया और अपनी राष्ट्रीय प्रकृति के अनुसार विकास के अपने राष्ट्रीय सांचो और पद्वितियो का आविष्कार किया। यह बात सामाजिक, राजनीतिक संस्थाओ शासन और प्रशासन प्रणालियो के सन्दर्भ मे भी लागू होती है। इस प्रकार गुटनिरपेक्ष देश महाशक्तियों की खेमेबन्दी से बाहर निकल आये और उन्हौने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन मे सम्मिलित होकर खेमेबाजी की राजनीति को नकार दिया।

(2) अफो–एशियाई, लेटिन अमेरिकी और केरेबियन देशो को स्वतन्त्रा मिलना –

गुटनिरपेक्ष देशो ने एकजुट होकर हरएक मंच से इन देशो में चल रहे मुक्ति संग्रामो का समर्थन किया। इससे उन्हे आजादी मिलने में आसानी रहे, क्योंकी औपनिवेचिाक शक्तियाँ विश्व के इतने बड़े समुदाय की अलोचना एंव तिरस्कार का शिकार लम्बे समय तक नही रहना चाहती थी।

(3) विश्व शान्ति एंव सुरक्षा की स्थापना मे सहायक गुटनिरपेक्ष देशो का हमेशा यही प्रयास रहा कि राष्ट्र आपसी विवादो को शान्तिपूर्ण समाधानो के जरिये हल करें, युद्ध से नही। विश्व शान्ति एंव सुरक्षा की स्थापना के लिए उन्हौने संयुक्त राष्ट्र संघ की हर एक कार्यवाही की प्रभावशाली बनाने के लिए उसकार सदैव भरपूर समर्थन किया है , इस प्रकार गुटनिरपेक्ष आन्दोलन विश्व शान्ति एंव सुरक्षा स्थापित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है। –

(4) राष्ट्रवाद की रक्षा एंव स्वतन्त्र विदेश नीति निर्माण को प्रोत्साहन गुटनिरपेक्ष नीति का जन्म ही महाशक्तियो द्वारा अन्य देशो को अनेक अधीन बनाने की

नीति के विरूद्ध हुआ है। गुटनिरपेक्ष देश किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय संकट पर दबाब मुक्त होकर अपने विचार व्यक्त करते हैं, इस प्रकार छोटे शब्दो मे भसी राष्ट्रवाद की रक्षा एंव स्वतन्त्र विदेश नीति निर्माण की भावना को पूरा प्रोत्साहन मिला है घ

(5) साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद एंव रंगभेद की समाप्ति गुटनिरपेक्ष आन्दोलन नेहमेशा ही बडी शक्तियों की साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी एंव रंग भेद की नीति का कड़ा विरोध किया है। इससे वह विश्व मे बडी शक्तियों की साजिश के खिलाफ जनमत बनाने में सफल रहा है। इशी का परिणाम है कि वर्तमान मे बडी शक्तियों की चालें काची हद तक नाकाम रही है।

(6) अनेक अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर एकजुट होकर आवाज उठाना गुटनिरपेक्ष देशो ने अपने उददेश्यों की प्राप्ति के लिए अपने ही मंच से नही बल्कि अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचो जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ राष्ट्र मण्डल अफ्रीकी एकता संगठन अंकटाड (न्छब्ज।क्) आदि मे अनेक मुददो पर एकजुट आवाज उठाकर अपने उददेश्यो को प्राप्त करने में काफी हद तक सफलता अर्जित की है।

(7) महाशक्तियो द्वारा गुटनिरपेक्षता महत्व को स्वीकार करना प्रारम्भ मे गुटनिरपेक्ष नीति को महाशक्तियों ने बुरा भला कहा। एक तरफ अमेरिकी विदेश मंत्री जॉन फास्टर ने इस नीति को, अनेतिक एवं, अद्रर्शिता पूर्ण माना। उनका मानना था कि गुटनिरपेक्ष राष्ट्र दौनो ही खेमे मे न मिलकर दौनो ही खेमो से आर्थिक सहायता का लडडू खना चाहता है। जो अनैतिक और अदूरदर्शिता है। दूसरी तरफ सोवियत संघ ने गुटनिरपेकक्ष देशो द्वारा उनके खेमे मे नही मिलने के कारण उन्हे पूँजीवादी अमेरिकी दलाल की संज्ञा दी। लेकिन अब इस बारे मे दौनो महाशक्तियो का रूख बदला है। और वे गुटनिरपेक्षता के महत्व को स्वीकार करने लगे है। उदाहरण स्वरूप सोवियत नेता खुश्चेव ने माना कि देश तटस्थ हो सकते है। चाहे व्यक्ति तटस्थ न हो। अमेरिकी विदेश सचिव हेनरी किसिन्जर ने भी 1974 की भारत यात्रा के दौरान भारतीय गुटनिरपेक्षता की भूरि भूरि प्रंशसा की थी।

(8) तीसरी दूनिया मे आपसी सहयोग कर आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त करना

गुटनिरपेक्ष देशो ने धीरे धीरे चहॅमुखी क्षेत्रो मे आपसी सहयोग करने का रास्ता अपनाया था। कच्चे उत्पादो जैसे तेल आदि मूल्य का निर्धारण तथा अन्य क्षेत्रो मे पारस्परिक सहयोग कर उन्हौने गुटनिरपेक्ष देशो द्वारा आत्मनिर्भर बनने का मार्ग प्रशस्त किया है। इससे विभिन्न क्षेत्रो मे उनके विकास के लिए बडी शक्तियो पर निर्भरता घटेगी और वे आत्मनिर्भरता के पद पर अग्रसर होगें।

(9) सदस्य संख्या मे अशातीत वृद्वि जब भारत यूगोस्लाविया और मिश्र ने पहल कर गुटनिरपेक्ष नीति अपनायी तो शीघ्र ही इण्डोनेशिया, श्रीलंका, कम्बेडिया ने भी इसका अनुसरण किया। इसके बाद धीरे धीरे कई देश गुटनिरपेक्ष आन्दोलन मे सम्मिलित हो गये। बेलग्रेड मे हुए पहले हुए शिखर सम्मेलन के 25 देशो से जनकार्ता मे हुए दसवें शिखर सम्मेलन तक इसकी सदस्य संख्या 108 तक हो गयी। इन सम्मेलनलो मे सदस्य राष्टो के अलावा अनेक देशो को पर्यवेक्षक के रूप में अनेक

राष्टीय मुक्ति संगठनो के प्रतिनिधियों को पर्यवेक्षक एंव अतिथि के रूप मे आमन्त्रित किया। इस प्रकार बढती हुयी संख्यात्मक शक्ति गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की सफलता की सूचक है।

5.7 गुटनिरपेक्षता आन्दोलन की असफलताएँ

इतनी उपलब्धियों के बाबजूद भी यदि देखा जाये तो वास्तव मे गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अपने उददेश्यो की प्राप्ति मे आशतीत रूप से सफल नही हो पाया है। धीरे धीरे महाशक्तियों की खेमेबन्दी का प्रवेश इस आन्दोलन में हो गया है। इसके अलावा सैन्य संगठनो एंव सन्धियो से जुडे राष्ट भी गुटनिरपेक्ष आन्दोलन मे प्रवेश पाने में सफल हो गये है। जैसे पुर्तगाल, फिलियन्स और रोमानिया आदि। बाहरी विश्व की गम्भीर चुनितियो से जूझने के स्थान पर आन्दोलन के देश आपसी समस्याओ मे ही उलझे हुये है। इसके अलावा मौखिक और लिखित घोषणायें तो देश मे बहुत कर रहे है। लेकिन उनके अनुपात मे व्यावहारिक काम बहुत कम हो रही है। इस प्रकार गुटनिरपेक्ष आन्दोलन उस सफलता को प्राप्त नही कर पाया है जिसकी उससे उम्मीद जगी थी। –

बोध प्रश्न तीन–3

(1) गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने विश्व को द्विधुवीय व्यवस्था से किस प्रकार बचाया है।

(2) गुटनिरपेक्ष आन्दोलन विश्व शान्ति एंव सुरक्षा की स्थापना में किस प्रकार सहायक हुआ है।

(3) गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की असफलताएँ क्या क्या है

5.8 सारांश

शीत युद्ध के समय दो गुटो एक पूँजीवादी और दूसरा समाजवादी मे बंटे हुये विश्व की एक नया रास्ता गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने दिखाया है। वो सभी राष्ट्र जो इन दौनो गुटो से नही जुड़ना चाहते थे वे इसके सदस्य बन गये। नेहरू, नासिर, टीटो की अगुवाई मे शुरू हुये इस आन्दोलन के आज 100 से अधिक सदस्य है। यह आन्दोलन साम्राज्यवाद एंव उपनिवेशवाद का विरोधी है। यह विश्व शान्ति और विकास की बात करता है।

5.9 शब्दावली

- असम्बद्ध– किसी से समबद्व (जुडा हुआ) न होना
- शैथिल्य –कमी होना
- प्रतिबद्ध – समर्पित

- खेमेबन्दी –गुटवाजी

5.10 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्नः–1

(1) 1 (x) 2 (x) 3 (√) 4 (x)

(2) 2 (x) 2 (x) 3 (√) 4 (√)

(3) 2 (x) 2 (x) 3 (√) 4 (√)

(4) देखे भाग 5.1

(5) देखे भाग 5.3

बोध प्रश्नः–2

(3)देखे भाग 5.4.7

(4) देखे भाग 5.5.1

(5) देखे भाग 5.5.2

बोध प्रश्न :–3

(2)देखे भाग 5.6–1

(2)देखे भाग 5.6–3

(3)देखे भाग 5.7

NOTES